गोपाल कवि

कृत

रीतिकालीन साहित्य के वैविध्य में

दंपति वाक्य विलास

संपादक

डा० चन्द्रभान रावत

[हिन्दी विभागध्यक्ष, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान]

डा० राम कुमार खंदेलवाल

[रीडर, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद]

प्रकाशक

हिन्दी अकादमी

हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)

क्रमाणिका
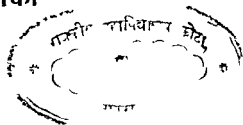
प्रस्थावना

आभार

प्रकाशक की ओर से

१	प्रथम विलास	भूमिका	१
२	द्वितीय विलास	प्रदेस सुख ..	१०
३	तृतीय विलास	मास प्रबध	१७
४	चतुर्थ विलास	निज देश प्रबध	२७
५	पचम विलास	अमल प्रबध	४४
६	षष्ठ विलास	अथ खल प्रबध	५६
७	सप्तम विलास	निवास प्रबध	६५
८	अष्टम विलास	विद्या प्रबध	७२
९	नवम विलास	ग्रथ सूची	८२
१०	दसवा विलास	शास्त्र प्रबध	८६
११	एकादश विलास	भिक्षा प्रबध	११३
१२	द्वादश विलास	मदिर प्रबध	१२८

१३. त्रयोदस विलास :	देवालीन कौ रुजिगार..	१४१
१४. चतुर्दश विलास :	श्रम प्रबंध	१६६
१५. पचदसो विलास :	सहर प्रबंध	१७५
१६. षष्ठदस विलास :	राज प्रबंध	२०१
१७. सप्तदश विलास :	फिरंग प्रबध.......	२४८
१८. अष्टा-दश विलास :	बनज प्रबंध.	२६८
१९. ऊनविंशति विलास :	दुकानदारी..	२९१
२०. विंशो विलास :	अथ रकान प्रबध.. ..	३०७
२१. एक विंशो विलास :	अथ जाति प्रबंध	३५१
२२. द्वाविंशो विलास :	अधम प्रबंध	३५८
२३. त्रयो विंशो विलासः	अधमाधम रुजगार प्रबंध	३७२
२४. चतुर्विंशो विलास :	प्रकृत प्रबंध	३९१
२५. पंच विंशो विलास :	अथ परमात्म प्रबंध	४०३
२६. षटविंशो विलास :	शान्तरस प्रबंध	४४९
२७. सप्त विंशो विलास :	फूहर प्रबंध	४५६
२८. अष्ट विंशो विलास :	शिक्षा प्रबंध	४६५

आभार

रीतिकालीन साहित्य के वैविध्य की चर्चा प्राय रीतिकाल के मर्मज्ञ विद्वानों ने की है। 'दंपति वाक्य विलास' उसी मत को अपने ढंग से सिद्ध करने वाली रचना है। इसको इस रूप में प्रस्तुत करने में अनेक सूत्रों का संगठन हुआ है। उन सभी सूत्रों का महत्व है, हम सभी के प्रति आभारी हैं।

सबसे पहले हम वृन्दावन स्थित श्रीरंग जी के मन्दिर के गद्दीनशीन स्वामी श्री रंगाचार्यजी महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी प्रति श्री रंगलक्ष्मी पुस्तकालय वृंदावन में ही है। श्री रंगाचार्यजी की कृपा से वह पाठ-शोधन के लिए प्राप्त हो सकी। उनकी इस कृपा के बिना इसका संपादन-कार्य किस प्रकार पूर्ण नहीं होता।

जब इस ग्रंथ का प्रकाशन निश्चित हो गया, तब हमने स्व॰ डा॰ वासुदेवशरण अग्रवाल को पत्र लिखा कि वे ज्ञानकोशों की संस्कृत, प्राकृत, और आधुनिक भाषाओं की परम्परा को स्पष्ट करते हुए एक विशद् भूमिका लिखें, और आपने भूमिका लिखना स्वीकार भी कर लिया था। उन्होंने पत्र लिखा
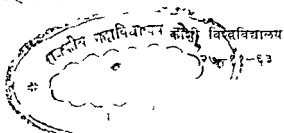
प्रिय श्री चन्द्रभान जी,

'दंपति वाक्य विलास' पुस्तक की सामग्री रोचक जान पड़ती है। आप अवश्य सम्पादन करें। जब मुद्रित फार्म भेजेंगे, मैं भूमिका लिख दूंगा।

शुभेच्छु
वासुदेव शरण

और हमें खेद है कि मुद्रण-कार्य टलता गया। हम एक दिग्गज पारखी से भूमिका का प्रसाद न ले सके। परिणामत पुस्तक उनकी भूमिका के बिना ही प्रस्तुत की जा रही है। उनके प्रोत्साहन की गूंज तो बनी ही रही। सामग्री पर उनकी छाप तो लग ही गई। हम इस के लिए उस दिवंगत आत्मा के प्रति ऋणी हैं।

योजना यह भी थी कि हम श्री प्रभुदयालजी मीतल से कवि के जीवन संबंधी एक लेख लिखवा कर इस पुस्तक में दे दें। मीतलजी ने कवि का कुछ परिचय 'चैतन्यमत और व्रज साहित्य' में दिया है। साथ ही आपने 'दंपतिवाक्यविलास' पर एक लेख भी लिखा है। हमारे पूछ ने पर उन्होंने कवि के संबंध में महत्वपूर्ण सूचनाएं भी दी। इन सभी अन्तर्बाह्य सूत्रों के आधार पर कवि का परिचय प्रस्तुत किया गया है। श्री मीतलजी के सहयोग का मूल्य हम हृदय से स्वीकार करते हैं।

श्री अगर चन्द नाहटा का सहयोग भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहा। आपने ही हमारा ध्यान इस ग्रंथ की मुद्रित प्रतियों की ओर
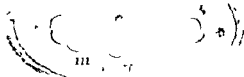
आर्कापित किया। आपने हमे उसकी मुद्रित प्रति दिलवाई भी, साथ ही कुछ अन्य प्रतियो की सूचना भी दी। 'सरस्वती' मे आपने इस ग्रथ पर एक लेख भी लिखा।

हम हिन्दी अकादमी के उन सभी सदस्यो के प्रति अपना आभार प्रकट करते है, जिन्होने इस ग्रथ के प्रकाशन का भार स्वीकार किया।

व्रज-भाषा के मर्मज्ञ विद्वान तथा कवि प० मधुसूदनजी चतुर्वेदी आचार्य सर वसी लाल बालिका विद्यालय, हैदराबाद के प्रति आभार प्रकट करने के लिए हमारे पास शब्द नहीं है। हिन्दी अकादमी के मत्री होने के नाते उन्होने प्रकाशन की पूरी व्यवस्था की तथा प्रूफ सशोधन मे बहुत सहायता दी। सपादन मे भी उनके व्रज-भाषा ज्ञान का हमने पूरा लाभ उठाया तथा उनके अमूल्य सुझावो को अपनाया।

अकादमी के अध्यक्ष श्री वासुदेव नाईक, उपाध्यक्ष डॉ० राम निरजन पाडेय (प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय), तथा अन्य स्थायी सदस्य डॉ० राज किशोर पाडेय, डॉ० गया प्रसादजी शास्त्री, श्री बैज नाथ जी चतुर्वेदी, श्री ऋभुदेवशर्मा तथा श्रीमती शैलबालजी आदि के हम बहुत आभारी हैं, जिनकी सहायता से पुस्तक प्रकाशित होसकी।

अत मे हम उन सभी के प्रति आभारी है जिनसे हमने इस कार्य मे मार्ग दर्शन एव सहयोग प्राप्त किया।

चन्द्रभान रावत

दीपावली, स० २०२५ वि०　　　　रामकुमार खडलवाल

प्रकाशक की ओर से

हिन्दी अकादमी की स्थापना सन १९५६ ई० में हुई थी। इसके संस्थापक सदस्यों मे श्री डा० एस० भगवन्तम, डा० आर्येन्द शर्मा प० नरेन्द्रजी, डा० एस श्री देवी, श्री बदरी विशाल पित्ती, श्रीमती सुशीला देवी विद्यालकृतता प्रमुख है। अपने अत्यन सीमित साधनो के बल पर भी अकादमी ने हिन्दी मे ग्रथो के प्रकाशन का कार्य अपने हाथ मे लिया है। अकादमी मलिक मुहम्मद जायसी की शोध मे प्राप्त कृ न 'चित्ररेखा' का प्रकाशन करना चाहती है। डा० राम निरन्जन पाडेय उसकी भूमिका लिख रहे है। अकादमी ने दक्षिण की पाच प्रमुख भाषाये- तेलुगु तामिल, मराठी, कन्नड, और मलयालम की दो-दो चुना हुई कहानिया लेकर "श्रेष्ठ कहानिया" सग्रह प्रकाशित किया है। लेखको के आर्थिक सहयोग से अकादमी "साझके स्वर" और 'साहित्यक चिन्तन ' प्रकाशित कर सकी है। "दम्पति वाक्य विलास" अकादमी का चौथा प्रकाशन है।

'दपति वाक्य विलास का प्रकाशन अकादमी के इतिहास का एक गौरवपूर्ण अध्याय है। डा० चन्द्रभान रावत हिन्दी विभागाध्यक्ष, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान और डा० रामकुमार खडेलवाल, रीडर हिन्दी विभाग, उस्मानियां विश्वविद्यालय, हैदराबाद के प्रति आभार प्रकट करना अकादमी अपना परम कर्त्तव्य समझती है, जिन्होने वृन्दावन निवासी राय गोपाल कवि के युग को प्रतिबिम्बित करने वाले इस ज्ञान-कोष का श्रम-पूर्वक सम्पादन कर अकादमी को इसके प्रकाशन का अवसर प्रदान किया।

अकादमी ने आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा-मत्री माननीय श्री पी वी नरसिंह राव की सेवा में अनुदान के लिए आवेदन प्रस्तुत किया है। अनुदान प्राप्त होने पर अकादमी अपने प्रकाशन कार्य मे बहुत आगे बढ सकेगी।

'दंम्पति-वाक्य-विलास' को यथा संभव सुन्दर बनाने का प्रयास किया गया है। सुहृद्जन अकादमी के इस प्रयास को अपना कर हमारा साहस बढ़ाएंगे- ऐसी आशा निराधार नहीं है।

राजा बहादुर सर बंसी लाल बालिका विद्यालय, बेगमबाज़ार, हैदराबाद दक्षिण (आं० प्र०)
चैत्र शु.१, २०२६ वि. १९-३-६९

मधुसूदन चतुर्वेदी
मंत्री
हिन्दी अकादमी

प्रस्तावना

१. कवि

१ *नाम*– श्री प्रभुदयाल मीतल ने इस कवि का मूल नाम गोपालदास दिया है। साथ ही उन्होने 'गुपाल कवि' को उनका उपनाम माना है।[1] 'दंपतिवाक्यविलास' मे गोपालदास तो किसी स्थान पर नही आया है। उसकी छाप में तीन नाम ही प्राय मिलते है। गुपाल कवि या कवि गुपाल राय और गुपाल। गुपाल कविराय भी मिलता है। दंपति वाक्यविलास की मुद्रित प्रति के ऊपर छपा है दंपति वाक्य विलास कविवर गोपालराय कृत।[2] विज्ञापन से भी यही नाम दिया गया है। इस प्रकार कवि का नाम गोपाल राय ही प्रतीत होता है, गोपालदास नही। मुद्रित प्रति में प्रत्येक विलास के अन्त मे भी 'गोपाल कविराय विरचित' दिया हुआ है। पता नही, मीतल जी को 'गोपालदास' नाम कहा से मिला। 'राय' वंश मे उत्पन्न होने के कारण गोपालराय नाम ही ठीक प्रतीत होता है। वंश में रायान्त नामो की परम्परा भी प्रतीत होती है। इनके पिता का नाम प्रवीण-राय या परगराय था।

२. काल

श्री जी मीतलजी ने इनके काल निर्धारण के संबंध में अपना मत इस प्रकार दिया है। 'उनके जन्म और देहावसान के ठीक-ठीक संवत् अज्ञात है।-किन्तु उनके रचना काल से उनका अनुमान किया जा सकता है। उनकी एक रचना 'श्री वृन्दावन धामानुरागावली' की पूर्ति सं १९०० में हुई थी। इससे उनका जन्म सं १८६० के लगभग और देहावसान सं १९३० के

---

१ चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृ ३१३

२ दंपति वाक्य विलास, (बंबई, सं १९९८) मुख पृष्ठ।

लग-भग अनुमानित होता है। [3]. वृन्दावन धामानुरागावली से पूर्व ही 'दंपति वाक्य विलास' की रचना हुई थी। सं. १८८५ में यह ग्रंथ बना। [1]. इसके रचना काल से भी मीतल जी द्वारा निर्धारित तिथियों को मानने में बाधा नहीं पड़ती। 'दंपति वाक्य विलास' की तृतीयावृत्ति सं. १९६८ में हुई। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उस समय गोपाल कवि जीवित ही रहे हों। मुद्रित प्रति में इस संबंध में कोई सूचना नहीं मिलती। प्रकाशकों को इस ग्रंथ की प्रति भी कवि से प्राप्त नहीं हुई थी। अतः कहा नहीं जा सकता कि सं. १९६८ में कवि जीवित था या नहीं। इन सब तिथियों के आधार पर कवि की कालगत स्थिति के संबंध में निश्चित तो कुछ नहीं कहा जा सकता, फिर भी मीतल जी का अनुमान ठीक प्रतीत होता है। कवि का संबंध रीतिकाल के अवसान-काल से है। रीतिकालीन प्रवृत्तियां कवि की कृति में स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। साथ ही अंग्रेजी शासन भी जम गया था। उनकी व्यवस्था पर कवि ने विस्तार के साथ प्रकाश डाला है। किन्तु इस समय तक आधुनिकता का साहित्यगत उन्मेष नहीं हो पाया था।

३. स्थान

अन्तर्साक्ष्य से इतना निश्चित होता है कि कवि का जन्म वृन्दावन में हुआ था। अपने पिता के विषय में कवि ने लिखा है कि उनका निवास वृन्दावन के मनीपारे नामक मुहल्ले में हुआ था। पर आज उस मुहल्ले में रायों के घर नहीं हैं। पूछने पर भी इनके वंशजों के संबंध में कोई विशेष सूचना नहीं मिली।

---

३. चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृष्ठ ३१३

१. ठारह से पिच्यासिया पून्यो अगहन मास, दं वा वि. १ । १५

कुछ वयोवृद्धो ने इतना अवश्य बतलाया कि पहले यहां कुछ रायों के घर अवश्य थे। कवि ने मनीपारे का वर्णन बड़े गर्व के साथ किया है। गोपाल ने स्वयं लिखा है कि यहां मुख्यतः मिश्र लोगों के घर हैं और दो चार घर राय लोगों के भी हैं। "भनत गोपाल नाम चारिक हमारे घर ।[2] इस मुहल्ले में अधिकांश ब्राह्मणों का निवास थे। इस प्रकार गोपाल कवि वृन्दावन के मनीपारे नामक मुहल्ले के निवासी थे। वहीं उनका जन्म भी हुआ था। कवि ने वृंदावन-वास पर गर्व भी किया है —

> तीनि लोक जानी जहां वहै पटरानी एमी
> वृन्दावन जू की हम रहें राजधानी में।

४ कविवंश

'दंपति वाक्य विलास' में कविने अपने वंश का परिचय दिया है। इस परिचय में प्राप्त शृंखला इस प्रकार है। मुरलीधर—घनश्याम—प्रवीणराय—गोपालराय।[1] इस प्रकार कवि के पिता प्रवीणराय ठहरते हैं। मीतलजी ने लिखा है। "उनके पिता का नाम खड्गराय था। वे चैतन्य मतानुयायी रामवल्लभ भट्ट के शिष्य थे।" "उनके प्राचीन आश्रयदाता पटियाला महाराज कर्मसिंह के छोटे भाई अजीतसिंह थे।[2] ये सूचनायें मीतलजी ने 'दिग्विजय' भूषण के आधार पर दी है। आगे वे एक दोहे में गोपाल कवि ने अपने पिता का नाम खड्गराय भी दिया है। "परगराय परवीनसुत गोपाल यह नाम"[3]

---

१ प्रस्तुत ग्रंथ, १।४
२ चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृ २१३
३ प्रस्तुत ग्रंथ ६।५

इसमें पिता के दोनों नाम-प्रवीनराय और परगराय-आये हैं। अनुमान लगाया जा सकता है कि परगराय संभवतः प्रवीणराय का विरुद होगा।

गोपाल कवि के वंश में काव्य-रचना की परम्परा रही। उनके पिता परगराय ने कई रचनाएँ की थी :–

जनमि प्रवीन ग्रंथ पिंगल औ, रसजाल
एकादसी कातग-महातम को गायो है। [1]

इस प्रकार काव्य शास्त्रीय और पौराणिक काव्य-धारा कवि गोपाल के पूर्वजों के प्रातिभ संस्पर्श से गति ग्रहण करती रही। स्वयं गोपाल कवि ने इसी परम्परा का निर्वाह किया। उनकी कृतियां भी इन्हीं दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। कोश ग्रंथ गोपाल की तीसरी प्रवृति से संबद्ध है। 'दंपति वाक्य विलास' एक ज्ञान-कोश है। इसकी प्रेरणा भी कवि के अनुसार, उसे अपने पिता प्रवीणराय से ही प्राप्त हुई। इस ग्रंथ की योजना और इसका उद्देश्य, दोनों ही बौद्धिक हैं।

कविताकृति सुखदु-ख के कवित वनाए दोइ।
कवि प्रवीन पितु कों जबहि, जाइ सुनाए सोइ।
है प्रसन्न ताही घरी आज्ञा मोकों दीन।
दंपतिवाक्यविलास सुत कीं जेंग्रय प्रवीन।
जिनकी आज्ञा पाय मैं कीनों ग्रंथ प्रकास।
कहत-सुनत याके सदा, होइ वुद्धि परगास।

कवि के वंश मे काव्य की चार प्रवृत्तियां मिलती हैं, काव्य शास्त्रीय, भक्तिभाव संबंधी, पौराणिक और ज्ञानकोशीय। इनका प्रतिनिधित्व कवि गोपाल की कृतियां करती हैं।

---

१. वही १। ४

५. कवि का सप्रदाय

कवि के पिता चैतन्य मतानुयायी थे । [2]. व्रज से चैतन्य मत का घनिष्ट सवध रहा है । व्रज के अनेक स्थानो पर चैतन्य मत और उसके आचार्य एव भक्तो से सबधित स्मृतिचिन्ह वर्तमान है । इस दृष्टि से राधाकुड और वृन्दावन का नाम विशेष उल्लेखनीय है । [3]. गोपाल कवि का वश भी इसी सप्रदाय में दीक्षित था । इस कवि के समान अन्य अनेक कवि भी इस सप्रदाय से सबधित रहे है । बहुत से कवियो को व्रजभाषा साहित्य को समृद्ध करने का श्रेय है । किन्तु अन्य सप्रदायो के व्रजभाषा कवियो की अपेक्षा, इस सप्रदाय के कवियो की सख्या कम अवश्य है ।

इस सप्रदाय के कवियो ने माधुर्य भाव से सबधित काव्य ही किया है । [4] गुपाल कवि की रचनाओ में कुछ मे इस भाव की विवृत्ति अवश्य है । समवत. मान पचीसी, रासपचाध्यायी जैसी कृतियो में माधुर्य की फुहारो की सिहरन है । अन्य रचनाओ में कवि का बौद्धिक पक्ष ही अधिक प्रकट हुआ है । सभी रचनाओं में श्री वृदावनधाम [1]. की महिमा का गायन अवश्य है । कवि 'काव्य शास्त्र के अच्छे विद्वान और व्रज-वृन्दावन के अनुपम अनुरागी थे । उन्होंने जहा काव्य के विविध अगो का विस्तृत विवेचन किया है, वहा व्रजभक्ति और

---

१ प्रस्तुत ग्रथ १ । १०--१२
२ प्रभुदयाल मीतल, चैतन्य मत और व्रज साहित्य, पृ. ३१३
३ विशेष विवरण के लिए दृष्टव्य, वही पृष्ठ १२४-१२५
४ इस प्रकार के कवियो में सूरदास मदनमोहन, गदाधर भट्ट जैसे कवियो का नाम स्मरणीय है ।
१ श्रीवृन्दावन धामानुरागावली में उसका वृन्दावन प्रेम बौद्धिक विवरणो और अनुसधान के साथ फूट पडा है ।

व्रजमहत्व पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है [2]. वृन्दावन वासियों की कृपा-कटाक्ष की कामना भी कवि ने की है 'वृन्दावन वासियों की कृपा कटाक्षहि पाऊं" । [3]. आज भी वृन्दावन वासी अनेक *चैतन्यमतानुयायी बगालियो की ऐसी भावना मिलती है ।*

'दपतिवाक्यविलास' के मगलाचरण में भी कवि का वृन्दावन प्रेम छलक रहा है । मगलाचरण मे 'राधिकारमण' का *स्मरण है -'राधिकारमण के चरन की सरनि मे, ।* 'मातृभूमि वदना' मे कवि ने वृन्दावन को 'स्यामा स्याम धाम सब पूरन करन काम 'कहा है । यमुना को' पटरानी 'नाम मे अभिहित किया है । इस प्रकार कवि के वृन्दावन-प्रेम मे चैतन्यमत के प्रभाव की छाया ढूढी जा सकती है ।

६ आश्रयदाता

मीतलजी के अनुसार इनके पिता पटियाला राज्याश्रित कवि थे । [4]. हो सकता है गोपाल कवि भी पटियाला राज्य मे *सबद्ध हो । पर, इसका स्पष्ट उल्लेख कही प्राप्त नही होता ।* मुद्रित प्रति के विज्ञापन में प्रकाशक ने लिखा है, "आजदिन महाराज श्री १०८ श्रीकृष्णगढाधिपति की कृपाकटाक्षा से दंपतिवाक्यविलास नामक ग्रंथ श्रीयुत कविगोपालराय निर्मित कवीश्वर श्री जयलाल के द्वारा मेरे हस्तगत होने से मेरी आशा पूरी हुई ।"

इससे प्रतीत होता है कि खेमराज श्रीकृष्णदास की पुस्तक की प्रति कृष्णगढ नरेश से प्राप्त हुई थी । ग्रंथ के अंत में कृष्णगढ के राजा पृथ्वीसिंह की प्रशस्ति मे दो छदं भी हैं —

---

२ प्रभूदयाल मीतल, चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृ. ३१३

३. श्री वृन्दावन धामानुरागावली, का आरंभिक छन्द, मीतलजी द्वारा पृ. ३१४ पर उद्धृत ।

४. *चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृ. ३१३.*

गजन के राजाधिपति, पृथ्वीसिह सुभूप ।
रजधानी श्रीकृष्णगढ, राजत दुर्ग अनूप ।
गो द्विज पालक वृत दृढ, घालक अरिदल शाल ।
दिनकर दिनकर-वश के, पृथ्वीसिह महिपाल । [1]

यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि ये दोहे कवि गोपाल के द्वारा रचित है अथवा प्रकाशक-सपादक की रचना है। अन्य प्रतियो में ये दोहे नहीं है, अत इनका गोपालराय के द्वारा रचा जाना सदिग्ध है। यदि ये कवि के द्वारा रचे हुए है, तो कृष्णगढ के राजा पृथ्वीसिह से भी कवि का सबध स्थापित हो जाता है। किशनगढ में उस समय इस प्रकार के कवियो का सम्मान विशेष था। पर, यदि कवि का सबध इस दरबार से होता तो वृन्दावनवाली प्रति में अवश्य ही इसका उल्लेख होता। इस लिए कृष्णगढ में कवि का सबध न मानना ही उचित प्रतीत होता है। इतना अवश्य है कि कवि का किसी राजा के दरबार मे सबध था। यह लगता है कि गोपालराय के पूर्वज पूर्णत किसी राजा के दरबार मे सबद्ध होंगे। गोपाल कवि का सबध उस दरबार से नाममात्र का रह गया होगा। यदि किसी राजा के पूर्णत आश्रित होकर गोपाल अपनी रचनाएँ करते तो कहीं न कहीं आश्रयदाता का नाम भी आता। वशवृत्ति का निर्वाह करते हुए भी कवि ने अपनी काव्य-साधना समवत स्वतत्र रहकर ही की।

२. कृतित्व

गोपाल कवि को प्रतिभा, अभ्यास और वश-परम्परा सभी कुछ मिला। इसी विरासत ने उन्हे एक बहुज्ञ कवि बना दिया। गोपाल कवि ने दपति वाक्य विलास के अन्तिम भाग में अपनी

---

१. दंपति वाक्य विलास (मुद्रित प्रति) पृ १२८

अठारह रचनाओं की सूची दी है। दूसरी ग्रंथ सूची श्री मीतल जी ने दी है। इस सूची में मीतलजी ने सत्रह रचनाएँ गिनाई है। इन दोनों सूचियों में समान रूप से उल्लिखित केवल पाच रचनाएँ है। दंपति वाक्य विलास, मान पचीसी, रससागर, रास पचाध्यायी, और व्रजयात्रा। मीतलजी ने इनके अतिरिक्त ये रचनाएँ और गिनाई हैं। दूषण विलास, ध्वनिविलास, भावविलास भूषणविलास, व्रजयात्रा, वृन्दावन महात्म्य, श्री वृन्दावन धामानुरागिनी, बंसीलीला, वर्षोत्सव, गोपालभट्ट चरित, वृन्दावन वासिन कवित और भक्तमालटीका। इन रचनाओं में काव्य शास्त्रीय रचनाएँ अधिक हैं। कवि द्वारा दंपत्तिवाक्यविलास के अत में दी हुई सूची में ये रचनाएँ ऐसी हैं, जिनका उल्लेख मीतल जी ने नही किया है दानलीला, प्रश्नोत्तर, षट्ऋतु, नखशिख, चीर-हरण, वनभोजन, वेणुगीत, दशम कवित, अक्लनामा, गुरुकौमुदी जमुनाष्टक गगाष्टक, और वृन्दावन विलास। इनमें अधिकाश रचनाएँ कवि के भक्तिभाव को प्रकट करने वाली रचनाएँ हैं। मीतल जी ने अपनी सूची के स्रोत के संबंध में कुछ भी सूचना नहीं दी है। इससे इसकी प्रामाणिकता के सबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

उक्त दोनो सूचियों को ध्यान में रखकर, गोपाल कवि के कृतित्व का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है। कवि गोपाल के काव्य-कर्म की तीन दिशाएँ हैं: काव्य-शास्त्रीय, भक्तिमूलक, और ज्ञानपरक। दूषणविलास, भूषणविलास जैसी रचनाएँ कवि के भक्तिभाव की परिचायिका हैं। अक्लनामा और दंपतिवाक्यविलास कवि की बहुज्ञता से संबंधित हैं। परिणाम की दृष्टि से भी कवि की उपलब्धि उल्लेखनीय है। मीतलजी ने कवि की अभिरुचि पर यह वक्तव्य दिया है: 'वे काव्यशास्त्र के अच्छे विद्वान और व्रज वृन्दावन के अनुपम

अनुरागी थे। उन्होंने जहाँ काव्य के विविध अंगों का विस्तृत निवेचन किया है वहां ब्रजभक्ति और ब्रजमहत्व पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है। मीतलजी ने गोपाल रचित कितने ग्रंथों को देखा है, यह तो नहीं कहा जा सकता है किन्तु ग्रंथों के आधार पर उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं वे वैज्ञानिक हैं।

कवि का कृतित्व परंपरा से संबद्ध तो है ही उसका युग बोध भी पर्याप्त तीव्र और वैविध्य-पूर्ण है। प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही किनारों के बीच कवि की भावधारा प्रवाहित हुई है।

३ दंपति वाक्य विलास

१ प्रेरणा

कवि ने ग्रंथ की प्रेरणा अपने पिता से प्राप्त की। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। गोपालराय ने एक दिन काव्य रचना में सुख-दुख पर दो कवित्त बनाकर अपने पिता को सुनाए। पिता ने प्रेरणा दी कि इसी प्रकार जीवन के प्रत्येक कार्य-व्यवसाय के दोनों पक्ष स्पष्ट किये जा सकते हैं और प्रस्तुत ग्रंथ का बीज वपन हो गया।[1] इस ग्रंथ की मुद्रित प्रति के विज्ञापन में ग्रंथ की प्रकृति का स्पष्टीकरण किया है "इस पुस्तक को प्रश्नोत्तर की रीति से उक्त कवि ने बड़ी उत्तमता से बनाया है, जिसमे पुरुष ने प्रत्येक उद्यम का गुण दोहा और कवित्त में वर्णन किया है और स्त्री ने उन्हीं छन्दों में उसका दोष दिखाया है। ऊपर के मुखपृष्ठ पर लिखा है सम्पूर्ण उद्यम-व्यापार तथा हुनरों के गुण अवगुण परम मनोहर दोहा सोरठा कवित्त आदि छन्दों में वर्णित हैं। इस प्रकार जीवन व्यापार के विभिन्न पक्षों के गुण दोषमय रूप को अंकित

---

१ दंपतिवाक्य विलास १। १० ९९

करने की प्रेरणा कवि को मिली और उसी प्रेरणा का परिणाम विकसित होता गया।

सबसे बड़ी प्रेरणा कवि को युग से मिली। गोपाल कवि ने अपने पूर्व के कविकर्म पर विचार किया. उसने रस-सागर आदि अनेक क्लिष्ट रचनाएँ की थीं। उन रचनाओं का ग्राहक वर्ग अत्यन्त सीमित था। तब कवि ने जन की प्रवृत्ति के अनुकूल यह सुगम रचना की.

रससागर दै आदि वहु, किए ग्रंथ अभिराम।
कठिन अर्थ अरु श्लेषयुत, कीने तिनमें काम।
सब कोऊ समझैं न जह, समझैं जिनें प्रवीन।
याते लौकिक ग्रंथ यह, कीनों सुगम नवीन। [1]

इस प्रकार कवि का लोकप्रिय रचना करने की प्रेरणा अपने अंतर मे ही मिली। उसकी अबतक की रचनाएँ रीतिकालीन चमत्कारी, श्लिष्ट, और क्लिष्ट काव्य की परम्परा मे आती थीं। प्रस्तुत कृति मे कवि ने उस मार्ग को छोडा है। कवि को युग-रुचि की पहचान भी है - रीतिकालीन काव्य-रुचि का ह्रास हो गया था। तत्कालीन जन-मन को समझ कर ही कवि के इस प्रकार की रचना में प्रवृत्त होना पड़ा :–

समय बमूजिब देखिकै, कीयौ ग्रंथ प्रकास।
आज काल के नरन के, सुनि मन होइ हुलास। [2]

---

१. द. वा. वि. (मुद्रित प्रति) २१। १२, १३

२. " " २१। १४

कवि अंत मे क्षमा-प्रार्थना भी करता है—

याते सुरवि गुपाल को, देउ दोष मति कोइ।
ता सूजिग देखी हुवा ता सम वरणी होइ।

इस प्रकार कवि ने युग-रुचि को देख कर ही इस ग्रथ का रचना की प्रेरणा ग्रहण की। युग रुचि एक प्रकार से काव्य शास्त्रीय सस्कारो से मुक्त हो रहा थी। उस समय राज्याश्रय शिथिल होने लगा था। आदर ऐसी रचनाओ का था, जिनम युग के सजीव स्पन्दनो को वाणी मिली हो।

विषय-वस्तु

दपति वाक्य विलास एक ज्ञानकोश है। कवि ने अपने युग की प्राय सभी शासकीय, धार्मिक एव सामाजिक इकाइयो का परिचय दिया है। सवभत कोई सस्था या जाति ऐसी नहीं बची जिस पर कवि न अपनी मौलिक दृष्टि व्यक्त न की हो। अपनी बात को निर्भय रूप से कह देना जैसे कवि का स्वभाव है। यही कारण है कि शब्दो के जजाल और रूढियो के बीच भी कवि के सत्य एव यथार्थ कथन जगमगा उठते है। विषय वस्तु का जीवन इन्हीं उक्तियो म है।

कवि का युग मुस्लिम शासन और उस युग की सस्कृति के अवसान का युग है। अग्रजी प्रभाव भारतीय क्षितिजो पर एकत्र होकर गहराने लगे थ। अग्रजी नौकरशाही के पुर्जो की वास्तविकता सामने आने लगी थी। जनता इस नवीन व्यवस्था मे जकड कर कसमसाने लगी थी। प्रस्तुत कृति के विषय के *संसारों के निर्धारण मे युग की इन्हीं परिस्थितियो का हाथ है।* वस्तु के अनुकूल और प्रतिकूल दोनो ही पक्षो के अनिवार्य सन्निवेश के कारण उसमे पूर्णता आई है।

परिस्थितियो की निराशापूर्ण जटिलता व्यक्ति की पराजय को मुखर बना देती है। उसका मन एक कड़वे धुए से भर जाता है। जीवन कुछ किरकिरा सा हो जाता है। ये स्वर दपतिवाक्य-विलास में भी प्रकट हैं। कवि व्यक्ति की उस विवशता को जैसे अंकित कर रहा हो जो प्रत्येक दिशा मे मार्ग पूछता हो और दिशा उसे मार्ग बतलाने के स्थान पर एक व्यंगपूर्ण अट्टाहास-कर उठती हो। कवि की पत्नी भौतिक जीवन के अनेक मार्गो को, कभी धार्मिक विश्वासों के आधार पर और कभी व्यावहारिक कठिनाइयो एवं बाधाओ का सकेत करके अवरुद्ध करती मिलती है। इस प्रकार की वस्तु-ध्वनि इस रचना में मिलती है।

वस्तु विकास की अन्तिम कड़ी कवि का परलोक-चिन्ता की ओर मुड़ जाना है। कभी विनय के स्वर सुनाई पड़ने लगते हैं करुणाष्टक में भक्तिमूलक पुराणाश्रित करुणा ही विगलित हो उठी है। कभी पश्चाताप की घुटन का कवि अनुभव करने लगता है - 'धोबी को सो कुत्ता भयो घर को न घाट को'। पत्नी की यथार्थवादी चोटों से तिलमिला कर कवि अपनी हार स्वीकार कर लेता है, और वह कह उठता है :-

> सुनिकें तेरी बात को, उपज्यौ हिय मे ज्ञान।
> भजन-भावना भक्ति बिन, वृथा गये दिन जान।

अन्त मे स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय ही श्रेयस्कर कहा गया है :-

> यह 'गुपाल' तिय सीख सुनि, कौनों उद्यम जोइ।
> स्वारथ ही के करन में, परमारथ जिमि होइ।

इस प्रकार का वस्तु-विकास जीवन की निराशापूर्ण, संघर्षमय परिस्थिति मे ही होता है। यह भी हो सकता है कि यह वस्तु कवि की वृद्धावस्था जन्य विवशता का ही परिणाम हो। कवि ने तुलसी की भांति कलिकाल के दोषो का भी भरपूर वर्णन किया है। ग्रथ के प्रयोजन के सबध मे कवि ने स्पष्ट कहा है कि इसकी रचना वैराग्य की ओर मन को प्रवृत्त करने के लिए की गई है।

'राय गुपाल' विराग बडामन दपति वाक्य विलास बनायो।[1]

इस प्रकार की रचना मे सासारिकता के दोषो का वर्णन अधिक होना ही स्वाभाविक है।

वस्तु के सबध मे एक बात और भी दृष्टव्य है। इसमे कवि के स्वानुभव का ही अधिक समावेश है। वस्तु की दृष्टि से इसी लिए इसमे कुछ अधिक नवीनता और विलक्षणता आ गयी है। थोड़े से ही ऐसे विषय इसमे हैं, जिनके लेखन मे कवि रूढियो से मुक्त नही हो पाया है। अन्यथा कवि के निजी अनुभव ही वस्तु योजना के मूल मे हैं। इसी लिए सारी भूमिका अधिक सजीव है। रीतिकालीन जड़ता से विषय वस्तु बोझिल नही है। वस्तु की इसी नवीनता ने इस ग्रथ की लोकप्रियता मे योगदान दिया। इसकी अनेक प्रतिया तैयार की गई।

'देखि नई रचना वचनानि की, सो मुनिके सबने लिखवायो'[2]

वस्तु के क्षेत्र मे यह एक नवीन प्रयोग ही था। उस युग मे प्राप्त मनुष्य का अस्तव्यस्त रूप इस रचना मे प्रकट हो जाता

---

१ दपति वाक्य विलास १।१७

२ दपति वाक्य विलास १ १७

है। कुल मिला कर यही कहा जा सकता है कि कवि वस्तु योजना में बौद्धिक और यथार्थवादी अधिक है। भावुकता करुणाष्टक जैसे आध्यात्मिक प्रसगो मे ही अधिक आई है।

३ काव्य रूप

काव्य रूपो की दृष्टि से रीतिकालीन युग पर्याप्त वैविध्यपूर्ण रहा है। शास्त्र-ज्ञान के प्रदर्शन और प्रचार के लिए भी रचनाएँ की जाती थी।

कोषो की परम्परा संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी तीनो ही स्तरों पर चलती रही। संस्कृत का नीति साहित्य एक दीर्घ और समृद्ध परम्परा रखता है। दपतिवाक्यविलास के प्रकाशको ने प्रस्तुत रचना को प्राय: उसी परम्परा मे रखा है। "यद्यपि संस्कृत में सुभाषित रत्नाकर, वृहच्छारङ्गधर आदि बहुत ग्रंथ छपे हैं परन्तु वे संस्कृतज्ञ जनो ही को आनददायक है। हमारे भाषा के रसिक जनो की तृप्ति इनसे होना असभव है'।[1] इस प्रकार नीति उपदेश की प्रवृत्ति से प्रेरित ज्ञानकोश की संज्ञा प्रस्तुत रचना को दी जा सकती है। मीतलजी ने इसे ज्ञानकोष की ही संज्ञा दी है।[2] इस नामकरण के पीछे यह मान्यता प्रतीत होती है कि कोष दो प्रकार के होते हैं शब्दकोष और ज्ञान कोषा दोनों की परम्परा हिन्दी में मिलती है।

शब्दकोष भी दो प्रकार के होते है। एक वे जिसमें कवि के व्यक्तित्व का सम्पर्श शून्य होता है। लेखक संदर्भ-निरपेक्ष होकर शब्द और उसके प्रचलित अर्थों का संग्रह कर देता है। इस प्रकार के कोषों की परम्परा निघण्टु से प्रारंभ होती है। यही

---

१. दं वा वि. (मुद्रित) विज्ञापन।

२. सरस्वती, खंड १, संख्या ६ : 'व्रज भाषा का एक ज्ञानकोष' लेख

प्राप्त कोषो मे सबसे प्राचीन है।[1] आगे इसकी अविच्छिन्न परम्परा चली।[2] बहुत से कोष लुप्त भी हो चुके है। अमरकोश अवश्य प्राप्त होता है। इस ग्रंथ मे समानार्थक, नानार्थक प्रत्यय शब्दो के विभाग मिलते है। आगे भी नानार्थक शब्दो की नाम-मालाएँ चलती रही। प्राकृत मे भी कोषो की परम्परा अविच्छिन्न रही।[3] देशी नाम-मालाओ का नवीन सूत्र[4], देशी तत्वो की लोकप्रियता को प्रकट करता है। अपभ्रंश ने प्राय प्राकृत शब्दकोषो की सामग्री को काम मे लिया। हिन्दी मे भी नाममाला कोषो की परम्परा चलती रही।[5] हिन्दी नाममालाएँ प्राय छन्द बद्ध है। इनका उद्देश्य शब्दकोष तैयार करना नही था। "इस उद्योग का उद्देश्य यही विदित होता है कि हिन्दी के कवियो की शब्द सपत्ति को बढाया जाए। हिन्दी कवियो को अपने काव्य मे विशिष्ट रूपेण एक शब्द के विविध पर्यायो के प्रयोगो की आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ये नाममालाएँ लिखी जाने लगी"।[6] सस्कृत काव्य

---

१ भगवद्दत, वैदिक कोष, पृ ५८ (भूमिका)

२ इस परम्परा में ये ग्रंथ आते है कात्यायन कृत नाममाला, वाचस्पति का शब्दकोष, विक्रमादित्य का शब्दार्णव, ससारावृत तथा व्याडिकृत उत्पलिनी आदि।

३ उदाहरण के लिए धनपाल (१००० ई०) कृत 'पाइअलच्छि' ग्रंथ लिया जा सकता है।

४ हेमचन्द्र, (१०८८–११७२ ई०) की देशी नाममाला, अभिमान चिन्ह का 'देशी कोष' गोपाल का देशी कोष, देवराज के छन्द सबधी ग्रंथ का देशी कोष आदि को इस सूत्र के अतर्गत रख सकते है।

५ सूची के लिए द्रष्टव्य, सत्यवती, सहद, नाममाला साहित्य, भारतीय साहित्य (वर्ष ३, अक ४) पृ ७७–७८

६.

वस्तुज्ञान→विवेक— —पुरुष कथन (गुण)— / —पत्नी कथन (दोष)— →संवाद→वैराग्य

→आध्यात्मिक तत्त्व→शान्ति की प्रेरणा
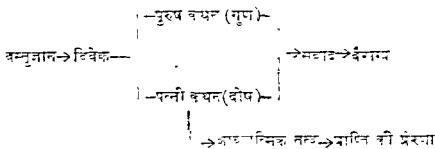
इस प्रकार समान्य वस्तुस्थिति पहले विवेक की कसौटी पर चढ़ाई जाती है। विवेक उसके पूर्व पक्ष, और उत्तर पक्ष को सामने लाकर निर्णय करना चाहता है। यह समस्त प्रक्रिया तर्काश्रयी है। परिणामत: मिथ्या के त्याग के लिए भूमिका बन जाती है। त्याग के पश्चात ग्रहण की प्रक्रिया और ग्राह्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाते हैं। ग्रहण की प्रक्रिया में ज्ञानात्मक भाग भक्ति-भाव में अभिसिंचित हो उठता है और शान्ति का समापन हो जाता है।

वस्तुज्ञान का विवेकपूर्ण संस्कार 'संवाद' शैली में उतर आता है। संवाद ही किसी वस्तु के उभय पक्षीय रूप को सामने ला सकता है। संवाद का अंत निर्णय-बिंदु पर पहुँच कर हो जाता है और कवि की वाणी अकेली रह जाती है। कवि वाणी पश्चात्ताप और युग-प्रवृत्ति का कथन करती हुई अध्यात्म की घोषणा कर देती है और ग्रंथ की समाप्ति हो जाती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि दंपतिवाक्यविलास एक 'संवादात्मक ज्ञानकोश' है।

४. प्रतियां :

४. १. खोज :

दंपतिवाक्यविलास की एक प्रति हमें रंग जी के मन्दिर (वृन्दावन) में मिली। उसका विवरण, 'भारतीय

साहित्य, में पहले छपा।[1] इस प्रति को श्री प्रभुदयालजी मीतल को भी दिखलाया गया। श्री मीतलजी को इसको देखकर बड़ा संतोष हुआ। इस ग्रंथ के रचयिता, गोपाल कवि का संक्षिप्त परिचय वे पहले ही अपने एक ग्रंथ में दे चुके थे। इस ग्रंथ का नामोल्लेख भी उन्होंने वहाँ किया है। इसका नाम उन्होंने दंपतिवाक्यविलास दिया है। संभवतः इस ग्रंथ की प्रति उन्हें उस समय नहीं मिली थी। अतः इसका विशद परिचय वे नहीं दे सके थे। जब हमारे द्वारा प्राप्त प्रति को उन्होंने देखा तो उन्होंने एक लेख लिखा। ब्रजभाषा का एक ज्ञान-कोश।[3] इस लेख की प्रतिक्रिया में श्री अगरचन्द नाहटा ने भी एक लेख लिखा। उन्होंने सूचना दी कि यह ग्रंथ बहुत पहले प्रकाशित हो चुका है।[4] ज्ञात हुआ है कि अब से लगभग ६८-७० वर्ष पूर्व (सं० १९५० में) इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो चुका है। इसके पश्चात हमने इसकी मुद्रित प्रति को मँगवाया और अपनी प्रति से इसकी तुलना की। हमने नाहटाजी से भी कुछ पत्र व्यवहार किया। उन्होंने एक पत्र में इसकी अन्य प्रतियों की सूचना भी दी। उन्होंने एक पत्र (१०-११-६७) में लिखा "एक नवीन सूचना दे रहा हूँ कि इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में भी है। इस प्रति का नंबर ११८२०, पत्र [illegible] और सं० १९०३ की लिखी हुई है। इस प्रकार प्रतियों की संख्या बढ़ने लगी। उसके पश्चात हैदराबाद में इस ग्रंथ की एक और

---

१ भारतीय साहित्य, वर्ष ३ अंक ४ (१९५८) पृ १७०, १७२

२ चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृ ११३, ११८

३ 'सरस्वती', खंड १, संख्या ६

४ 'सरस्वती', दंपतिवाक्यविलास के प्रकाशित संस्करण, सरस्वती खंड २ संख्या ८

प्रति मिल गई। प्रतियों की खोज का यह क्रम यहीं खत्म हुआ। हो सकता है कि इसकी कुछ और प्रतियाँ भी छपी पड़ी हों। जितनी प्रतियाँ प्राप्त हैं, उनसे इस ग्रन्थ की लोकप्रियता तो सिद्ध होती ही है। मुद्रित प्रति में यह सूचना मिलती है कि इसके तीन संस्करण निकले। यह ग्रंथ प्रथम किसनलाल श्रीधर ने छापा, परन्तु शिला की छपाई व ग्रन्थ की अशुद्धि के कारण काव्यानुरागियों को प्रिय न हुआ। अतएव हमने उनसे यथाधिकार लेकर द्वितीयावृत्ति वाजपेयी पं. शिवदुलारे द्वारा परिशोधित कराय मुद्रित किया है....और अबकी बार इसकी तृतीयावृत्ति अत्यन्त संशोधित करके छापी गई है।'[1] प्रतियों की यही खोज रही है।

४. २. अंतर .

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की प्रति तुलना के लिए उपस्थित नहीं हो सकी। इसके लिए तीन प्रतियों को आधार बनाया गया वृन्दावन की प्रति, हैदराबादवाली प्रति और मुद्रित प्रति। इनमें से वृन्दावन वाली प्रति और हैदराबादवाली प्रति संभवतः कवि ने अपने हाथ से लिखी है : वृन्दावन प्रति में यह सूचना मिलती है 'इति श्री दंपतिवाक्यविलास सम्पूर्ण समाप्त। सं. १९०० मि. ज्ये. सुदी ७, चंद्रवार लिपी स्वहस्त मनीपारें मध्य वृन्दावन में। शुभमस्तु।" इस प्रकार कवि ने स्वयं इसे लिखा। हैदराबाद वाली प्रति के अन्त में यह लिखा है. "इति श्री दंपतिवाक्यविलास सम्पूर्ण समाप्त संवत् १८९० मिती वैसाख वदी ८ रविवार, लिखी गुपालराय श्री वृन्दावन मध्यस्थ मनीपारे मध्य।" मुद्रित प्रति कवि ने अपने हाथ से नहीं लिखी। उसके अंत में यह सूचना मिलती है।

वेद ब्रह्म निधि ईश्वर संवत अवधि अधार।
श्रावण शुक्ला त्रयोदसि, संवत शुभ शनिवार ॥

दपतिवाक्यविलास की, पोथी सब सुख राम।
लिखि वृन्दावन मध्य मे, श्री वृन्दावन दास ॥

इन सूचनाओ से य निष्कर्ष निकाले जा सकते है : तीनो प्रतियो मे आरम्भ करने की तिथि एक ही है - सवत् १८८५ वि स तीनो ही प्रतिया वृन्दावन मे लिखी गई। दो प्रतियो का लेखन स्वय कवि ने किया और मुद्रित प्रति किन्ही वृन्दावनदास जी ने लिखी। तीनो प्रतियो के अन्त मे जो अन्त का सवत दिया गया है, उसमे अतर मिलता है —

वृन्दावनवाली प्रति	अत सवत १९०० वि
हैदराबादवाली प्रति	,, १८९० वि
मुद्रित प्रति	,, १९१४ वि

इस प्रकार १८८५ से लेकर १९१४ तक इस ग्रथ का लेखन हुआ। हैदराबादवाली प्रति आरम्भ होने से पाँच वर्ष पीछे समाप्त हुई और वृन्दावनवाली प्रति दस वर्ष पश्चात। ग्रथ-विकास की दृष्टि से हैदराबादवाली प्रति छोटी है इसमे पॉच वर्षो की साधना का ही फल है। वृन्दावनवाली प्रति इन सब से बडी है। आकार का यह विस्तार कवि की १५ वर्षो की साधना का फल है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने समय-समय पर इस ग्रथ के मूल रूपो मे छेन्द जोडे है। इसमे आकार का विकास होता गया। इस समय उपलब्ध प्रतियो मे सबसे अधिक बडा आकार वृन्दावनवाली प्रति का है। यही ग्रथ विकास की अन्तिम कडी है।

ग्रथ के अध्यायो को विलास के नाम से अभिहित किया गया है। हैदराबादवाली प्रति मे केवल आठ विलास है। मुद्रित प्रति मे २१ है और वृन्दावन वाली प्रति मे सत्ताईस है। हैदराबाद

वाली प्रति ग्रथ की आदि स्थिति की सूचना देती है। वृन्दावन वाली प्रति अंतिम कड़ी है। मुद्रित प्रति की स्थिति या तो बीच की है अथवा वृन्दावनवाली प्रति से वह सकलित है। सकलन मे कुछ अध्यायो को छोड दिया है। तीसरी सभावना यह भी है कि मुद्रित प्रति का आधार कोई अधूरी प्रति हो सकती है। उसके अन्त मे संपूर्ण समाप्त शब्द भी नहीं है। केवल यह लिखा है – "इति श्री दपतिवाक्यविलास नाम काव्ये प्रवीणराय आत्मज गुपाल कविराय विरचिते ग्रथफल स्तुति वर्णन नाम एकोविशो विलास।" निष्कर्ष रूप मे इतना ही कहा जा सकता है कि वृन्दावन के रगजी के मदिर से प्राप्त प्रति, प्राप्त प्रतियो मे सबसे बडी है तथा स्वय कवि द्वारा लिखी गई है, अत प्रामाणिक है। उसी को मूलाधार मानकर इस ग्रथ का पाठ सपादन करने की चेष्टा की गई है। यदि अन्य प्रतियों मे छन्द आदि की शुद्धता की दृष्टि से अनुकूल पाठ मिला है, तो उसे ही दिया गया है और पाठान्तर पद-टिप्पणी के रूप मे दिया गया है।

५. भाषा और लिपि संबंधी विशेषताएँ :–

५. १ लिपिकार सदैव ही ष–ख मान कर चला है। 'ष' का ध्वन्यात्मक मूल्य कही भी मूर्द्धन्य (ष) जैसा नही है। लिपि की दूसरी विशेषता (अ) पर विविध मात्राये लगा कर विभिन्न स्वर ध्वनियों को प्रकट करने की है :– अै-अे आदि। यह प्रवृत्ति सार्वत्रिक तो नही है, पर एक सीमा तक मिलती अवश्य है। लिपिक (ब) और (व) के अंतर के प्रति सचेत है। सामान्यतः (व) लिपि चिन्ह (ब) की ध्वनि को ही प्रकट करता है। अर्द्ध-स्वर के रूप मे उसने 'ब' के नीचे एक बिन्दी लगाई है : ब़–व, व–ब।

इनके अतिरिक्त लिपि की अन्य विशेषताएँ नहीं मिलती।

५ ७ भाषा– लेखक की मातृभाषा ही व्रजभाषा है। पर उसने परिनिष्ठित साहित्यिक व्रजभाषा का प्रयोग ही सामान्यतः किया है। कुछ स्थानीय या आंचलिक विशेषताओं को भी लेखक छोड नहीं पाया है। साथ ही कुछ राजस्थानी और पूर्वी रूप भी मिलते हैं।

५ २ १ ध्वनि संबंधी विशेषताएँ–

५ २ ११ (ण) – व्रजी में ण, न की प्रवृत्ति प्रमुख है। राजस्थानी में इसके विपरीत न, ण की प्रवृत्ति मिलती है। लेखक ने दोनों प्रवृत्तियों का परिचय दिया है णारि–नारि में राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट है।

५ २ १२ घोषीकरण–यह प्रवृत्ति व्रजी के ध्वन्यात्मक मृदुलीकरण का ही एक भाग कही जा सकती है अघोष ध्वनियों की अपेक्षा सघोष ध्वनियाँ मृदुतर होती है परगट–(प्रकट) परगास–(प्रकाश) गातिग–(कार्तिक) जैसे उदाहरणों में यह प्रवृत्ति स्पष्टतः परिलक्षित है।

५ २ १३ अल्प प्राणीकरण–यह भी मृदुलीकरण की प्रक्रिया का ही एक भाग है। स्फुट रूप से यह प्रवृत्ति भी मिलती है। उदाहरण के लिए निपद–(निषेध) कबी–(कभी) जैसे शब्दों को लिया जा सकता है।

५ २ १४ स्वरागम–इस प्रक्रिया से भाषा की स्वर-बहुलता में वृद्धि होती है। दूसरी ओर संयुक्त व्यंजनों की संख्या घटती है। परिणामतः भाषा अधिक काव्योपयोगी हो जाती है। यह प्रवृत्ति व्रजभाषा में बढती ही रही। उदाहरण के लिए इन शब्दों को लिया जा सकता है – परगास–(प्रकाश) परगट–(प्रकट) परवीन–(प्रवीण), मरम–(मर्म), छिप्रि–(क्षिप्र), बरन–(वर्ण), प्रापति–(प्राप्ति), सवाद–(स्वाद)

५. २. १५ स्वर लोप–स्वरलोप की प्रवृत्ति सामान्यतः ब्रज-भाषा में मिलती है। गोपाल कवि की भाषा में आदि स्वरलोप की प्रवृत्ति विशेष आकर्षक है। आरंभिक ध्वनि पर बलाघात होने के कारण आदि स्वर में लोप की प्रवृत्ति विरले ही कहीं देखी जाएगी। पर दंपतिवाक्य विलास में ऐसे शब्द मिलते हैं -

ठारह–(अठारह), तिहास–(इतिहास), रु–(अरु), लाइची–इलायची।

५. २. १६ व्यंजन

इस प्रवृत्ति के कारण भी व्यंजन-बहुल भाषा की कर्कशता में कमी आती है। यह प्रवृत्ति मध्यकालीन आर्य भाषाओं की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति थी। इस प्रवृत्ति के द्योतक उदाहरण "दंपतिवाक्य-विलास" में भी प्रचुर हैं। जोइसी (ज्योतिषी)

५. २. १७ अन्य प्रवृत्तियां

ब्रजी की मुख्य प्रवृत्ति ल–र की है। किन्तु कुछ शब्द र–ल की प्रवृत्ति के द्योतक भी हैं: मैर–मैल। स्वर के ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति के परिचायक शब्द भी हैं: विसाख (वैसाख)। द्वित्वीकरण मध्यकालीन भाषा शैली में बहुत प्रचलित था। पीछे यह प्रवृत्ति ओजपूर्ण शैली का आवश्यक अंग बन गई। कहीं यह मध्यकालीन प्रवृत्ति के रूप में, कहीं शैली का अंग होकर और कहीं छन्द-पूर्ति की आवश्यकता के रूप में द्वित्वीकरण मिलता है।

५. २. २ शब्दावली :

ब्रजभाषा के साहित्यिक रूप में प्रचलित रूढ़ शब्दावली के प्रयोग की ओर तो कवि झुका हुआ है ही, आंचलिक शब्दावली के प्रयोग के द्वारा भी उसने भाषा में सजीवता लाने का प्रयत्न किया है। लोक शब्द इस प्रकार के हैं: परस–परसाउ (संपर्क) ठकुर (प्रतिष्ठा, समृद्धि), मनीर (मनोरा), खप्पर (खप्पर),

गाम (प्राणप्रवित्ति), औंडो (गहरा), लाली (चिंता), ज्यान (नुकसान), जुगादी (बडा), आदि। भाषा को सजीव बनाने मे ध्वन्यात्मक शब्दावली का योगदान भी कम नही है रैल-फैल (अधिकता), झलाबोर (सराबोर), दहाड, झिगारत, घनघोरत, रहसि-बहसि आदि इसी प्रकार के शब्द है। अरबी-फारसी के शब्द भी कम नही हैं लाफता, ग्याफता, जरकसी, पसगीना, जबीना, तरफ, दरफ, हरफ, ख्याल, तमासा, गरक, सुखन, दिक्क (दिक) आदि शब्द उदाहरण के रूप मे लिए जा सकते है। अधिक शब्द शासकीय नौकरियो के नामो मे आए हैं मीरमुशी, मुंसिफ, आदि। माल (Revenue) आदि से सबधित शब्दावली भी कम नही है।

६. शैली :

कवि ने पुस्तक की व्यवस्था बौद्धिक आधार पर की है। भाव-सौन्दर्य की स्थितिया प्राय नही आई है। करुणाष्टक मे अवश्य ही करुणा का सौन्दर्य प्रकट हुआ है। अत मे कवि ने शात रस मे काव्यधारा को समाविष्ट कर दिया है। शृगार की झलकिया नाम-वर्णन जैसे प्रसगो म छुटपुट रूप से आई हैं। प्राय कवि को भाव सौन्दर्य प्रकट करने के अवसर नही मिले हैं। सदर्भ की बौद्धिकता से कवि अवगत भी है और कविकर्म के प्रति सावधान भी।

कविकर्म की धारा कलागत सौन्दर्य को स्पर्श करती हुई प्राय प्रवाहित हुई है। कवि ने प्राय अर्थालंकार-योजना मे रुचि नही दिखलाई है। उसे प्रागगत सौन्दर्य प्रिय है। ध्वन्यात्मक योजना के सौन्दर्य से ही कवि को सतोष लाभ करना पडा है। प्राय दोनो के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

१ एक मर्म रहसे-करसे, बरसे रसरग भरी सदुधाने। (१।१९)
२ तरुनि, तरुण, तन तात मों तपन तेल

तूलम तमोल सवही के मन भाए हैं। (३।२०)

इसी प्रकार के बहुत से उदाहरण खोजे जा सकते हैं। यमक भी कवि को प्रिय है। यमक की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

धन धन ही ते धनिधनि धन ही ते प्यारी
धन धन ही तें, सब धन धन ही ते हैं।

एक और उदाहरण इस प्रकार है। :—

दक्षण मुनि पिय कान दै, दक्पन, दक्पन जात।
लक्पन, लच्छिन लपि लापि, लक्पन ही लगि जात (२।१२)

संक्षेप मे कहा जा सकता है कि कवि को शब्दालकार-योजना मे विशेष रुचि है। ध्वनि और शब्द की आवृत्ति के द्वारा वह शैलीगत चमत्कार की सृष्टि करता है। आवृत्ति-गत सौन्दर्य इस चरण मे देखा जा सकता है।

साधिके समाधि साध-साधना न साधि याहि,
साधि के असाध कैसे प्रभु को अराधि है। (१।२७)

अनेक कवित्तो मे सिंहावलोकन का चमत्कार भी मिलता है। ध्वनिमूलक चमत्कार के अतिरिक्त पुस्तक की बौद्धिक योजना मे कवि को और कोई मार्ग नही मिला है। अन्य ग्रंथों में उनकी भाव-योजना भी मार्मिक है। यदि शैली में कहीं आंचलिकता मिलती है, तो स्थानीय मुहाविरों और लोकोक्तियों के प्रयोग मे ही मिलता है। वैसे कवि में रूढ़ रीतिकालीन शैली का ही आधिक्य है, पर विषय की विविधता और विचित्रता के कारण रूढ़ शैली के बीच कुछ शैलीगत प्रयोग भी दृष्टिगत होते हैं।

चन्द्रभान रावत
राम कुमार खण्डेलवाल

प्रथम विलास

भूमिका★

श्री गणेसायनमः

अथ गुपालराय कृति दंपति वाक्यविलास गृंथ लिख्यते ॥

मंगलाचरण

कवित्त

सामल वरण[1] अरुनाई अवरण[2] मायं
चन्द्रका धरण[3] वालकुंडल करण[4] मे।
फैलि रही तरुण[5] किरनि[6] की सी आभा ओप
आभरन बीच गरें मोती की लरन में।
वरन वरन अतरन तर अवरन[7]
राजत 'गुपालकवि' दरन दरन में।
विघन हरण सुप सपति करन ऐसे
राधिकारमन के चरन की सरनि में ॥१॥

दोहा

गणपति गिरिजापति गिरापति देउवुद्धिः विसाल।
दंपतिवाक्यविलास को वरनत सुकविगुपाल ॥२॥
वुधि विवेक गुण हीन हौ कविताको नहिंवोध।
गुण दूपन भूपन जिते लीजो[8] तुम कवि सोधि ॥३॥

★ हस्तलिखित प्रति (वृ०) मे 'घू [illegible] का' शब्द है।

१. वरन। २. अघरन। ३ धरन। ४. करन। ५. तरुन।
६. किरिनि। ७ मबर। ८. लीजहु।

कवि-वंश

कवित्त

परम प्रतापीकवि भए जुगराजराय,
जाके[1] मुरलीधर प्रगट नाम पायो है।
जाके[2] घनस्याम सुत वृंदावन बसे आनि[3]
करि करनीको जस जगमें बढ़ायो है।
जनमि प्रवीन गृथ पिंगल औ रसजाल
एकादसी कातग[4] महातम को गायो है।
जाको[5] सुत प्रगट गुपाल कविराय तिनि
दंपतिके वाक्य के विलास को बनायो है ॥४॥

दोहा

परगराय परवीनसुत कविगुपाल यह नाम।
मध्य मनीपारे बसैं श्रीवृंदावन धाम ॥५॥[6]

---

१. ताके। २. ताके। ३. वासकीनो। ४. गालिग। ५. ताको।
६. ता गुपाल कवि को सदा वृंदावन मे वास।
मध्य मनीपारे रहे व्रजरायन को दास ॥

कवि वंश वृक्ष:

जुगराजराय – मुरलीधर – घनस्याम – प्रवीणराय – गुपालराय

सम्भवत: परगराय, प्रवीणराय का विरद हो। कवि ने अपना निवास-स्थान वृन्दावन लिखा है। वृन्दावन मे मनीपारे मुहल्ले मे इस कवि के वंशज रहते थे। पर आज उस मुहल्ले मे कोई 'राय' का घर नहीं है। पूछने पर कुछ वयोवृद्धों ने बतलाया कि यहाँ पहले 'राय' लोगों के घर थे। पर आज यहाँ कोई राय नहीं है। कवि ने मनीपारे का गर्व पूर्वक उल्लेख किया है। स्वयं गुपाल कवि ने लिखा है कि मनीपारे में मिश्र लोगों का निवास है पर दो चार घर राय लोगों के भी हैं। यह मुहल्ला ब्राह्मणों का मुहल्ला ही है।

मातृभूमि-वृंदावन

कवित्त

चाहे लोकपाल भूअपाल यौ गुपालकवि
हाल ही निहाल होत जाकी रजधांनी में ।
स्यांमास्यांम धाम सब पूरनकरन कांम
लेत जाकौ नाम पाप पिरत ज्यौं घांनी में ।
कहां लग बरनवनाइ कै सुनावै कोऊ
जावे जस गाइवे की सकति न बांनी मं ।
तीनि लोक जांनी जहां बड़े पटरांनी ऐसो
वृंदावनजू की हम रहै रजरानी मं ॥६॥*

मनीपारौ

परम सुथांन भूमि निकट बिहारीजूके
इत राधा मोहैन[1] के घेरे कौ मिलाउसौं ।
जामें मिश्र परम उदार करें वास पुनि
जोंरसी[2] जवर थोकदारन मराउसौं ।
भनत गुपाल तामें चारिक हमारे घर
भूमिया वनिकद्वैक परन पराउ सौं ।
एक तै अधिक एक थोक सबही है, परि
मनीपारौ विप्रनसौं जटित जराउसौं ॥७॥

---

* इस कवित्त मे कविने वृन्दावन की महिमा का गायन भक्ति और श्रद्धा के स्वरो मे किया है। कवि चैतन्यसम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता है। इसलिए राधा-कृष्ण की निकुञ्ज-लीलाभूमि का दिव्य रूप कवि की वाणी में मुखरित हो उठा है।

१. मोहन। २. जोईसी। ३. एक ते।

गृंथ हेत

जग दुप पांन जांनउ जे विराग ग्यान

आमेंगुण घणे गुणमांननि रिझवेके।

करें जोई काम तामें दगा नहि पाई हांनि

टोटो नहि आवे, आमें हुन्नर कमेंवे के।

सवही को ज्ञांन घनमांननको राजीकर्नं

घरन नरन गुणमांनन रिझवेके ॥

कुजस गवेंवे के औसुजस वडेवे के

सुकेते हेत दंपतिविलास के वनेंवेके ॥९॥★

गृंथ प्रियोजन

कविता[1] कृति दुपमुप.[2] के कवित वनाअेदोइ।
कवि प्रवीन पितुकों जवहि जाइ सुनाअे सोइ[3] ॥१०॥

हे प्रसन्नि[4] ताही घरी आज्ञा मोकों दींन।
दंपति वाक्यविलास मुत कीजे गृंथनवीन ॥११॥

जिनकी[5] आज्ञा[6] पायमें कीनों, गृंथप्रकास।
कहत सुनत याके सदा होइ वुद्धि: परगास ॥१२॥

जिनि वातनते जगतमें काम परत नितआइ।
तिनके गुण दूपन सकल कहत् गुपाल कविराइ ॥१३॥[7]

पिय प्यारी मिलि परसपर, कहि गुणदोप प्रकास।
यातेनाम घरयो सुकवि दंपति वाक्य विलास ॥१४॥

★ यह है० प्रति में नहीं है।

१. लेपक। २. दुप्य। ३. कवि प्रवीन कों जाय कें तवहू सुनाये सोइ।
४. प्रसन्न। ५. तिनको। ६. अज्ञा।
७. तिनि दजिगारन करि जगत क्रुरम करत प्रतिपाल।
तिनि दजिगारन कों अवै वरनत सुकवि गुपाल ॥
यह दोहा मुद्रित प्रति में भी है।

संमत

ठारह से पिच्यासिया पून्यो अगहनमास।
दंपति वाक्य विलास को तव कीनो परकास[1] ॥१५॥

ग्रंथ सूची

कवित्त

धन दुष सुष घर वाहर प्रदेस देस
अमल अनेक पेल सूची परकासके।
सास्त्रअुपसास्त्र वर्नाश्रमसोध मदराज
सहर प्रवध अगरेजन के पास के।
वनिज, रकानि सव जातिवे विधान अध
माधमजिहान गुण प्रकृति' तिहासके।
सुकृत प्रकास ज्ञान भवित फल तासमे
गुपालजू विलास वहे दंपतिविलासके ॥१६॥*

सवैया

देषि नइरचना वचनानि की सो सुनिके सवने लिपवायो।
पंडित राज समाजनि में कविराजन के मनमें अति भायो।
दंपति वादहि[2] को मिसुकें सव वाननको[3] सुषदुष्प[4] दिषायों।
'रायगुपाल विराग वढामन दंपतिवाक्य विलास वनायो'[5] ॥१७॥
नारि निषेद कियो रजिगार वो प्रीतम जो वरनो ठहरायो।
प्यारहिप्यारमें प्यारी प्रवीनने चातुरी ते पियको विरमायो।
रेनिदिना[6] विछुरे[7]नहि नेरहू भोगविलास करे[8] मनभायो।
रायगुपालको पास ही रपिकें षीयो भलोअपनों मन भायो ॥१८॥

---

१ परगास। २ वान्हो। ३ रजगारनको। ४ दुष्प। ५ रायप्रवीन मे नद गुपाल ने दपति वाक्य विलास वनायो। ६ रेनिदिन। ७ विछुरे। ८ करें।
* यह कवित्त है० प्रति म नहीं है पर मुद्रित प्रति मे है।

लेकसमें रहसैं वहसें वरसें रसरंग भरी[१] बहु घातें ।
सुंदरि वैठी सुगंधित सेजपैं सोमासिगानकी[२] सरसातें ।
प्रीतम आइकें वैठे तहां गलवांही दियैंदियैंअंगप्रभातें ।
अैसे समे रूंजिगारनकी[३] कही वालसों लालगुपाल नें वातें ॥१९॥

जग विवस्था पुरसवाच ईस्त्रीप्रति

कवित्त

कुटम के पालिवे कों वोलें झूंठमांझ दिन
रैंनि यह प्यारी वूड़े वेललो वह्यो करें[४] ।
जिकिरि फिकिरि वीच व्याकुल रहतऊ
घरको मरम नहि[५] काहूसों कह्यो करें[६] ।
सुकविगुपाल धन पाएही निहाल होत
विन रूजिगार[७] देहदुपसों दलो[८] करें[९] ।
वस्ती वीच प्रभुही करत परवस्ती यह
हस्ती कौसौ परच गृहस्तीके रह्यो करें[१०] ॥२०॥

दोहा

याते कोऊ रुजिगारको कीजें कछूउपाइ ।
धन कमायकें लाइयें जाते[११] सव दुष जाइ ॥२१॥

इस्त्रीवाच[१२]

जग हितार्थ काजे मली प्रश्न करयों तें अंन ।
ज्यों मननें वुधि तियातें प्रश्नकरयों सुप दैंनि ॥२२॥*

---

१. झरी । २ सिंगारन । ३. वही । ५. नहीं (४) (६) (९) (१०) करैं । ७. रुजगाल । ८. दहूरो । ११. ताते । १२. इस्त्रीवाच पुरुप प्रति ।

*है० प्रति में नहीं है ।

सो मन, बुधि संवाद अब बरनि सुनांऊ तोहि ।
जाके कहत[1] रसुनत में द्रढ़ विराग उर होहि ॥२३॥*
दंपति के संवाद मिस जग दुषसुषकी बात
सोगुपाल तोसों अबैं करत सबैं विष्यात ॥२४॥*

धन सुष-दुष वर्णन

कवित्त[1]

रीतें सबहीतें नित गाम गुनी गीतें दिन
आनंदमें वीतें काज[2] होइ[3] चित चीतें है।
राषै बडी सीतें डरें काहूको न भीते हीते
अुपजें गुपालकवि नित नई नीतें है।
अरिकें अरीतें जे अनीतेहे अजीते लै करीते
पालिकीते जे वलीतेजग[4] जीते हैं।
धन धनहीतें, धनि धनि धनहीते प्यारी
धन धनहीतें सब धनष नही तेंहैं ॥२५॥

इस्त्रीवाच

काया कू डर नाहिना मायाकूं डर होत।
याते याके दुष सुनो जो जग होत अुदोत ॥२६॥

कवित्त

कांम क्रोध लोभ मांड डारे बांधि बांधि नित
जोरतमे जाके[5] अपराधनते दाधिहै ।

---

१. इससे पूर्व ह० प्रति में यह दोहा है:
"धन पायें सुष हो जो हमसों कहो गुपाल।
ताके तबें उपाय कों तुमें भंजि हें हाल॥"
२. काम। ३. होत। ४. जग। ५. ज्याके।
* ये दोहे ह० प्रति मे नही हैं।

आधि रहै मनमें, नराधिपति वांधिवेके
पोदिके¹ अगाध धरधरें होति व्याधि है।
साधिके समाधि साध साधना न साधि याहि
साधिकै असाध कैसे प्रभु को अराधिहै
सुकविगुपाल क्यों कहावत धनादिपति²
नित धनमाझ अैसी रहति अुपाधि है ॥२७॥

पुनि

निर्धन गरीबनकी बूझतु न कोअु वात
जातिपांति नातहू के होत हित हांति है।
होतें देपि घरमें पुसामदि करत सव
जिकिरि वसाइ आइ निकट बसाते हैं।
उकर वढ़ावें धन ही में धनआवें सदा
या के घर आअेहीते वनें सव वातें हैं।
मिलि वहुधांते करें कारज मुहाते याते
सुकवि गुपाल सव दौलतिके नाते हैं ॥२८॥*

इस्त्रीवाच

सवैया

पाल्है जो तिहु लोकनकी छिन अेकहि मांझ करें सुनिहाल है।
हालहि होत कृपाल दयाल कृपा करि जाकी जगावतु भाल है।
माल्है सूरजकोसो सदा [illegible] [illegible]जनकोकरें वुद्धि विमाल है।
साल्है सो तिहु लोकनकी सोई लाजकी रापनहार गुपाल है ॥२९॥*

दोहा

संपतिकी पति रापिहै श्रीपति पति पति आप।
मिलिकें दंपति में र्रये रतिपति कौसंताप ॥३०॥

---

१. पेदिकें, २. पिय।
* यह है० प्रति में नहीं है।

तन ते उद्यम होतु है उद्यम ते धन होत।
धन ते सुष जस पाइयै याते[1] नाम उदोत ॥३१॥

याते उद्यम करत में कबहु रोकियै नाहि।
धन को प्रापति पाइयै प्यारी याके माँहि ॥३२॥

बिनां गये पर देस के धन प्रापति नहि[2] होइ।
धन प्रापति बिन जगत में क्यों सुख पावै कोइ ॥३३॥

इस्त्रीवाच

कवि गुपाल हमसों अबै कहो सुष्प परदेस।
जब[3] जंयो परदेस को धन कमान सुविसेस[4] ॥३४॥

इति श्री दंपति-वाक्य-विलास नाम काव्ये प्रवीनराय आत्मज गुपाल‡

१. हं० ताते २. हं० क्यों ३. हं० तब ४. हं० कमान के हेत।
‡ हं० प्रति में नहीं है।

द्वितीय विलास

प्रदेस सुष

पुरुसवाच

दोहा

देस छोड़ि परदेस में इतनें सुष सरसात ।
प्यारी सो सुनि लीजियें तिनकी मो सौं बात ॥१॥†

कवित्त

देसन की सैल धनहू की रेलफैल आवें
चातुरी की गैल मन लगत कमैवे में ।
दारिद की हांनि धान[1] मांनन के मांन गुण[2]
मांनन[3] सौं जांनि होति पहचानि छैवे में ॥
फिकिरि[4] न एक गुन आवत अनेक यौं
गृप.लजू विसेप[5] वस्तु आवति मुलेवे में ॥
पैवे अरु दैवे जस लैवेकों सवाद प्यारी ।
एते सुष होत परदेसन के जैवे में ॥२॥

---

†हे० में नहीं है ।

१ हे० धन; २ हे० गुन; ३ हे० मानन; ४ फिरि; ५ हे० विसेक ।

प्रदेस दुख

दोहा

देस रहै सुख नाहि बिना गये परदेस के।
कहतु कहा करि पाइ उद्यम कृत कीए बिना ॥३॥†

इस्तीवाच

कवित्त

ठौर ठौर वास मन रहत उदास वास
वासकों प्रवीन[1] पिय परघर जाइवौ[2]।
अपनी खबरि पहुचाइबौ कठिन पुनि
घरकी पवरि बड़े जतनन पाइवौ॥
समझं न बानी लगं देसन कौं पानी ठगु
चोरत नहानी मिलं समं पं न पाइवौ[3]।
हाय बिमलाइ मरि जाइबौ सहज परि
जाइकं कठिन[4] परदेसकौ कमाइबौ ॥४॥

---

†हि० प्रति में इसके स्थान पर यह सोरठा है।
"जेते कहे न जात तेते दुप परदेस के।
निस दिन साझर प्रात घरकी लौं लागी रहैं।
प्रसग से अनुमान होता है कि यह सोरठा स्त्री द्वारा कहा गया होगा।

१. गुपाल [हो सकता है कि कवि ने अपने पिता 'प्रवीन' के रचित कुछ छद ग्रथ में समाविष्ट किये हों! इस छद में आया 'प्रवीन' नाम इस बात की ओर संकेत करता है। हि० में इसके स्थान पर 'गुपाल' कर दिया गया है।]

२. जायबो ३ पायबो ४. कठन

पुरुषवाच

पूरब

दोहा

रूप बिसेस बिसेस न भूमि सुहामन देस।
जाय करे याते अबै पूरब को परदेस ॥५॥†

कवित्त

ताफता रवाफना मुम्मज्जर श्रीमाफ
मपमल रमु केसी पट नाना सुषदाइयें।
सरस कृपान तरकस रुकमान बाण
जरकसी चीरा हीरा जहाँ जाइ लाइयें।
सुकवि गुपाल फुलवारी धाम धाम अब
श्रीफल कदलि पौंडा पानन को पाइयें।
बड़े बड़े केस होइ नंदुन असेस प्यारी
पूरबके देसमें बिसेस सुष पाइयें ॥६॥†

दोहा

जीवन जीवन हरहि जग प्रान हरै जग प्राण।
पूरबमें जमदूतिका सबको देति पिरान ॥७॥†

इस्त्रीवाच

सोरठा

लगै चोर ठग वाय पेट चलै पानी लगै
कोजै कबहु न जाइ पूरब परदेस कौं ॥८॥†

---

† है० में नहीं है।

कवित्त

पानीं लगि जात बहु फूलि जात गात पुनि
पेट चालि जात कछु पाय जात कबहूँ ॥
जादू करि करि कै सभोग गुपकाज पमु
पछी करि राखें नारि नरन कौं अबहूँ ॥
ब्राह्मन वनिक मीन मास मधु खात तेल
हरद लगाइ न्हात नारी नर सबहूँ ॥
फांसी दैके हाल मारि डारैं ठग जाल याते
जैये न गुपाल दिसि पूरबकी कबहू ॥९॥†

दक्षिनदिसा

पुरुषवाच

दोहा

दयामान धनमान पुनि लोग बडे गुनमान।
याते पछिम देसको कीजे सदा पयान ॥१०॥†

कवित्त

चीरा चीर सालू सेला समला बहाल दार
जरकसी काम जामें होत नाना भाति है ॥
सुकवि गुपाल लाल रतन प्रबाल मनि
मानिक बिसाल मोती महगी सुजाति है ॥
मेवा औ मिठाई फल फूल मूल धूल गूज
तरुनी अनूपन्हा सुजक्त गात है ॥
देखे बने यात सब सोभा सरसात प्यारी
दक्षिन दिसा के सुख कहे नहिं जात हैं ॥११॥ †

---

† हि० में नहीं है

इस्त्रीवाच

दोहा

दक्षण मुनिपिय कांनदे दक्षन दक्षन जात ।
लक्षण लछिन लपि लपन लक्षन ही लगि जांत ॥१२॥†

कवित्त

धोट्टलो उघारी निरलज्ज रहै नारी मांस
मदिरा अहारी द्विज होत अनाचारी हैं ॥
सुकवि गुपाल प्याज लहसन षात सब
लूटैं ठग चोर प्रजा रहै न सुधारी हैं ॥
लोगनि रहन भानजे कों व्याहि बेटी देत
रीति बिपरीति जहां देषत ही न्यारी है ॥
वढत मगारी होति बडवडी ष्वारी दिस
दक्षन मझारी जात होत दुष भारी है ॥१३॥†

पछिमदिस

पुरसवाच

दोहा

रापैं दक्षन तैं अबैं जो दिस पछिम जात ।
ताके अब सुनि लीजियैं प्यारी गुण अवदात ॥२४॥†

कवित्त

लोग दयामांन तिय सुघर सुजांन मीठी
बोलनि निदांन नीर लगैं ना जहाँ कहूँ ।
वृषभ विसाल ऊँट ऊँचे पुलकार वस्त्र
विविध प्रकार ऊन सूत के वहां कहूँ ॥

†हि० में नहीं है

सुकवि गुपाल ताते तरल तुरग मिलै
मधुर मतीर भूप लगति जहां कहूं ।।
पार नहि लहूं हिय सोचत ही रहूं प्यारी
पछिम दिसा के सुप बरनि कहा कहूं ।।१५।।†

इस्त्रीवाच

दोहा

मरत रयनि दिन वारि बिन भटकि भटकि नर नारि ।
करियै नही पयान पिय पछिम ओर निहारि ।।१६।।

कवित्त

धूरिन के थल आवै ढोलकै ढमकै जल
तरु बिन थल तामें सोभा नाहि पामें हैं ।।
चामर रु गेंहू रस गोरस ना फलफूल
मोठ बाजरी कों पाय दिवस वितामै हैं ।।
रहत मलीन धर्म कर्म दूरि हीन सदा
पहरत पीन पट ऊनन के जामे है ।।
सुकवि गुपाल जेते कहत न आमें सदा
तेते दुप होत जात पछिम दिसा मे है ।।१७।।†

उत्तरपंड

पुरुषवाच

हर.दुवार हैकें परसि वद्रीनाथ किदार ।
होत कृतारत जीव यह उत्तरषड मझार ।।१८।।†

---

†दि० में नहीं है ।

कवित्त

लाइची लवंग दाप दाड़िम बदांम सेव
सालिम अँगूर पिस्ता पैयें उठि भोर कौं।
कस्तूरीह केसरि जवित्रि जाइफल दाल
चीनी देवदारकी सुगंधि चहु ओर कौं।
साल औ दुसाला दुसा नांनां पसमीनां ओढ़ि
देषत रहत आछी तियन की मोर कौं।
सुकवि गुपाल प्यारी सुनियें विहोर मोर्य
कह्यो नहि जात सुष उत्तरकी ओर कौं ॥१९॥‡

इस्तीवाच

सदां सीत भयभीत नर व्याघ्र सिंघ ब्रष घोर
करियें नही पयान पिय उत्तर दिस की ओर ॥२०॥‡

कवित्त

विकट पहार झार घने सिंघ स्यार निरवाहु
नहि होत रथ बहल को जामें हैं।
गिलटीह गिल्लर अनेक रोग होत जहां
चारिहु वरन जीवहिंसक हरामें हैं।
सुकवि गुपाल सदा सीत भयभीत नर
बरफ के मारे दुरे रहत गुफा मे हैं।
राह में नगामें छोके उतरत तामें जात
बहु दुष पामें लोग उत्तर दिसामें हैं ॥२१॥‡

इतिश्री दंपति-वाक्य-विलास नाम काव्ये प्रदेससुखदुख वर्नन नाम द्वितीयविलास।

---

‡१० में नहीं है

तृतीय विलास

मास प्रबंध "चैत्रमास"

पुरुसवाच

दोहा

चंत प्रवासहि को भलो सस महिनन मैं होइ।
सीत गरम जामें न बहु दुप व्यापत नहिं कोइ ॥१॥‡

कवित्त

होत पतिझार झार फूलै फुलवारि कौंप
उलहत डारनपै भ्रमर भ्रमायें हैं।
बोलत बिहग सर सरिता उमंग अंग
अंग जे अनंग की तरग कढ़ि छाए हैं।
सुकवि गुपाल जामैं सीत न गरम सम
रजनी दिवस मानों तोलि कें बनाए हैं।
सुप सरसाई होत दपति के भाझे बडे
भागिन ते आए दिन चैत के सुहाए हैं॥२॥‡

इस्तीवाच

कवित्त

सीतल समीर उर तीर सो करेगो पीर
लहरि उठैगी पाँचबानजू के वादिनी।
कोकिला की कूक हूक करेगी करेजे सुप
सेज न सुहेहै परै दूप ह्वै है ता दिनी।

---

‡१० प्रति में नहीं है।

केसू कचनारिन के फूलेफूले हार वन
बागन में लगेंगे अंगार सम ता दिनी।
मेरी कही यादि जब आवैगी गुपाल तब
करैगी बिहाल हाल चैतहि की चांदिनी ॥३॥‡

वैसाखमास

भमर विदेसी नर गंध. होते अंध होत
त्रिविधि पवन दिसविदिसन छाइयें।
सुकबि गुपालजू पराग बरसत अति
अवनि अकासमें सुगंधि सरसाइयें।
सरसरितांनमें कमलकुल फूले बहु
अंबन में कोकिल सबद सुपदाइयें।
ह्याहीं बिरमाइये अनत नहि जाइयें
बिसाप की वहार बड़े भागिनसौं पाइयें ॥४॥‡
कफ कीयो राज वाय पित के अकाज उठै
गरम बढ़ति जाके प्रथमहि पापतें।
जानकी जनम अपतीज नरसिंघव्रत
करि सब नरनारी रहु तरु सापतें।
देषत गुपाल फूल बँगला कुसुम केलि
जल बाग विपिन बिहार अभिलाषतें।
मांनि मेरी भाष प्यारे प्रेमरस चापि आछी
देषो वयसाप बयसाप बयसापतें ॥५॥‡

वैसाखमास के उत्सव : जानकी जन्म, अखतीज, नृसिंह व्रत और फूल बंगला आदि विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ।

‡ है० प्रति में नहीं है।

जेष्ठ मास

पासें पसपाने तहपाने सुपसाने होद
अतर गुलाबन के ठाने तहठा रहैं।
छूटत गुपालजू तिवारन फुहारे न्यारे
जहाँ जलजतुन¹ की परत फुहार हैं।
चदन बिचार द्वार द्वारन पे टाटी
दीह चलत बयारि फूलि रही फुलवारि हैं।
फूलन के हार घर सीतल सहार सोये
सेजन समरि लेत जेठकी बहार है ।।६।।‡
पंथ थॅंबि जाति लघु होति अति राति सूर
तपत प्रभात ही से चड कर कीना में।
सुकवि गुपाल जे प्रबल जल थल जीव
विकल कल न पल परत जवीना में।
मोर अहि मृग सिंघ सोवत अवनि अबु
अनिल अकास ए अनल समचीना में।
बल होत हीना अग भीजत पसीना यातें
जाइयें कहीना पिय जेठके महीना में ।।७।।‡

आसाढ

चक्र देकें चचल प्रचड चलै पौन चारयौ
ओर ते घमडि घन गरजे धुका दके।
सुकवि गुपालजू सन्यासी साध सत द्विज
नारी नर पक्षी पशु बैठे गहि आड के।
देपि बला बोर नभ ओर जोरसोर कै
पपैया मोर दुर चकोर चितचाढ के।
दामिनि दहाड़ देपि काम धरी बाढ़ जब
दपति कों आड परी आवत असाढ के ।।८।।‡

---

१. जल-जत्र, जलयत्र=फुहारे
‡ है० प्रति में नहीं हैं।

कीच औ मचक टपका की है ससर पर
तियर्सों असक लगि जात कांम जागे ते।
मंदिर चुचात पपरा कों लियें हाथ सौंज
सब सहलाति है सरद सद जागे ते।
काटें डंस माछर गुपाल तन आठों जाम
दादुर पपैया फोरें डारें कांन रागे ते।
मेह झर आगे धरनी ते उठें आगें एते
होत दुप आगे ते आसाढ़ मांस लागे ते ॥९॥‡

सामन

सुनि घनघोर कों झिगारत है मोर देपि
दामिनी की ओर सुप हरित मही के हैं।
सुकवि गुपाल द्रुम लपटी ललित लता
केतुकी कदंब गंध कुंद की कली के हैं।
भूपन बनाइ कै मलारन को गाइ गाइ
मचक[१] बढ़ाय संग झूलत अली के हैं।
प्यारी पिया पीके मनभाए होत जीके स्वाद
सेज पै अमी के होत सांमन में नीके हैं ॥१०॥‡
घनन की घोर पिक मोरन को सोर सुनि
परति न कल सुपसेज पर तजनी।
झींगुर झिगार औ बहार फुलवारिन की
देषत अवार दुप होत हिय हजनी।
सुकवि गुपाल मौन भूपन वसन पांन
पांन परिधांनन सुहाति सैंन सजनी।
प्यारे मनभांमन की आमन की औधि टरैं
उग होति वांमन की सांमन की रजनी ॥११॥‡

---

१ पेंग
‡ हैं० प्रति में नहीं है।

भादौं

गाज[1] सुनि बाधत हैं गाज ब्रजराज तामें
जनमे गुपाल जदुनाथ कुल जादौं के।
करि बनजात्रा करबटनी करत लोग
लेत सुख राधा अष्टिमी में दधिकादौं[2] के।
रहि रिषि पंचिमी सतोहै[3] न्हाइ देवछटि
बामन दुआदसी अनत पूजि आदौ के।
साझी को यरादौ पित्र पक्ष लगे यादौं याते
पाइयत दिन भूरि भागिन ते भादौं के॥१२॥‡
झिल्ली झनकार सस्ता पवन झकोर घन
धार धरधार अधियार अधि कादौ में।
सुकवि गुपाल घनघोरत घमडि घने
जान्यो न परत दिनरैनि व दिवा दौ में।
संमरसता वत सरीर को सरस सो सुमन
सर साधि साधि व्याप्यौं सत सादौ में।
देपी दधिरादौ जन्म लीयो हरि जादौ पूरो
काम को यरादौ करो रहि घर भादौ मे॥११॥‡

क्वाँरमास

निर्मल नभ नद नदिन के नीर नीके
सीत न गरम लागें मोभन बहार के।

---

१. गाज बांधना ब्रज का एक त्योहार है। गाज कुछ धागा का समूह होता है। उसके बांधने और मोरने दोना के अनुष्ठान प्रचलित हैं।

२. कृष्ण और राधा के जन्मोत्सव पर दधि में हल्दी मिला कर परस्पर छिडकना इस उत्सव की प्रमुख क्रिया है।

३. बल्देव छट या देव छट बल्देवजी की जन्मतिथि है। ब्रज में देव छट के स्थान ये हैं दाउजी (बल्देव, सतोहा, बरहद, वेममा। कवि ने यहाँ सतोहे की देव छट का उल्लेख किया है।

‡ हे० प्रति में नहीं है।

पूजत पितर नवदुरगा दसेंरा लोग
सरद सुपद सुप सेज में विहार के।
फूले कांस सेतुरी कमोदिनी कमलकुल
सांझी रास रंग के विलासन निहारिकें।
सुकविगुपाल चंदचांदनी अपार जोति
सब ते सरस ए सुहाए दिन क्वांर के ॥१४॥‡
आतप अधिक तम बढ़त अनेक रोग
भोग घरहीं में सुप रहै तनही कों नां।
पितर भ्रमत औ मियामने[१] लगत दिन
भूषन-वसन तन धारियें मिही कों नां।
सुकवि गुपाल रितु पानी बदलत अति
रति में लगत मनत मान नहीं कों ना।
सुप लै मही कों चैन दीजै हमहों कों मेरी
मानियें कही कों जैयें क्वां८ में कहीं कों ना ॥१५॥‡

कातिक मास

प्रात समें उठि नीकें न्हाति नर नारि राई
दामोदर[२] पूजति बजाय सुर बीना के।
करति चरित्र धारि चित्रनी विचित्र घर
घरन चरित्र चित्र चित्रन के मीना के।
सुकवि गुपालजू अकास जल थल दीप
दीपति दिपति दांन देत द्रुज छीना के।
काम के अधीनां होत दंपति प्रवीना सुप
देपियें कही ना जैसे कातक महोंना के ॥१६॥

---

१. भयावने, भयानक

२. कार्तिक-स्नान एक पुरानी प्रथा है। स्नानोपरान्त ब्रज में राधा-दामोदर की पूजा होती है। 'राई' शब्द यदि आभीर-साहित्य की 'राही' की ओर भी संकेत करे तो, अनुपयुक्त नहीं।

‡ ह० प्रति में नहीं है।

राधाकुंड न्हान दीपदान गिरराज बड़ी
लहुरी दिवारी जुआ षेलै निसि कुहू कौं।
अन्नकूट गोरधन जमद्वतिया[1] सनान
भैयाद्वैज गोकल प्रदक्षना देउ हूं कौं।
गउ गोपआठै अषंनौमी की परिक्रमा
देलीजे हरिलीलनि कौ सुष छांडि महू कौ।
देवन जगाय पचभीषम आन्हाइ नहिं
जाइयें गुपाल कत कातिग[2] मे कहूँ कौं ॥१७॥

अगहन मास

षट रस विंजन के भावत हैं भोग काम
केलि कै अधिक मन लागत सबन कौं।
सर सरितान फूल फूलत सुगंध गुरु
कहुक कल्लित कल हंसन के गन कौं।
सुकवि गुपाल हरि असु हैं प्रसंस यही
स्वारथ में देत परमारथ जतन कौ।
सुष होत तन कौं बढत मोद मन कौं
सुमोहे महा मन कौं महीना अगहन कौं ॥१८॥‡
द्वार लग डग पग मग में धर्यो न जात
अतन अधीन तन भए दुहु जन के।
छेदत हृदयं पौंन गौंन भौंन भीतरहू
ठाढे होत रोम रच छुएँ जलकन के।
सुकवि गुपाल हरिलसह प्रसंस यही
स्वारथ में देत परमारथ जतन कौं।
सुष होत तन कौं बढत मोद मन कौं
सुमोहै महा मन कौं महींना अगहन को ॥१९॥‡

---

१. यमद्वितीया पर मथुरा में बड़ा भारी स्नान-पर्व प्रतिवर्ष होता है।
२. क, ग कातिग कातिग
‡ हे० प्रति में नहीं है।

पूसमास

तरुणि तरुण तन तात सों तपन तेल
तूलरु तमोल सवही के मन भाए हैं।
जल थल अंवर अवनि घर वाहर हू
असन वसन सव सीतलता छाए हैं।
सुकवि गुपाल रजनी में घंडे अंग होत
दिवस में कहूँ दिन जात न जनाए हैं।
सुप सरसाए रसरंग बरसाए वड़े
भागिन ते आए दिन पूस के सुहाए हैं ॥२०॥‡

कटति न राति नहीं दिन जान्यों जात सोंज
सीरी न सुहाति वात जाति सु कही ना में।
ठिरि फटि जात गात कारे परि जात न्हात
वाजें दांत हाथ चीज रहति गही ना में।
चाहिये गुपाल घने असन वसन दोन
पति के उधार दिन दुपद दही ना मे।
मोम जो रहीनां ठंड जाति सु सही ना कल
परति महीना कहु पूस के महीनां में ॥२१॥‡

माह मास

मृगमद मलय कपूर धूरि धूसरत
पैलत वसंत संत दसहू दिसान में।
कोकिला कपोत कीर कोइला कहुक करे
मौरन की भीर भ्रम्यो करति लतान में।
तालदै गुपाल गुनी गावत पियाल वीन
सारंगी मृदंगहि मिलावत हैं तान में।
व्यापे काम आनि भले लागे पांन पान सुप
सवते निदांन होत माहके दिसांन में ॥२२॥‡

---

‡ है० प्रति में नहीं है।

जमति वरफ चार्‌यो तरफ दरफ सीत
सिरफ दुपहि एक हरफ न चैन चाह।
सुकवि गुपाल भौन भीतरहू बैठे चलि
सीतल पवन करै डारतिहै नरगाह।
नैंक हलै चलै वलै गलै जात सीत पलै
कलै न परति पग धरयो नहि जात राह।
हियै होत काह जब जब उठै कामदाह
कोऊ रहै न उमाह उतसाह विन नाह माह ॥२३॥‡

फागुन मास

छाडि कुलकानि मुप माडि छीडि छाडि पट
गहि नर नारि गाठि जोरे पट झीना मे।
सुकवि गुपाल जू उडावत गुलाल लाल
डारे रगलाल पट पीतम के सीना मे।
पेलत पिलावत औ हँसत हँसावत
दिवावत औ देत गारि रहत न कीना मे।
प्रेम पन पीना होत काम के अधीना सुप
देषियै क्हीं ना जैसे फागुन महीना मे ॥२४॥‡
लोक लीक लोक लाज काजन बिसारि लोग
गारी दै वकामे वकैं मानत हैं नहिनां।
सुकवि गुपाल परनारिन सों राचे गाठि
जोरि सँग नाचै पारे मामरि दे देहिना।
छोटे बडे ऊच नीच एक सम होत वहु
रुपिया सें डोलै लाज रहति मुरुहिना।
सहिना परनि सिव तहिना न देत याते
सवमे निलज यह फागुन को महिना ॥२५॥‡

‡ है॰ प्रति मे नहीं है।

धुरैंडी

निलज वकत कोऊ काहूते सकत नांहि
रोके ते रुकत धूरि उड़ावत ग्वंडे की।
सुकवि गुपाल कीच मांटीमें अटत चांदि
लट्टन पिटत राह निकरत छैंडी की।
गदहा पै चढि बढि भडुआ बनत लोग
लहंगा पहरि वात करत छलेंडी की।
जोरत है लैंडी काम करत कुपैंडी याते
ऐंडी बेंडी देपो बात फागुन में धुरेंडी की।।२६।।

"इतिश्री दंपतिवाक्यविल-सनामकाव्ये बारेमास प्रबंध वर्णनं नाम तृतीय विलास"

चतुर्थ विलास

निजदेस प्रवन्ध : वरात सुष

पुरसवाच

सोरठा

जात वरातहि[1] जाइ[2] घर जूयौ जयौ परदेस ते।
सुनियें कान[3] लगाइ ताके[4] सुप वरनन करूं ॥१॥

कवित्त

हिलनि मिल्नि को सरस सुप होत नाना
भातिन की रहसि वहसि वतरात मे।
देपि नई नारिन के ख्याल औ तमासे राग
रगन में गरक रहत दिनराति मे।
सुकवि गुपाल फूलें गात न समात जब
बैठि जाति पाति गारी पात भात पात में।
बनें वडी बात जब दबति[5] घरात तब[6]
जीवत को लाहो लोग लेतह[7] वरात में ॥२॥

इस्तीयाच

दोहा

जितने जात वरात में दुख नितप्रति जहाँ होत।
कवि गुपाल तितने सुनो हमसौं बुदि उदोत ॥३॥

---

‡ है० प्रति में नहीं है।
१ है० वरात तो, २ है० जाय ३ है० कान, ४ है० मारे
५ है० दवत ६ है० तहा ७ है० लेत है

कवित्त

राहु चलै धरती में सोमनी परत पुनि
भोजन मिलत वाइवे कौं आधी राति में।
दामनि घटैपै होत गांठिकी परच जब
आवत सरम घटि चलन की वात में।
सवही सौं करत रमूज मसपरी लोग
सायनि बिगरि जो पै देपत बरात में।
कहत गुपाल कछू आवत न हाथ सात
दिनसौं सनीचर लगतु है बरात में ॥४॥

पुरस वाक्य

जातिसुप[१]

वह एक ठौर य अनेक ठौर राजै वह
जडय चित न्यहाल चंगा करै नंगा को।
उहु उहि लोक उच्च पदवी कौं देति इह
देति इहि लोक ही लागत नेंक रंगा को।
सुकवि गुपाल उहु पातिकीन तारै आप
सम करि डारै यह पोलि सव दंगा को।
मन की उमंगा करि करौ सतसंगा याते
गंगा ते सरस है दरस जाति गंगा को ॥५॥
सादी औ बधाई सव याही ते सुहाई लगै
याहीते मिलन भलौ होत गोत नात ते।
याही तें परत काम जीवत मरत पुनि
यही निमतारौ करै पातक की बात तें।

१ यहाँ से "ब्याह सुप" तक के प्रसंग है• प्रति में नहीं हैं।

और को तनक छिद्र मेंह सो करन्त निज
मेरु ते सरस छिद्र करैं तुरा गात तैं ।
जीतो नहिं जाति तासों कछु न बसाति याते
भूलिकें न पालौं कबो पारैं राम जाति तैं ॥६॥

इस्त्री वाच्य

हालही सुलंपी कों कलंकी करि देत ओ
सुलंपी को कलंकी कै मिलावें गोत नांत तें ।
कबहूं गुपाल पातो पीवतो न देषि सकैं
ऐवन उघारि कें दिषावे नीचो बात तें ।
और को तनक छिद्र मेंरुसो करत निज
मेंरुते सरस छिद्र करें तुरप[१] बात तैं ।
जीती नहीं जात तासो कछु न बसात याते
भूलिकें न पालो कबी पारैं राम जाति तें ॥७॥

पुरस वाच्य

मिजमानी पाइवे के सुष

मिजमांनीं कों जो कबहें बहुत दिनन में जाइ ।
तब गुपाल मिजमांन कों इतने सुष सरसाय ॥८॥

कवित्त

बातन कों मारिके निलाले रोट मारयो करे
आदर अधिक होत हुक्का अरु पानी कों ।
सुकवि गुपाल देषते ही हरे होत औं
कुसल षेम पूछि मीठी बोलत हैं वांनी कों ।

---

१ तुच्छ

नेह में बढ़त अपनायसि सधति मित्र
मेटत मैं भारी सुष होत जिंदगानी कौं।
करि महरगानी प्रीति बढ़त पुरानो बड़ी
होति मिजमानी जब जात मिजमानी को ॥९॥

इस्त्री वाच

दोहा

आगे पाछे औरकें, सेधी मारत जाय।
याते काहू के न मिज-मांनी पैये आइ ॥१०॥

कवित्त

पराई पछीति बैठि बानो परे आपनौं
जिमावत में जाको सूज्यो रहे मौं लुगैया को।
सुकवि गुपाल सदां दबनो परत घर
आछे भाटवांनी परें भोजन बिछैया कों।
देनी परें जाइकें मिठाई सहुगाति औ
हलंदा है कटावें बदनाम बाप मैया कौं।
करत चबैया हितू यार जाति भैया सदां
एते दुष होत मिजमानी कें पवैया कौं ॥११॥

मिजमानी पवाइवे कौं सुख

दोहा

कुल घर होत पवित्र पुनि, जग जस होत विष्यात।
बड़ी बात जाकी सदा, जाकें जेंमत जाति ॥१२॥

कवित्त

पोरेई करे तें दस देसन में नांम होत
औडो[1] घड़े धन लगे श्रुकृत कमाए ते।

---

१३ १ औडों=गहरा

मिलत गुपाल बडौ पंचन में मांन ठौर
ठौर होत आदर अधिक आए जाए ते।
नर देही पाय लेत जीवत कौ फल सब
हौ में सेर रहे नहिं दबत दवाए ते।
रहे लोग छाए नाम लेत हुहुताए जस
जग में सवाए होत जाति के जिवाए ते ॥१३॥
पनपै न कवी जाकों ऊपर न बजै लाली
रहे दिनेरेंनि आए गएन कौ मरकौं।
पीसत पवत घर वारी दिवय रहे लोग
पाइ औ विगूचे जिनें आवें नहिं दरकौं।
जाइ न सकत मुष दूषत बकत औ अनेक
ज्यान होत यह कांम बडी जर कौ।
सुकवि गुपाल चिरिया कौ पेत पायौ याते
होतुह सवायौ घर पाहुने के घर कौं ॥१४॥

पुरुष वाच

प्रेढा व्याह

दोहा

या विधि सादी होइ जो, तौ बरात तो जाइ।
बनत ब्याह जिन बात ते, सुनियें[1] श्रवन[2] लगाइ ॥१५॥

कवित्त

बढिकै न भार्प[3] औ दलेल मन रापै बात
पंच की न नापै[4] वैन[5] सुनें नाहि घादी के।

---

१ है॰ सुनियें २ है॰ कान ३ है॰ भाषे ४ है॰ मरे ५ है॰ बैन

नवै राड रंकै दाम[१] खरचै निसंकै नहिं
मांगे यक अवें मन रापै ओप जादी के[२]।
बूझे सब काहू आप रहैं मुप चाहू मुखत्यार
करै साहू कवि गावत जुगादी के।
लावै नांहि मांदी मूलै जसकी न यादी ए
गुपाल कवि लक्षन सुधारिवेके सादी के ॥१६॥

इरली वात

दोहा

बेटा वारे की तरफ, जिनते[३] विगरत[४] व्याह।
ते बातें सुनि लीजियै[५] कवि वुधि वल[६] अवगाहि। १७॥

सवैया

मांगत दाम न देत छदाम जे दानि के लैवे कौं[७] हाथ पसारें।
मारे[८] रहै[९] मन सूमता[१०] धारि कें[११] मंगितें दूरि ते देपि विडारें।
काहू सलाही की मानें न वात जे गाल कौं[१२] मारिकें[१३] पेत में हारें।
राय गुपाल वदावदी कें[१४] जे वडाई विदा करि व्याह बिगारें ॥१८॥

कवित्त

जाचिक को देखत में हुलस्यो न मन देत
कौडी एक मागें सोई जम महा लगें।
नेगिन के नेग काज पकरत ठोढी दांति
पांतिहि के लैवे काज पात हैं हहा लगें।
सुकवि गुपाल जामें परच न होइ वनों
ऐसो आप आइ सुष वावत सहालगे।

---

१ है० दाम २ है० जार्दी ३ है० इनते ४ है० विगरें ५ है० लीजियें
६ है० हमसों मोत ७ है० कू ८ है० मारें ९ है० रहें १० है० सूंमता
११ है० कें १२ है० मालकू १३ है० मारिकें १४ है० कें

करिके कुजस ब्याह अपनो बिगारे कहो
और को बिगारत में तिन को कहा लगै ॥१९॥†

ब्याह बेटी को

दोहा

जिनि बातन ते बनतु है बेटी को भल ब्याह ।
ते बातैं बरनन करत सुनहु सकल कवि नाह ।२०।

कवित्त

लैके कुस कन्या मुष दाति की न कहूँ जोरैं
हाथ सबही कों बानी बोलैं अमिरत हैं ।
सुकवि गुपालजू बरात तें पुत्र रार्यं घटि
चलन हूँ देषि हुलसाउत करतु हैं ।
रोटी कों बनावै दाने घास पै चलावैं न
करावैं पर्च घनो मन सब को हरत है ।
बडो रार्यं जोव ढूढै आप ते गरीब यन
बातन ते बेटी को बिवाह सम्हरतु है ॥२१॥

इस्त्री वाच

दोहा

जो बेटी के ब्याह में चलति बात जे आइ ।
तो बेटी के ब्याह कों ढील लगति है नाइ ॥२२॥

कवित्त

होत रहैं जहाँ कुलपाउ बात बातन में
जेंमत के समै में निकारैं जाति हेटी कों ।

---

† यहाँ से 'ससुरारिके' तक का अंश ह० प्रति में नहीं है ।

देकें दाति पांच की पचास की बतावें आप
परच करावें घनी दौलति इकेठी कों।
सुकवि गुवाल नेंक काहूँ सो न नवें औ दवाइ
लेइ सबे देत बलत घन मेंटी कों।
सुजस के हेती कोऊ करो क्यों न केती येती
बात के करे ते बिगरत ब्याह बेटी को ॥२३॥
चहल पहल रथ बहल भए तो कहा
महल म घास आपें सरम सन्यो नहीं।
बडन सों रीति प्रीति नृप सों करी तो कहा
दौलति धरी तो बिन धरम घनों नहीं।
भनत गुवाल बडे मन में भए तो कहा
सादी गमी मांहू जाति बंधन गन्यो नहीं।
जगत में आइ कें कमाइ कहा कीयो घर
आयें जो बिरादरि को आदर बन्यों नहीं ॥२४॥

सुसरारिके[1]

दोहा

समध्यानें ते[2] जो रहे, तो जैहै[3] सुसरारि।
तहाँ[4] होत सुप नित नयो, सासु सुसर के प्यार ॥२५॥

कवित्त

नित नई प्रीति रस रीति नई नारिन सों
आदर अधिक देवि भूले घरबार को।
पौढिवे को पलिग पें गेंदुआ[5] गिलम धोरि
पांड पक्वान मिलें भोजन बहार को।

---

[1] समध्याने' के पश्चात है।
[2] हें [3] ... [4] है० जहाँ [5] है० गेंदुआ

नितप्रति होत देखि हिय में हुलास सारी
सारे सरिहज सामु सुसर[१] के ब्यार कौं।
कहत गुपाल फूले अंग न समात मोर्पै
कह्यो नहिं जात कछु[२] सुख सुसरारि कौं ॥२६॥

सोरठा

इतने सुख नहिं होत, बहुत रहे सुसरारि में।
जाय रहै हरि पोत‡ तो ऐसी दरि होइगी ॥२७॥

कवित्त

चाहत न सारो औ ससुर जर्‌यौ बर्‌यौ जात
सासु साहमी परि जहाँ ठानति लराइ है*।
सारी सरहज कह्यौ करति रसोई बीच
पय पय हारी पात सेरुक अडाई हैं।
सुकवि गुपाल[४] घर घेरे ही रहत इहै[५]
यानें यहां[६] आय रहटानि भली पाई है।
जाइ लेकै संग कुल कीरति गमाई ऐसी
जाय सुसरारि घरकार* वा जमाइ है ॥२८॥

इस्त्रीवाच

समध्यानैं

सोरठा

छोडो* व्याह बरात समध्यानें तो आइयें।
जहां जे सुख सरसात सो[८] प्यारी सुनियें[९] मुपर्द ॥२८॥

---

१ है० गुजर   २ है० कछू   ‡ हर बार   * धिरधार   ३ है० कौं (पर यह आगे की तुरी की दृष्टि मे लेखक की ही भूल है।)   ४ है० कहत गुपाल   ५ है० यह   ६ है० दशा   ७ है० छाइयौ   ८ है० वे   ९ है० मुनियें

कवित्त

अलन चलन देपि करी न वड़ाई कावी[1]
करतव जाके नहि एक मन आयो है।
नित मन मस्र पड़ी रह्यो[2] पछितायो जाको
कव ही[3] न रहसि वहसि वतरायो है।
सुकवि गुपाल समधिनि समधी ने नाऊ
नेगिन सौं दुद छेरा धरत[4] मचायो है।
दौलति परचि पछिताय बेटे[5] व्याहि हाइ
ऐसे समध्याने जाइ[6] कानें सुप पायो है ॥३०॥*

पुरुष वान्

दोहा

जाकी समधी होति है, सोई[7] समधी होति[8]।
जो ऐसो समधो मिले, जहाँ सवै[9] सुप होइ ॥३१॥

कवित्त

होत नित नयो जहाँ देपत ही मांन पावै
दान[10] सनमांन जव करत पयाने कों।
संग जात जाके ताके अंग में उमंग होत
वैठं जव तिया आइ[11] गारिन के गाने कों।

---

१ है० कवू २ है० रही मन मांस तिन रह्यो ३ है० हूँ
४ है० दंद जहाँ मदाही मचायो है। ५ है० वेटै ६ है० जायि

*इस कवित्त से पूर्व है० प्रति में वह दोहा है जो मूल प्रति में इससे आगे के कवित्त से पूर्व है। (जाकी——सुपहोइ) इस कवित्त के पूर्व का दोहा (छोटो——सुपद) आगे वाले कवित्त से पूर्व है० प्रति में है।

७ है० जोइ ८ है० होइ ९ है० तहाँ नहीं सुप कोइ १० है० दांन
११ है० आय

वहँसि वहँसि होइ[1] रहँसि अनेक भाँति
भाँति भाँति भोजन मिलत जहाँ पाने[2] को।
सुकवि गुपाल[3] कोऊ[4] कहा[5] लौं वपानैं[6] मोपै
कह्यो नहि जात कछु सुप समघ्याने को ॥३२॥

पुरुष वाच

तीरथ जात्रा

रापे घर ही माझ[7] तौ तीरथ जात्रा करे।
जहाँ जे सुप सरसात सो प्यारी मुनियै सुपद[8] ॥३३॥

कवित्त

सुरग में वास सब व्याधि कौ विनास परगास
भक्ति परम पवित्रताई गात में।
हरि अनुराग होत धन्य धन्य भागि जाके
सुभ गति पावैं सब पितर अन्हात में।
सुकवि गुपालजू कृतारत कुटम होत
जगमें सुजस बडो नाम होइ जात[9] में।
माला रहैं हाथ औ जजार छूटि जात एते
सुप सरसात सदा तीरथ के जात में ॥३४॥

स्त्रीवाच

दोहा

जो साचौ मनहोइ तौ तीरथ मन ही माहि[10]
कपट कतरनी पेट में, कहा होतु है न्हाहि[11] ॥३५॥

---

१ है० हँसि २ है० पाने ३ कहत गुपाल ४ है० कोई ५ है० कहाँ ६ है० वपानैं ७ है० मांहि ८ जहाँ जे सुरसरसाहि, ते सुनियैं निज श्रवन दै। ९ जाति १० माहि ११ न्हाइ

कवित्त

तीरथ गयो तो न गयो तो भयो कहा जाके[1]
दया दांन सुचि हिय तीरथ अभंगा है।
हरि पद पाइबे कौं सुप सरसाइबे[2] कौं
पाप के जराइ[3] बे कौ अगिनि पतिंगा है[4]।
सुकवि गुपाल भाव भगति हिये में धारि
सांचे[6] श्रीगुपालजू के रंग में जो रंगा है।
करि सतसंगा नचौ[5] परे न कुसंगा सदां
जाको मन चंगा तौ कठौठी ही में गंगा है ॥३६॥

पुरुस वाच

दरसन जात्रा[7]

दोहा

मन परसन ह्वै के जबै हरि दरसन कौं जात।
साह्मी हरि सन होत अघ बरसन के कटि जात ॥३७॥

कवित्त

सांझ अरु प्रात हरि मंदिर में जात जब
पाप कटि जात जेते करे बरसन ते।
सुकविगुपाल बहु नेननि कौ सुप होत
ममता अधिक घटि जाति परसन तें।
रूपमाधुरी में जैसौ आवत सवाद तैसो
आवै न सवाद कबौ भूलि छरसन तें।
करि अरचन साह्मी होत हरि सन मन
परसन होतरु करत दरसन ते ॥३८॥

---

१ है० जाकें २ है० है० मरसाय ३ है० जराय ४ है० हैं ५ है० कबू
६ है० सांची ७ यह प्रसंग हैदरावाद की प्रति मे नहीं है।

स्त्री वाच

दोहा
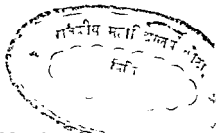
चित जोरी में रहत मन, तियन देखि चलि जात।
ऐसे दरसन करत में, कछू न आवै हाथ ॥३९॥

कवित्त

साचौ करि भाव मन द्रढ करि बैठि घर
मंदिरन जाइ-जाइ काहे सिर पटकै।
प्यारे श्रीगुपाल को दरस हाल ह्वैहै जोपै
हिये ते करैगी दूरि कपट के पटकै।
यह अटकरि हटकरि कै कहति मति
सटकै कहू को त्यागि जगत के पटकै।
जाको नांम रटि सोधि देखि निज घट तेरा
रांम तेरे तट में अनत जिनि भटकै ॥४०॥

पुरुष वाच

कथा-कीरतन[१]

दोहा

हुलसत हिय पुलकत सुतन गदगद सुर ह्वै जात।
कथा कीरतन सुने ते, होति बुद्धिः अवदात ॥४२॥

---

१ यह प्रसंग हैदराबाद की प्रति में नहीं है।

कवित्त

होइ हरि रति कबी पावे न अगति प्रभु
चरित में रति गति पावै मति दीये ते।
सुकविगुपाल सतसंगति वढति मेरें
मिलत मुकति औ सुव्रत होति जीये ते।
मिटत अपान सदां उपजें विराग गुयान
काम क्रोध लोभ मद मोह मिटैं छीए ते।
पाप जात कोयें मिटैं त्रियतापी भीये होत
एते सुष हीए कृष्ण कथामृत पीये ते ॥४२॥

स्त्री वाच

दोहा

कथा कीरतन मनन करि करत न जौ मन सोध।
उपजत नहीं विराग मन व्रथा जांत परमोध ॥४३॥

कवित्त

विन मन सुद्धा होत हित में न ग्यांन जेसें
उपजें न चुन्यों बीज ऊसर के लूने ते।
मोह मद मांन ते कुसंगिन के संग झूठी
साधत जे जोग देषादेषी इन उनी ते।
सुकवि गुपाल जाइ श्रद्धा सतसंग विन
सोइ कें अग्यांन नींद व्रथा सिर धूने तें।
विन हिय गुनें जे निकारयो करें कुनें ऐसें
होइ नहि कछू कथा कीरतन सुने तें ॥४४॥

पुरुष वाच

मेला-तमासो

दोहा

सुहृद मित्र सँग साथ में मेला[1] कौं जब जात ।
जीवन[2] कौ लाहौ मिलैं[3] हिय अरु नयन सिरात ।४५।.

कवित्त

आलम हजारण की जामें सुप जात्रा नई
नारिन कौ देपि पुस रहै मन रेला में ।
जाति औ बिरादरि मिलाधिन के सग मिलि[4]
देष्यौ करैं सेल यार-वासन के मेला में ।
सुकवि गुपाल मजा पाइवे[5] पवाइवे[6] को
देपिवे दिपाइवे कौ होतु है[7] झमेला में
जाइ के सबेला औ झुकाइ पाग सेला सदा
एते सुष छैला बनि लेत मेला-ठेला में ।।४६।।

स्त्री वाच

दोहा

सब बातन कौ होइ सुप तब कछु दीसे सेल ।
नातर मेला[8] में फिरैं ज्यो तेली कौ बैल ।।४७।।

---

१ है० मेले बू   २ है० जीवन   ३ है० ल्है   ४ है० नित
५ है० लायवें   ६ है० लवायबे   ७ है० हैं   ८ है० मेले

कवित्त

चलैमांन होत मन सुंदर सरूप देपि
भरयौं करै मांन मजा आवै ना अवेला में।

सुकवि गुपाल सांनि सोप गांठि दांम भलो
पांन पान चाहै[1] यारवासन के मेला में।

हारें पग या[2] में वह डोलतु है ता में[3] हाल
पुदि पिचि जातु है[4] हजारन के रेला में।

आवत अवेला[5] हाथ परे न अघेला सदां[6]
एते दुप होत नित जात मेला—ठेला में।४८।।

पुरुष वाच

घोरे की सवारी

दोहा

सोप सांनि[7] आछो वनति[8] चलत सवारी माहि।
राह चलत हारत नहीं देपत रिपि‡ दवि जाहि[9] ।।४९।।

कवित्त

हारत न मग, मग मारत मजलि हाल
सारत सकल कांम आगे निकरत में[10]।

सुकवि गुपाल सोप सायनि वनति भलो[11]
होत नहि कष्ट वहु वातन गढत में।

---

१ है० चंयै २ है० जामे ३ है० असवारी बिन तामे ४ है० हैं
५ है० अवेली ६ है० यातें ७ है० सांनि सोप ८ है० बनत
‡ रिपु=शत्रु ९ है० जरि जाहि १० है० मैं ११ है० भलै

मुष होत गात जानि मानें बडी बात औ
सटीप दबि जात जात बरात वढलमें।
भरम वढन जम जग में मढत सेज
तनमें घढतु हैं मुरग के चढत में ॥५०॥

स्त्री वाक्य

दोहा

असवारी के राप ते इतने दुप नित होत।
कवि गुपाल तिनने गुनो हमसों वृद्धि[१] उदोत ॥५१॥

कवित्त

ठौर कौ फिकिरि दाने घास को फिकिरि, चोर
ढोरको फिकिरि, मन रहै बडी प्वारी में।
राति होइ जब तब छाती पै चढत हाथ
पाय टूटि जात[२] गिरि परे जो अँध्यारी मे।
सुकवि गुपाल हिलि-मिलि न सकत औ
निचित ह्वै कै बैठि न सकत हितू यारी में।
रग छिले न्यारी[३] देह अक्डत भारी[४] सदा
ऐसे दुप जारी होत घोरे की सवारी में ॥५२॥*

इतिश्री दाति वाक्य विलास नाम काव्ये निज देस प्रबन्ध वर्णनं नाम चतुर्थ विलास।

---

१ है० वुद्ध २ है० जाय ३ है० भारी ४ है० न्यारी

* है० प्रति मे इसके पश्चात यह दोहा है

"तीरथ, जात, बरात, को तब सुक दीसै सैल।
अरज पार भादि गिरे चत्र गुपारो गैल।"

पंचम विलास

अमल प्रबन्ध : भाँग

पुरुष वाच

दोहा

होइ रंक ते राज मन, उमग होइ बहु गात।
पीवत भंगहि पे मुरग भेड़ दूरि रहि जात॥

कवित्त

भोजन में स्वाद और स्वाद[1] आवै बातन में
बादि के विवादिन सों जीतें जरि[2] जंग में।
उठति गुपाल राग रंग की तरग[3] यार
बासन के संग फुरसति रहे अंग में।
जात औ, बरात मेला[4] तमासे की दीसें सैल
काम[5] की तरंग उठे तरुनी के संग में।
छूट्यो करै जुंग दिल रह्यो करै दंग दीस्यो
करें फैल रंग सदा भंग की तरंग में।

इस्त्रीवाच

दोहा

घर छप्पर घूम्यो करत फाटि जात मुप नैन।
होइ[6] बावरो भंग तें हँसत कहत मुप बैन॥

---

१ है० सवाद २ है० जुरि ३ है० उमग ४ है० मेले ५ है० अनंग
६ है० होन

कवित्त

ऐस को सवाद पाइबे को बढ़ो[1] चाहै स्वाद
हाँसी बकबाद बाप तोरे बकवैया की।
उड़ो[2] रहै मन, बहु घूम्यो करै तन, राति–
दिन मैं लगी रहति लगी के उठैया की।
सुकवि 'गुपाल' यह चाहति[3] है जब, तब
लाज न रहति यामै बाप अरु मैया की।
परच की लगी, लोग कहैं भगी जगी, याते
मति होति भगी वहु[4] भग के पिवैया की।

अफीम

पुरुस वाच

दोहा

गरमाई तन मैं रहै, ऐस स्वाद सरसात।
आवै कबहुँ न गाफिली, नित अफीम के पात॥

कवित्त

गाफिल रहै न, असमजस कहै न बैन,
रहैं चित चैन में, न यमन कदीम कौं।
सुकवि गुपालजू पवावत पुराक पासी,
पात[5] उमराव[6], बस करन[7] गनीम कौं।
कफ को घटावै[8], घनी भूष को मिटावै[9], बाय
ढिग नहि आवै, औ नसावै दुप नीम कौं।
मिरिबे[10] कौं भीम, रोग आवत न सीम, याते,
सब में मुनीम, यह अमल अफीम को।

---

[1] है० घनो [2] है० उड्यो [3] है० चढ़ति [4] है० नित [5] है० पाय
[6] है० उमराय [7] है० ऐस करत [8] है० नसावै [9] है० घटावै
[10] है० भोजन

इरखी वाच

दोहा

सब में अमल अफीम को याते पोटो होइ ।
पाए पीछे फिरि कबहूँ छूटि सकें[1] नहि सोइ ॥

कवित्त

झुके रहै पलक, नींद परत न पलक,
परति न कल, धनै दांम चहैं[2] हाथ में।
चाहत पुराक, मुष निकरै न बाक, पेट—
रहत बधज, झूमें आवत औ'जात में।
सुकवि 'गुपाल' फेरि छूटि न सकति नेंक
लहम न लागै बिन मिलै मरि जात में।
सूषे रहै गात, महु[3] करुओ रहात एतै
सुष सरसातहैं, अफीमहि[4] के षात[5] में।

पोस्ती

पुरुस वाच

रुक्यो रहै दस्त, बड़ी होत परवस्त, तन
रहत दुरस्त, अलमस्त होत जीव तें।
सुकवि गुपालजू अमल मांझ झुम्यो करै
फिकिरि अनेक जाकी जाति रहै हीव तें।
बोलनो परै न, धनों डोलनो परै न, पांन—
पांन भलो मिलै घर बैठे ही नसीब तें।
सांति होत जीवनहि, चाहियै तबीब, एतै
सुष होत जीव, सदां पोसत कै पीव तें।

---

१ है० सकतु २ है० चैयें ३ है० मुष ४ ह्रै० अफीम ५ हैं० सुषान

स्त्री वाच

दोहा

मियां पोस्ती कहत सब देत रहत तिय दोस ।
पोसत बारे कौं कबहु रहै न हिय कौ होस ॥

कवित्त

भागिनो सती कौं, परि जाति ओसती को, तो को
मलिन सुभाव जैसे रहै ग्रंसती को है ।
सुकवि 'गुपाल' मियां पोसती कहत, बल—
के सती को घटै, देह होत बोसती को है ।
छोड़ि दे सती कौ, तो को, नीको न लगत रोस,
दोस देत तो को दिन जात कोसती को है ।
जात जोसती को, नहि रहै होस तो को, सबही
मे सोसती को, ये अमल पोसती को है ।

आसव के गुण

पुरुस वाच

नित मध्यान हि पीजियै, चिक्कने भोजन साथ ।
प्रात समें असनान करि सेन समै मे राति ।
प्रात समें छै टाक भरि, चारि टाक मध्यान ।
आठ टाक भरि रजनि में आसव पी सुप दानि ॥

कवित्त

चौगुनो बढावै काम, मन में प्रसन्न रापै,
पराक्रम तेज बुधि बल बढै होए ते ।
हरष समूल, बहु भूप को बढावै, स्वाद—
भोजन में आवै सुप होत निय छाए ते ।

सुकवि 'गुपाल' करे अमृत को गुण, रोग—
आमन न देइ टिग, तीन्यों काल पीए ते।
विधि पूरवक चोपो, कड़यो नसा लीये तोषे
एते गुन होत सदा आसव के पीये तें।

स्त्री वाच

कहूँ क्रोध करि, अरु भोजन बिना करे ही
निरंतर दिनें रेनि याकों नहि पीजियै।
भय में, औ' अधिक पियास में न पीजे, पेद—
युत मल मूत्रहि के वेग में न लीजियै।
सुकवि 'गुपाल' निरमल नए बिनां कोई
तरे को गरम म न बिना विधि छीजियै।
तुरसाई साथ बहु रोग उपजावै, याते
भूलि मदरा को पाण कबहूँ न कीजियै।

रती वाच

जात सुमिरन, बहु बकिबे लगत, बावरे—
को गति होति, बांनी चेष्टा के छीव तें।
आलस ही रहे, अनकहिवे को कहे बात
काठ सो रहत, तन, संज्ञा जाति जीव तें।
देषिके 'गुपाल' जो बड़ेन कों न माने, जो
अगम्यां गम्य ठाने, भष्या-भक्ष हि के लीव तें
रोग उपजावे औ सरीरहि गमावे सदां
'एते दुप पावे नर आसव के पीव तें।

मदरा गुण

पुरुष वाच

दोहा

होइ तेज बल् पून, पुनि ऐस स्वाद उतपत्ति ।
कवि 'गुपाल' मद के पियत रहत सदा उनमत्त ।।

कवित्त

बल होत दून, बढ़ि जात बहु पून, ऐस
बड़बड़ी दीसे[1] तन तरुनि को छीए ते[2] ।
सुकवि 'गुपाल' नेन होत लाल-लाल, तेज
बढ़त बिसाल एक प्यालो भरि पीए ते ।
साह्मी चल्यो जाइ हो लरेन को चाइ रण
मरन को ताय भय जात रहै हीए ते[3] ।
मद मांझ भीये रहै, बोतल को लीये, होत
एते गुण हीये मदरा को पान कीए ते ।

स्त्री वाच

दोहा

समझें बाद बिवाद नहि मन[4] संताप अति[5] होत ।
हूत सदा मद पियें ते[6] दोष सहस्र उदोत ।।

---

१ है० बडी होति   २ है० तरुनी संग छीएते

३ है० "बहुत गोपाल कवि लरत में इन बीच
मरिवे को डर जातो जात रहे हीएते ।।"

४ है० चिन   ५ है० तिन   ६ पियत मे

कवित्त

टूटि जात पाय, छिद्रि आवति हूं साय, भूप
लगत न जाइ, बुरी आवति नियति में।
सुकवि 'गुपाल' दोष सहस उदोत होत,
सील ते कुसील होत, मरत जियत में।[1]
लाज औ धरम धन विद्या सोच भूलि जात
सील ते कुसील होत मरत जियत में।
जात बुधि वृधि गिरि परै लद पद वड़े[2]
होत उणमद सदा मदके पियत में॥

तमापूं पानौं

पुरुष वाच

दोहा

याको महि महिमां अधिक, कलजुग की सहुगाति।
राजा रंक फकीर सब कोऊ तमापू खात॥

कवित्त

रहै गरमाई, नित मुख अठनाई, सुख-
दाई लगै भोजन, पै पांन के पवैया[3] कौं।
सुकवि 'गुपाल', याते कंठ रहै साफ भलौ
सिष्टाचारी होत हितू यार जाति भैया कौ।

---

१ है० प्रति में यह पंक्ति इस प्रकार है:—
"सुकवि गुपालजू सहत दोस होत बडो
लागत है पाप जाके हाथन दियत में।"
२ है० वड़े ३ है० पवैया

कहै कैयो काम, घनै चाहिऐ न दाम, कबू
कष्ट को न काम, है आराम के लिवैया को।
कहै मैया माया, दय रावत नवैया याते
येते सुप होतहु तमापू के पवैया कौं।

स्त्री वाच

दोहा

थूकत होत हिरान नित, आवति है अति धांस।
बहुत तमापू पात में, नैननि को होइ नास॥

कवित्त

नैन जोति जाति, कही जाति नहि बात, औ
घिनाल हारो जात गात, थूकै थल-थल मैं।
जीभ फटि जात, पीक लीलै लगि जात, मागि
कै हूँ चलि जात मन दूसरै सू पल मै।
सुकवि गुपाल नुरैं दांत परि जात, हाथ
मुप रहै करुवो न आवै स्वाद जल मैं।
परति न कल, रहयो जान नहि पल, जरि
जातु है कमल या तमापू के अमल मैं॥

हुलासके

पुरुष वाच

दोहा

बढति जोति नैननि सदा, चलत स्वाफ सब स्वास।
यतने सुप नित होत हैं, सूंघत जबै हुलास॥

---

१ है० होत २ है० मैया ३ है० है ४ है० के ५ है० इतने

कवित्त

स्वाफ रहै मगज, नरेपमां न आवै पास
जोति बढ़ि जाइ नैन होंइ परगास के।
सुकवि 'गुपाल' कवीप[1] सीत न सतावै जाइ,
जाको लेत देत लोग राजी रहैं पास के।
अमल न आवै वैदई[2] रोगन घटावै वास
छिग नहिं[3] आवै दांत पीरे लगें तास के।
रुकत न स्वास, जात रहैं कफ पास, एते
होत है[4] हुलास सदां सूंघत हुलास के॥

इम्भीचान

दोहा

सनन सनन करिदो करै[5], सुनमुनाति जब नाक।
सूंघत बहुत हुलास के बहन लगति है आंषि॥

कवित्त

बह्यो करै नाक, ठौर रहति न पाक, देषि
आवति उबाक, थूक थाकत सबास के।
बैठि न सरत तुम कारज के बीच तदां
सनन सनन कीयौ करै लेत नांक रे[6]।
कहत 'गुपाल' कवि बेर बर छीकत मैं,
ठौर ठौर सारी लोग देत रहैं पास के।
छाई रहै बास, बहु लायौ करै बास, एते
दुष परगास होत सूंघत हुलास के[7]॥

---

१ है० मधू २ है० वैंऊ ३ है० बहु कष्ट न करावै। ४ है० है
५ है० करत ६ है० सन सन कियौ करै सिनकत नाक के।
७ है० प्रति में तीसरी और चौथी पंक्ति में विपर्यय है।

हुक्का

पुरुस वाक्य

मिलि के जात बरात में, जब भरि हुक्का लेत ।
पच पँचायति बीच में, बडी ठसक तब देत ॥

कवित्त

जाति रहै बाय, लोग बैठे बहु आय, औ स-
रीप दयि जाय जाके[1] सुनिके तडक्का ते ।
दीसै वडी बात जानी जाय जाति पानि, बहु
आवति है बात याके लेतहि सडक्का ते ।
सुकवि 'गुपाल' याकी महिमा[3] अधिक होत[4]
सभा कौ सिंगार दिपि उठै इक्का-दुक्का ते ।
सवत असक, बढ़ै हिय की वसक, बनी
रहति ठसक बडो पीवत ही हुक्का ते ॥

इस्त्री वाक्य

दोहा

हाथ जरे, महुडो बरे, जरे करेजा जोइ[5] ।
जारत हियो[6] कुटब को, पियत तमापू सोइ[7] ॥

कवित्त

भुरसत हाथ औ' कमल जरिजात पानी[8]
भरि भरि जात मुप लेतहि सरक्का ते[9] ।
रहत 'गुपाल' बीच कूरो करकट बहु,
आवति[10] है बास मुद[11] धूंअन कै चुक्का ते ।

---

१ है० पीमने तमपू को सुग दुग २ है० तारे ३ है० महमा
४ है० होति ५ है० सोइ ६ है० हयो ७ है० जोइ ८ है० पान
९ है० सडक्काते १० है० मुर आयो करें बास ११ है० बहु

होइ सरभंगी, बैठि सकतु न संगी, जाति
पाति मे दुरंगी, चलि जाइ इक्का दुक्का ते।

घर होइ धुप्पा, नित होइ धुक धुक्का, औ-
कहावतु हैं लुक्का वहु[1] पीवत ही हुक्का ते॥

चरस के गुन

दोहा

करि सुलफा तैयार जब, चिलम लेत हैं हाथ।
चरस पिवैया नित नए, लागे डोलत साथ॥

कवित्त

रहत निसोग[2], संग लगे रहे लोग, जाय
रहत[3] न डर कहूँ काहू के तरस को।

सुकविगुपाल' आवै सरदी न पास, पाव
देतही रकेब आवै अमल अरस को।

मिलि दस पांचन में चिलमहिं लेत हाथ
पैचत ही[4] दम स्वाद आवत छ रस को

इमृत बरस होत, हिय में हरस, याते
सब में सरस यह अमल चरस को

स्त्री वाक्य

दोहा

महु भभूर्यो सो नित रहत, सहुबति रहति कुटांट।
चरस पिवैयन को सदा घर होइ बारह बाट॥

---

१ है० लोग २ है० चाहत न भोग ३ है० कहूँ ४ है० मे

कवित्त

हाथ रहैं दाग, औ' करेजें जाय[1] लागि, ढूंढ़ं
आगि जाग जाग, परि जाइ[2] बस जिस के।
सुकवि 'गुपाल' छाय जाय बहु बास, लोग–
बैठि न सकत पास, अरस परस के।
पाग घटि जात[3], पुनि आंखि कटि[4] जात, हाल
होत लोट पोट, दम पेंचन ही इस के[5]।
सूखि जात नस, कछु आवत न रस, एतें
होतहैं[6] कुजस सदा पीवत चरस के॥

इतिश्री दम्पति वाक्य विलास नाम काव्ये अमल प्रबंध वर्णन
नाम पचमो विलास

---

१ है० जात २ है० जात ३ है० जाति ४ है० मढ़ि ५ है० यमरे
६ है० हैं।

षष्ठ विलास

अथ पेल प्रबंध

पुरुस वाच

सिकार पेल

दोहा

वन, बेहड़, गिरि, सरित, सर, सब की लेत बहार ।
ह्वै सवार हय पै जबै, पेलत जाय सिकार ।।

कवित्त

लीयौं करैं स्वाद, सदां आमिप अनेकन कौ
चाहे तरवारि सिंघ सूकर की धारि मैं ।
सुकवि 'गुपाल' ह्वैकैं हय पै सवार देख्यौ—
करत बहार गिरि, झरना, पहार मैं ।
पहरत वर्म, करि छत्रिन के धर्म, जात
मारि बांधि लामैं पसु पंछिन हजार मैं ।
होत है हुस्यार, सूरताइ के मझार, एते
रहै सुप त्यार, सो सिकारिन सिकार मैं ।।

इस्त्री वाच

दोहा

सूकर सिंघहु स्यार बिन यामैं डारत मारि ।
याते बन बेहड बिष पेल न पेल सिकार ।।

कवित्त

सहनो परत भूख, प्यास, सीत, घाम, ओ–
अकेलो गाहनौं परै गहन बन झारी कौं।
सुकवि 'गुपाल' बहु गात थकि जात, छूटि
गए ते सिकार भावै भोजन न थारी कौ।
मन रहै त्रास होत जिय कौ बिनास ओ'–
चलावत हथ्यार, काम बडोई हुस्यारी कौ।
मास कौ अहारी, होति हथ्या हाय भारी बहु
पाप होत जारी, या सिकार में सिकारी कौं॥

पटेबाज खेल

पुरुस वाच्य

बने रहै नित बोकडे पटो हाथ लै मेल।
राजन की राजी करन पटेबाज को खेल॥

कवित्त

जिकिरि सरीर बडो, अक्कड सौ रहै बनी
घुटना पहरि सग कर न सेवा जो का।
सुकवि गुपाल जू पट कौं हाथ लै कै सो —
हुआरन पै बार करि सारे परकाजौं का।
अहूँच न आनें देत अग आपने पै, और
अस्त्रन बचामें लैके नाम उसताजो का
मडन समाजौं का, रिझामनो हैं राजौं का, य–
सब मे मिजाजौं का है य म पटेबाजौं का।[1]

---

१. इस कवित्त में अन्त्यानुप्रास के रूप में कहीं का और कहीं कौ मिलता है। वास्तव मे इसमे पूर्व के पदो की प्रवृत्ति (पद + बहुवचन विषय प्रत्यय–औं) को देखते हुए सही बोली का का ही अधिक उपयुक्त लगता है।

स्त्री वाच

दोह

पट्टेबाजी संग ते गट्ठेबाजी होत ।
पट्टबाजी करत होइ टठ्ठेबाजी होत ॥

कवित्त

रापनी परति, चारयौ ओर कौं निगाह
नेंक गाफिल भए पै वार होत मर्द[1] गाजी कौं।
सुकवि गुपालजू तमासगीर लोगन कौं,
करनौं बचाउ परै जुरत ममाजी कौं।
देह थकि जाबै, कछू हाथहू न आवै, हाथ
पाँउ उड़ि जावै, पैबो चहैं माल ताजी कौं।
नेंक इटैं बाजी, लोग करें ठठेबाजी, याते
बड़े बटबाजी को सु काम पटेबाजी कौं ॥

पतिंग

पुरुस वाच

दंग रहैं दिल संग में, रहे मित्र को मेल।
पेलन मांझ पतिंग को है उमराई पेल ॥

कवित्त

देप्यौ करें सैल, फैल करत अनेक भांति,
एक ते सरस एक रहत मिजाजी में ।
सुकवि 'गुपाल' बड़े होत दंग-बाज दंग
रह्यो करें सदा यारबास के समाजी में ।

---

१. है० मे मर्द मिलता है।

माँझे को मुलाय असमान में चढ़ाय ढील
दैके काटि देत पेंच पारत जिहाजी में।
दबे रहें पाजी, आप होत इस्क बाजी, या ते
राजी दिल रहो करें या पतिगबाजी में ॥

स्त्री वाच

दोहा

घन अरगर, उमँग बल मित्र अंग के संग।
जीते जुरि जुलमीन सों, जर पतंग की जंग ॥

कवित्त

टूटे, कटे, पाछें मुप जूतो को सो पिट्यो होत
रौंद परें दोष बहु चहियत जग कौं।
फाटी फाटी कहि लोग तारो देत रहें हाय
रप्पनते उड़े गिरे, करें प्राण भग कौं।
सुकवि 'गुपाल' असमान ही कों रहैं मुप
फाटि जात आंधि होस रहत न अंग कौं।
बुरो रहैं रंग औ' उपाधिन को संग। याते
पलियें न पेल कभी भूमि के पतिंग कौं ॥

कबूतरन को पेल

पुरुष वाच

दोहा

है हरीफ सब मैं रहैं, करि उमदाई साज।
ऊपर आवत है अमित, भये कबूतर बाज ॥

कवित्त

मारयौं करें मजा नितप्रति महबूबन कौ,
नई नई नसलि निकारि सब वेले में ।
सुकवि 'गुपाल' जू उड़ान कौं लगाइ बाजी
देषि दिल राजी रहैं यारन के मेले में ।।
लोटन की लोट देषि, लोट पोट होत, आवैं
घोरे की परष, मन रहत अलेले में ।
सांझ लौ सवेर, सदा रहत बलेल, लेत
सुषन के ढेर या कबूतर के खेले में ।।

स्त्री वाच

दोहा

रहत उड़ान उड़ान दिल, परच परी नित होत ।
कबूतरन के षेल में, पछिछमदारी होत ।।

कवित्त

देत रहैं सीठि, बुरी बीठि की रहत त्रास,
दीठि बिगरति असमांन के निहारे तैं ।
सुकवि 'गुपाल' सदां सोबरि रहति चित–
चोरिबे की करैं, नई नसलि निकारे तैं ।
हो हो कहि कहि भारी तारी पटकायौ करें,
गुंडन के संग रहि सांझ लौं सवारे तैं ।
फटि जात तारे, हाथ हथ्या होति हारें, ऐब
आवत हैं सारे या कबूतर के पारे तैं ।

चौपरिपेल

पुरुस वाच

मित्र मिलापिन को[1] सदा, बन्यो रहै नित मेल।
याते[2] पेलन मे भलो यह चौपरि को पल।

कवित्त

राजी रहै मीत दिन सुप में बितीत होत
जोनत में लागें मन साझ लों सबेले में।
बाजी लेत अडी के, बहुल रहै बडी ओ
हँसत मन रहै यारबासन के मेले मे।
सुकवि 'गुपाल'[3] कछू जाचिक न मांगि सकें,
उठि न सकन मजा मार्यो करें रेले में।
होत अलबेले पास झुके रहै मेले सदां
एते[4] सुप होत नित चौपरि के पले में।।

स्त्री वाच

दोहा

पासों परैं न जीत की हारत बाजी सोइ।[5]
चोपरि है खिलवार को परी परावी होइ।।[6]

कवित्त

मारिबे-मरायबे की यामें रहै बात नित,
पासे के अधीन हार जीत रहै बेले मैं।
हाडन बजावै, सदा रूमटि मे जावै दिन
हाथ घिसि आवें भेंटा होइ न अधेले तें।

---

१ है० मिल मिलापी यार की २ है० सदहीं ३ है० आयके गुपाल
४ है० याते ५ है० येते ६ है० जोइ ७ जब उदासी होइ

सुकवि 'गुपाल' सनमान दिन पावै मिलि–
वे कौ पास आवै सो उदास जाय डेले तें ।
परे रहैं हेले जाकों सांझह सवेरे, यातैं
एते दुख मेरे होत चौसरि के पेले में ॥

सतरंज

पुरुष वाच

मिल रंजिकै गंजिरिव[1] चातुरीन को पुंज ।
हिय में होत हुलास पुनि[2] पेलत जब सतरज ॥

कवित्त

पेलें यह जूवा आवें[3] पेते मनसूबा तातें[4] ।
सर करैं सूबा राव राजन के रंज तें ।
'सुकवि' गुपाल उमरावन[5] कौं ख्याल जाकौ
लगै न सवार नेक दरिन की गंज तें ।
दगा नहि पाय, कौन जीति सकै ताय, बहु
आमें दाय, घाय ताय करत या वंज तें । +
लागै मन मंजु, मिटि जात सतपंज,[6] जामें
चातुरी के पुंज बहु,[6] पेलें सतरंज तें ॥

स्त्री वाच

दोहा

बढ़ो परत मन मारनो और न कछू[8] सुहात ।
पेलत जब[9] सतरंज की बाजी आवे हाथ ॥

---

८ है० बजाय ९ है० जाय   १० है० कूं   ११ औ'

१ है० जामही २ है० बहु ३ है० आनैं ४ है० तानें ५ है० उमरावन
* पेल यह दार न लगति जाकी रिपुन के गंज तें । ६ है० नित
+ दगा नहीं पाय कोऊ जीति न सकतु जाय, आमैं दाय घाय ताय करत ही बज तें ।   ७ है० सतपंच ८ है० कछू न ९ है० तब

कवित्त

हारत है[1] हाल, ताकी चूकत ही चाल, बड़ो
लगत कमाल, चाल चलन के पुंज तें।
सुकवि 'गुपाल' देर बाजी में लगत,[2] लोग
राजी न रहत[3] सो उदासी होति अंजि तें।
बैन नहि कहें, औ' मन्यौं सौ मन रहें, लगें
किस्ति ते सिकिस्ति हारें गोटन के गंज तें।
पचत न नंज, और आवत न वज, बड़ी
देह होति लुज, बहु पेलें सतरंज तें॥

गंजफा

पुरुस वाक्य

दोहा

जाइ पेलि हू गंजफा, छोडि अबै सतरंज।
तुम सो बरनन करतु हो, अब ताके सुष पुंज॥[4]

कवित्त

चातुरी को कॉम,[5] बड़ो रहै छूंम-छाम, कबो[6]
परत न कांम यामें,[7] बद[8] औ' बदा को हैं।
सुकवि 'गुपाल' कबो[9] रूमटि न होति याकी
जीतत में[10] बाजी हाल[11] होत ही अदा[12] कों है।

---

१ हैं० घरि जात हाल २ हैं० लगति ३ हैं० रहति
४ हैं० में यह दोहा सोरठा के रूप मे इस प्रकार है:
"छोड़ि अबै सतरज, जाय पेलिहूँ गजफा।
जाके जे गुन पुञ्ज, ते तुमसों बरनन करूँ॥"
५ हैं० घाम ६ हैं० कबू ७ हैं० बहू ८ हैं० बड़ी
९ हैं० सब १० हैं० ही ११ हैं० जारी १२ हैं० अड़ा

मीरगड़ो फरद मुने की मिलै जो पै कहूँ
तोपै न पिलैया कोऊ जीति सकै ताकी है।[1]
बहुत नफा कौं यामैं काम न पया को, यामैं[2]
सबमैं नफा को बाँको पेल गंजफा को है॥

रती वाच

दोहा

नफा नहीं यामें कछू, बड़ी लगत[3] टरसेल।
सुनि कै पया न हूजियै बुरो गंजफा पेल।

कवित्त

रापनो परति[4] फरदन की सुमार, जीत
हार के बिचार काम परत अकेले तें।[5]
सुकवि 'गुपाल' गुड़ोमीर बिन पायें[6] औ,
मुने की पर्द जायें भेंटा होइ न अबेले तें।
राति दिनां सदा मन याही में रहत नित
बाजी बिन पायें टठि सकत न डेले तें।
रहैं टरसले, सब दिन[7] रहैं लेले, येते
दुप रहैं मेले गंजफा को पेल पेले तें॥

इति श्री दंपतिवाक्यविलास नाम काव्ये पेल प्रबन्ध षष्टमो अध्याय

१ "दाँटत में फरह मुने को मिलै जोपै तोपै
मीरगड़ो ल्यावै जीत सबत को ताकौं है।"
२ है० यातें ३ है० होइ ४. है० रासनो परत; ५. है० पुनि जीतें हारें बाजी काम परतु अबेले ते। ६. है० ल्यावें ७. है० दिन राति

सप्तम विलास

निवास प्रबंध

ग्रामवास

दोहा

कुटम बढत भारी जहाँ हाल बोहरे होत।
गई गाम के बास बसि घोरेई जस बोत ॥

कवित्त

ठोरन को जहाँ मुकतायसि रहति, कैई
चीज मिलै योंही, जे न आवें हाथ दाम में।
घर-घर प्रति दूध-दहिन के सुख, अप—
–नायसि मुलामजे सरस आठौ जाम में।
आपनी पराई बेटी बहिन सुमानि मिलें,
आदर अधिक आए गए कों सुधाम में।
सुकवि 'गुपाल' जहाँ निकरत नाम एते
पावत अराम सों बसे ते गई-गाम में ॥

दोहा

ऐस स्वाद घटि चलन लघु, करनी करत बहोत।
गई-गाम के बास वसि, बहु दुख होत उदोत ॥

कवित्त

नेंक-नेंक चीजन कों मारनो परत मन,
रहनो परत फूटे-टूटे से अबाम में।

होतु है 'गुवालजूं' गमार में गमार भोग—
भोगि न सकत भूत लोगन के वास में।
आवै न अकलि, जादू सूरति सिकिलि, मिस्सी
कुस्सी पानी परै मन रहत उदास में।
धर्म होत नास सहरवासी करैं हास, एती
होति हदवासि, गई-गाँम के निवास में ॥

सहर के सुख

पुरुषवाच

दोहा

करनी, करतब नांम, जस, धन, आचारो होत।
सहर बसें नित-नित नए अदब कायदा होत ॥

कवित्त

सूरति-सिकिलि, बोल-चाल भलो होति, पान-
पान, मिलै आछो, सुष रहत विलासी कौं।
सुकवि 'गुवाल' चीज चाहियै सो मिलै, होई
देव के सरुप लोग करत पवासी कौं।
मिलै नित नए नर-नारि, रुजिगार, सुष-
संगति अपार भर्म बढ़त मवासी कौं।
गुन को करासी, काज करनी की रासी ऐ (सी)
लहरि मिलै पासी, सदा सहर के वासी कौं ॥

इस्त्री वाच

दोहा

जहाँ रहत सब चीज को, दहर-दहर उठ दांम।
तवें सहर के बसत में पावत नेंक अराम ॥

कवित्त

ठौर की सकोच, मौर जगल की सोच, औ'—
मुलायजो न मानें, चीज मिलै न मुफति मे।
गली औ' गिरारन में आयो करे वास, आए—
गए को न आदर बनतु है वपत में।
झूंठ बहु बकैं, पर बेठी बहू तकैं, कोऊ
काहू ते न सकैं, लोग चलें निज मत में।
सुकवि 'गुपाल' मतलबी होत अति, दुप—
होत हैं बहुत, या सहर के बसत मैं

ब्रजवास

पुरुस वाच

दोहा

रास-बिलास हुलास नित, सब सुपको परगास।
बड़े भागि ते पाइयै, ब्रज के मांझ निवास॥

कवित्त

कथा कीरतन-रास-भजन-समाज साथ-
संत-सतमगनि दै सुरग बिलासी कौं।
देषत गुपाल वरपोत्सव के सुप नित,
प्रभु के समान न बिहार भूमि-रासी कौं।
सुकवि 'गुपाल' जाके भागि को सराहै ताके
आगे सुरप स्थामनु है फल प्राप-कामी कौं।
मिटत चुरासी, जाय होत अविनासी, मिलें-
सुपन की रासी, ब्रज मांझ ब्रजवासी कौं॥

इस्त्री वाच

दोहा

पिय प्यारी की कृपा करि पूरण पुन्य प्रकास ।
तब पावें निरविघ्न या, बन के मांझ निवास ॥

कवित्त

बंदर औ' चोर, डोम, कंटक, कलित, मुनि,
सकल कठोर ब्रजबासी हैं पिजैया कों ।
सुकवि 'गुपाल' जहां होत बड़ो पाप लै-
लगावत कलंक तहां नेंक मुसिकैया कों ।
बोलन में गारी, लोग कपटी, सुमारी, प्यारी-
करत भिपारी, दाट-त्राट के भूमैया कों ।
करिकें चबैया तहां, सबहि हंसैया एते-
होत दुप दैदा, ब्रजबास के बसैया कों ॥

वनवास

पुरुष वाच

दोहा

(संसारिक) दुप व्यापत न, काटें ब्रह्म मफास ।
रहत सदां सब भांति सुप, बन महें कियें निवास ॥

कवित्त

नित प्रति रहैं सिद्ध-साधन को सतसंग,
व्यापत न दुप अहं ममता की फांसी कों ।
रहति 'गुपाल' जहां एक न उदासी, नित-
निस-दिन ध्यान रहो करें अविनासी कों ।

पाइ कंद-मूल-फल-फूलन के भोजनन,
　　　　फरत बहुत बन बोधिन बिलासी को ।
परम प्रकासी, रहै रिवि मुनि पासी, मिलै-
　　　　सुपन की रासी, बन मांझ बनबासी कौं ।।

स्त्री वाच

दोह

करै सुकृत हरि को भजें, काटै अहम मफास ।
मन कौ हाथ हिरापिबो, यह ही बनको वास ।।

कवित्त

सीवपन पवन, जल, सीत, घाम सहै सदां,
　　　　रहनो परतु है अकेलो निरजन मैं
सूकर, व्रषभ, व्राघ्र, सिंघ, पाइ जात, भय-
　　　　रहै भूत-प्रेत निसचरन को मन मैं ।
सुकवि 'गुवालजू' उदास चित रहै तहां,
　　　　कहुं दिनरेनि सुप पावत न मन मैं ।
रहै निरयन, फलफूल को भषन, दुप-
　　　　होत अनगण, बनबास के बसन मैं ।।

स्वरग सुप

पुरुष वाच

दोहा

मांनौ भोग विलास करि सदां रहत निरसोग ।
जेते कहे न जात सुप, तेते हैं सुरलोक ।।

कवित्त

अमृत को पान सदा बैठक विमानन पै,
भांति भांति भोगै सुप, रंभादि बिलास के।
धारिकैं 'गुपाल' संख-चक्र-गदा पद्मान
चतुर्भुज रूप होत तन परगास के।
ह्वैकैं कृतकृत्य रहै, मन मैं प्रसन्न चित,
करि दरसन नित रमा के निवास के।
छूटे जम पास, होत श्रुकृत प्रकास, कहै-
जात न हुलास, कछु सुरग निवास के॥

स्त्री वाच

दोहा

सज्जन जन सतसंग करि, करि जग श्रुकृत प्रकास।
सुजसी नर नरलोक ही, करत सुरग में वास॥

कवित्त

श्रुकृतं'रं बड़े कष्ट कल्पना ते पावै, पुनि-
पुन्य छीन भये भुव-पात होत तीको है।
सुकवि 'गुपाल' जहाँ टकटका पुरो कबौ
सुप नहिं पावै बोल चालिबे कौं जी को है।
कुटम-सहति इहिलोक में न मिलै, दूजी-
देह धरि पावै, दै कैं दुप सबही कों है।
मिलिबौ न पीको पूर्व जन्म को न ठीको, सदाँ-
याते यह सुरग को वास नहिं नीको है॥

घर बास

पुरुष वाच

सोरठा

देस रहे सुष नाहिं, बिना गए परदेस के ।
कहो कहा करि पाइ, उद्यम अल कीए बिना ।।

सवैया

राम को नाम न लेत बनें, रुजिगार कों मोर ते साम लो जीकें ।
कामन के सबसेते 'गुपालजू' आठहूं जाम में भामन जी कें ।
दारिद धाम ते ठामहु में सुष, साज-समाज, सबै दिन फीकें ।
दाम बिना निज गाम में धाम अराम न आवत धाम में नीकें ।।

स्त्री वाच

जेते-सुख घर में सदां, ते न भलोकी मांहि ।
या ते गमन बिदेस को, भूलि कीजिए नांहि ।
मित्र मिलापो मिलेई रहैं, रहें आठहु जांम कुटंब कहे में ।
धर्मं सधे, बढं मर्म सदा, रहे राव 'गुपालजू' वांम बए में ।
बस बढे, जग होत प्रसंसित, लै बट अस रहै सो छए में ।
गाम में नांम, सटें सब काम, सो एते अराम, है धाम रहे में ।।

इतिश्री दंपति वाक्य बिलास नाम काव्य, निवास प्रबंध वर्णन नाम सप्तमो बिलास

यह छद है० प्रति में ही है। यह दोहा और सवैया पूर्व के दोहा और सवैया के पहले हैं। वास्तव में ग्रंथ के क्रम के अनुसार यही उपयुक्त है।

अष्टम विलास

(विद्या प्रबंध)

पुरुष वाच

दोहा

राजपाट, धन, धांन्य, धर धरम सुजस उददोत।
करमहि ते जग नरन कौं, सब सुप होत उदोत ॥

कवित्त

रथ, सुपपाल, द्वार झूमत मतिंग मांते,
पायगा पिछारी तोरैं तुरग गरम की।
भोजन बिबिधि भोग बनिता बिलास ऊंचे-
मंदिर-महल, सुप सयन नरम को।
होतु है 'गुपाल' जस जाहर-जहूर जग
ताकी फहराति ध्वजा धरा में धरम की।
नैंनन सरम बढ़ै, धनरु, धरम याते
सब में परम यह बात है करम की ॥

स्त्री वाच

दोहा

करम धरयोई रहत जब, करै कृपा भगवान।
मिलैं नरन कौं सहज ही, सब सुप संपति आंनि ॥

कवित्त

फूल्यौ फिरै नर मूल्यौ कहा महि मोहित माया के फंद अलेषे ।
दीसैं नही कोऊ दूजो 'गुपाल' सौ दीनन के दयादान के लेषे ।
रंक ते राज करैं छिन में सो कृपा की कटाक्ष किये ही निमेषे ।
देषे नहीं तिहि कौं मति मूढ जो कर्म की रेष पै मारत मेषे ।

'दालिद्र के'

पुरुष वाच (१)

बिना मिलें भोजन सुब्रत सतन सौं होइ हेत ।
हरि किरपा जापै करे ताको धन हरि लेत ॥

स्त्री वाच

कवित्त

निसदिन रहत प्रभू को सुमिरण होइ,
थोरे में बहुत नाम करि करनीन कौं ।
व्यापत न मायक बिकार कोऊ कहूं, दीसे—
आपनौं-परायो बैठे करि कै अधीन कौं ।
निरद्वंद हूकें सोवे पाइन पसारि, होइ—
जाहर-जहूर धन गृह है (म) अलीन कौ।
काहू कौ रिणो न रहे ऊफति धनीन. याते—
बहु सुष होत हे धनो ते निधनीन कौं ॥

पुरुष वाच (२)

सुमति प्रकासे, श्रिय आदि मद नासे, छेड़—
अकड़, डिठाई नहिं रहै अभिमान तें ।
समदर्शी साधन को सहजहि संग होत
सुद्ध तजि तर्पहि साहो तिनहि पान तें ।

बिना मिलै सहजहि होत पपतप दुन्ट
संग मिटि जात हिंसा होति नहि पान तें।
कहत 'गुपाल' या संसारहि के बीच नित
निर्धन कों होत सुष एते मनमान तें।

स्त्री वाच (२)

दोहा

करै न प्रीति प्रतीति कोऊ, होतहू मीत अमीत।
मीत मांनि निधनीन सों कोऊ न राषत रीति॥

कवित्त

जहाँ जाइ तहाँ ताको आदर न होइ, तापै
काहू को बर्नन सघलूपा, हाथ थाली मैं।
सुकवि'गुपाल' जासों सब डरपत, रुजि-
गार न लगत दिन जायो करै ठाली मैं।
दुरबल देषि कै कलंक लगै हाल लोग
निंदा करयो करैं भटकत द्वार द्वारी मैं।
रहत बिहाली, सब दोयो करैं गाली, कोऊ
करै न सँभाली, सो कँगाल को कँगाली मैं॥

'करमगति'

पुरुष वाच

मिरतु है षोरि षंड भोजन मिठाई मेवा
ताकों कवी समाऊ ते पेट न भरतु है।
बैठत हैं रथ-सुषपाल-पालिकीन मैं जे
उराहनें बिपन बिन पन्हीं फिरत है।
जिनको मिलापी मित्र बैरी भौं दरस करै,
तिनहू सों प्रीति रीति बैरी हू करत है।

कहत गुपाल हानि-टोटो नफा-हानि महु
फरम की गति कभी टारी न टरति हैं।

स्त्री वाच

सरबसु लैकें बलि राजा कौं पताल दीनौं
फंजा लै गुपाल ते उबारयो गज गाहू कौं।
चंदन लगे कै कुबरी की रतिदीन सिबरी
के फल पंके ही सुरग दियो बाहू कौं।
चामर चबै के पाछैं संपति सुदामैं, साक
द्रोपती को पैंके त्रास मेट्यो रिषि नाहू को।
कैसे कलि काल में करे को कहो, काम बिन
लीयें करतार हू कर्यो न काम काहू को ॥

प्रभुपोलि

पुरुष वाच

दाता निरधन, औ' अदाता धनमान, गुन-
-मान पराधीन नित रहैं दुख भारी में।
कुलटा कौं चैन, औ' सतीन कौं अचैन, दुज-
चलैं पांय प्यादे चढ़ें सूद्र असवारी में।
साधन कौं साँचो, औ' असतन को न आँचो, ये-
'गुपालजू' तिहारी रीति उलटी निहारी में।
ऐसो तो अन्याय कहूँ देख्यो न सुन्यो है प्रभु
जैसो तो अन्याय होत साहिबी तिहारी में ॥

सवैया

एकन कौं गजबाज दये, अरु अेकन के पनहीं नहिं पाअूं।
अेकन कौं सुखदाई सबै धन, अेकन कौं नहिं मात पिताअूं।

अेकन को घृत पीरि के भोजन, अेकन कों नहिं कोदो समाजू ।
'रायगुपाल' बिचारि कहै प्रभु की गति जानि परै नहिं काजू ।

स्त्री वाच

दोहा

याते सब कों छोडि कें कीजे मन संतोष ।
या सम धन कोऊ न जग पावत जाते मोष ॥

सवैया

क्यों फिरो देस विदेसन में जो लिलाट लिख्यो सो घटै न बढ़ै हैं ।
काहे कू हाऊ ही हाऊ करो अपत्यार करो घर बैठ ही पैहैं ।
धाम धरा, सुष संपति, साज-समाज, 'गुपाल' कृपा करि अैहैं ।
जीव जिते जगके जिनकों जिंनें जीव दियो सो न जीवका दैं हैं ।

पुरुष वाच

सवैया

आज लों अेसी कहूं न सुनी कि कमाइयै हाथ पैं हाथ धरें ही ।
आपनों सो तो कर्‌यो चहियै रहियै कछु को लग बैठि धरें ही ।
उद्यम के सिर लछमी है जैसें पंषा में पौन न आवें परेही ।
प्यारी 'गुपाल' सदा सुष संपति देत प्रभू रुजिगार करेही ।

दोहा

जेते हैं रुजिगार ते गुण महनति ते होत ।
बिन गुण पाये जगत में नहिं धन होत उदोत ॥

इस्त्री वाच

सोरठा

गुण के गुण कछु कंत, कवि 'गुपाल' हमसों अवें ।
तब गुण जाय अनंत, कहूँ जाइ कहूँ सीषियो ॥

गुण के सुप

पुरुष वाच

देस, बिदेस, नरेस, हित, सब कोऊ रावत मान ।
पूरब सुकरम के करें, जीव होत गुणमान ॥

कवित्त

कबहूँ कहूँ न काहू बात की कमी न रहै,
काम करयो[1] करे सदा सब पै यसान[2] के ।
सुकवि 'गुपाल' पूजा होइ ठौर ठौर, लोग
आइ आइ[3] बूझ्यौं दसहू दिसान के ।
देस, परदेसन, नरेसन में नाम होत[4]
जीतत गुनीन निज गुणते जिहांन के ।
देके दांन मांन भलें लेके पांन पांन ठाडे
रहैं धन मांन सदां द्वार गुणमान के ।

स्त्री वाच

दोहा

गुनी गुनी सब कोऊ कहै, गुनी होऊ मति कोइ ।
धन कारन धामें सदां, पर बधन नित होइ ॥

कवित्त

घिरयो रहै द्वारो, छुटकारो न रहत[5], बडो–
कष्ट होत भारो, ताके[6] सोवत कहत में ।
नबनौं परत, पचें करनों परत, मूड–
मारनो परत, दूजे गुनी के[7] गहत में ।

---

१. है० पर्‌यो २ है० इमान ३ है० आय आय ४. है० होइ
५ है० मिलत ६. है० तारौं ७ है० सो अरत मैं

सुकवि 'गुपाल' कवी आवत न अंत, पहै
घर को न पकरि प्रदेस के वहत में ।
चापत महल पद[1] वंधन सहत, अेते
औगुण रहत, सदाँ गुन के लहत में ॥

संसकृति (संस्कृत)

पुरुष वाच

पढ़े जास के होनि है सब सास्त्रन मे सक्ति ।
याही ते यह संसकृति करति मनहू आसक्ति ॥

कवित्त

कहै वेद वानी भगवंतने बपानी, मुप–
कहत प्रमांनी, सदाँ वानी जो सुकृत की ।
सुनत ही जाके देई देव बस होत, जामें
पाइयति वात, सास्त्र, सृति, औ' सुमृत की ।
कहत 'गुपाल' जार्मे सकल अनादि-आदि
यग में अगाध बहै धारा ज्यों अमृत की ।
गुनमें प्रवृति करे, और ही प्रकृति, याते
सब में सुकृति कृति सिरें संसकृत की ।

स्त्री वाच

दोहा

सभा सदन कों बरष बिन स्वाद न आवत कोइ ।
याही ते नहि संसकृति सब सुप दाइक होइ ॥

---

१. है० पर

कवित्त

सबते निवृत्ति भयें, पावत प्रवृति, होत
मृतक के प्राय, याके करत रिवत कों।
सुकवि 'गुपाल' समझावे समझत लोग
भाषा के प्रयोग, अर्थ निकरै समृत को।
कहत में सकल सभा कों न सुहाय थोरे
रहें सब जाय यह धाम बड़े धुत कों।
कठिन प्रकृति याको जानत सकृत सब
होत है चक्रत कान लखि ससकृति कों॥

'भाषा'

पुरुष वाच

सोरठा

समझत है सब कोइ, सकल सभासद सुनत ही।
मन में सुष बहु होइ, भाषा पढ़त समाज में॥

कवित्त

पंडित हू सुनत, चक्रत रहि जात, जाकों–
ससकृति हू में जाकी रहै अभिलाषा[1] है।
सुकवि 'गुपाल' जाकों समुजत[2] सब जग,
याकों पढ्यो जानें, तानें सब रस चाषा है।
अमृत को पान, सोपं सुगम निदान, हाल–
होत गुन मांन रोपै सुजस पताका है।
अर्थन को छापा, जामें देसन की भाषा, सब
सास्त्रन में भाषा, सरवोपर सुभाषा है।

---

१. अभिलाषा २ समुझात

स्ती वाच

दोहा

पंडित जन कोऊ नहीं मानत जास प्रमांन।
याते भाषा ग्रंथ नर कलपित कहत अज्ञांन ॥

कवित्त

कहत कहानी, कोऊ कहै नहिं खांनी, झूंठ–
चोरी की निसानी, मति भूमां मनि लाषा की।
सुकवि 'गुपाल' संसकृति की है छाया नर
कल्पित माया कणि आपस मैं भाषा की।
विगरि प्रमान, जाकौं मांनै न प्रमांन, बड़ी
बिकट है राह, ताके कठिनइ लाषा की।
देसन की भाषा, समुझै न अर्थ राषा याते
करैं अभिलाषा[1] कोऊ पंडित न भाषा की ॥

पारसी

ह्वैहि पारसी, करत है दारसीन के काम।
पढ़ि पारसी समारिसी रहत राजसी धाम ॥

कवित्त

जानत जिहांन करैं साफ मूजुबान बड़े,
होत अलि मांन कांम करैं कारसी को है।
मोलवी कहावै, जादे आमदि बढ़ावै, बड़ो–
दरजा सु पावै, राषै सौप सांनिसी को है।
जानत 'गुपाल' पातसाही, अलकाफ हाल
लगै रुजिगार मत आवै अरबी को है।
गहत कलम, जात बैठत गिलम, याते–
सब मैं जुलम को यलम पारसी को है।

1. अभिलाषा

स्त्री वाच

दोहा

बिना लगे रुजिगार सों, सकल छार सी होति ।
पात पारसी, पारसी पढत आरसी होति ॥

कवित्त

रहत ममान नहिं, पलटै जबान बिन,
राचै सौंप सानि यामें सुबा होत ही सकौं ।
समुझे न ताकौं, कोई हिन्दुस्तानी लोग,
कहैं मुसलमानी, है यलम इह ईस कौ ।
सुकवि 'गुवाल' बारे बरस में आवे जब
बहुत सिकावैं तब घुन्यौं करे सीस कौं ।
करियै नरीस, मेरी बात मानि बीस, याते–
भूलि कैं न कीजे काम पारसी-नवीस को ॥

दोहा

यनैं आदि दैके बहुत है गुन के रुजिगार ।
सब कौ जो बरनन करूँ ग्रंथ होइ विस्तार ॥
सब के करिबे जोगि जो करत सकल ससार ।
कछुक तिन में ते अबै, तेरे कहूँ अगार ॥

नवम विलास

(ग्रंथ सूची)

कवित्त

धन-हित जाइ-जाय देस परदेस पूर्व
दच्छन पछिम अुतरादि फिर्‌यो चहियै ।
बेटा बेटी ब्याह समध्याने सुसरारि, ब्रत
जाति पाँति पाइ कें षबाइ परो चहियै ।
तीरथ-दरस-कथा-कीरतन-मेला-पेल
पेलि नांनां भांति असवारी फिर्‌यो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्‌यो चहियै ॥

भांग औ' अफीम, पोस्त, मदरा, हुलास, हुक्का,
पाइ कैं तमापू, गांजो, चर्स भर्‌यो चहियै ।
चौपरि औ' सतरंज गंजफा सिकार, पटे-
-बाजी, कबूतर, पतिंग लर्‌यो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्‌यो चहियै ।

गेई-गाम, कसबा, सहर, व्रज, बन, स्वर्ग
करिकैं निवास, घर मांहि अर्‌यो चहियैं ।
मंत्र, सांख्य, न्याय वैयाकरण, बिदांत नीति
पातंजलि, मीमांसा, कोक, पढ़्यो चहियै ।
जोतिसी, मिसर, वैद्य, पंडित, कुकबि, कबि
कायर, भीष रोजी न लिषाई अर्‌यो चहियै ।

गद्दू, नाबा, प्रोहित, कैं चौबे, घटमगा, रासधारी
कि गवैया पुसामदि फिर्यो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम वै पालिव कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यो चहियै ॥
ससकृति भाषा पुनि पारसीह गुण वाल-
द्रहि कै दुवारु सतोष धर्यो चहियै ।
करम करम गति प्रमुहि को पोलि गोस्वामी,
अधिकारी, भट्ट, पडा परो चहियै ।
फौजदार, सिरदार, भडारी, पुजारि, कुन-
-वालरु, रसोइया, हे दुव भर्यो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यो चहियै ॥

गुरु, चेली चेला, मस्तानी कि, महत, मोंडा,
मुखिया, सजोगी, कै फकीरी फिर्यो चहियै ।
जोगी जनो, विरकत, तपसी, विदेही, नागा
सिद्द, परमहस, सरमग गद्यो चहियै ।
बामनहू द्वारे चारि सप्रदा कौं सिष्य ह्वैकें
कौऊ बर्ण श्रम साध सग रह्यो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यो चहियै ॥

पच, सिरदार थोकदार, जुमेदार, औ
महल्लेदार, मुपत्यार ह्वै कें ठर्यो चहियै ।
जाति-, गाम-, चौधर, चबूतरा की चौधर, किसांन
गुजारिया ह्वै, जामिनी मे फिर्यो चहियै ।
दीवान मुसद्दी कामदार पोतेदार ह्वै
सजानो सिलहादार धन धरयो चहियै ।

सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कौं
जीवका के काज रुजिगार करयो चहियै ॥

पातसाही रजई नवाबो कि वजीरी औ'
अमीर, उमराई, ठकुराई, फिरयो चहियै।
फौजदार, बकसी, रसालदार, कुमेदान
सूरिमां, सिपाही, मल्लई में लरयो चहियै।
मुल्ला, पिलमांन, गडमांन, सरमान, मोदी, काजी,
कलामत, है कै गुयांन रहयो चहियै।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कौं
जीवका के काज रुजिगार करयो चहियै ॥

अंगरेज, नाजरु, नाइब, सौ रिस्तेदार,
थानेदार, जमादार, चौकीदार, चहियै।
फौजदारी, दीमांनी, कलक्टरी, गवाई, कै
अपील चपरासी, जेलपाने, तुरयो चहियै।
पपतांन, तिलगा, हवालदार, सूवेदार
परमट, मीरबहरी, ढरयो मैं चहियै।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कौं
जीवका के काज रुजिगार करयो चहियै ॥

करनेंट, लपटेन, कपतांन, लिपकप-
तान, रैइट पुनि मेजर बपानियै।
करनैल, जरनैल, लाट, अजीटन जंगी
कोट मासतर, जुज्ज छोटो बड़ो मांनियै।
डिपर्टी रु, सिनसिनजस, औ' सपरडंड
हाकनर, कल्टूर, डिपटी, गुपाल मैं प्रमानियै।
बड़ो, कल्टूर, सिकटूर, रवन्टू, एजंट
आदि औदा अंगरेजन के जांनियै।

दोहा

कै सराफ कि बजाज बनि, परचूनी, पसरट्ट ।
हलवाई कसरट्ट करि छैरभान की हट्ट ।।

कवित्त

दरजी, सुनार, रँगरेज, छीपी, दस्तानाज,
चित्रकार सरनतगामी ढर्यो चहियै ।
बढई, लुहार, माली, मालिन, कहार जाट
कूँजरे भड़ारे है कमाई ढर्यो चहियै ।
कोरिया, कडेरे, नाई, बारी औ' कुम्हार धोबी
सबका गरमूँजा तेलिया ह्वै फिर्यो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कौ
जीवका के काज रुजिगार कर्यो चहियै ।।
चुगल कि चोर ठग, दोरा, सिढ फोरा है क-
-चर कूरवार हर्म-जददी ढर्यो चहियै ।
नगा कि हरामी मेवी पोरा बमरम, डिम्म-
-धारी, ममकरा गुवाल्ई मैं लर्यो चहियै ।
जुवारी, बिभचारी, कि सगाई की बिचोलिया,
रसायनी, सयानो बनि देस फिर्यो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिव कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यो चहियै ।।
गँडिया कि, भँडुवा, कि कसबी, भभैया औंडे
बाज. रंडी-बाज रसिया ह्वै ढर्यो चहियै ।
कुटनी, घरूका और छिनरा छिनारी इसके
गिरही, जनाने घरतिय ढर्यो चहियै ।
बाजीगर, नट भांड हीजराइ, बूडा, भील
कांजर स्वाच ह्वै गमार लर्यो चहियै ।

सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यो चहियें ॥

बाल, तरुनाई, वृद्धनाई, दय पाइ, सुत
सुता औ सतानिन के सुप ढर्यो चहियें।

दाता दान दै कें है सपूत कै कपूत रांड
रैंडुआ सुहागिल के दिन भर्यो चहियें।

सत्य, झूठ, माती, है मचन मतलबो सूम
जती कुजती हैं कुमति डर्यो चहियें।

सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यो चहियें ॥

परमारथ

करि परमारथ, श्रुकत भक्ति नवधा कौं
निर्गुन सगुन ब्रह्म ध्यान धर्यो चहियें।

सुनि यतिहास ब्रह्म, नारद सवाद नाम
मंत्र ब्रह्म फल के विचार अख्यो चहियें।

चतुर सलोकी, समझाइ सांत, मरुण
वर्ण अनंद कलहा ते जग डर्यो चहियें।

सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यो चहियें ॥

स्त्री वाच

रुजगार सुप

रुजिगारन के करत में कह्यो कहा सुप होत।
प्यारे सुकवि 'गुपाल' सो हम सौं कहहु उदोत ॥

कवित्त

नारि करै आदर, निरादरै न बैरी, सब
कहत बहादुर औ' जाति जगै न्यारी है।
ऑनि[1] मानैं कुटम, सुकानि[2] मानैं भाई बंध
जानि मानैं सुधर, सयानप न धारी है।
करत 'गुपाल' काज करनी करतबीलो
याही ते नरन मांझ होत जसधारी है।
प्राणन ते प्यारी उठि कीजियै सवारी सब[3]
जियन को चारो यह जीवका विचारो है।

दोहा

नाहीं उद्यम करन की मांनी[4] नहिं बतरात ।
तब पछिताय गुपाल सौं कही नारि यह बात ॥

स्त्रीवाच

कवित्त

जीवका के काज नर कुटम कबीलो त्यागैं
जीवका कैं काज सूर करैं सूरताई है।
जीवका के काज नर चाकरी पराई करैं
जीवका के काज परदेस रहैं छाई हैं।
कहत 'गुपाल' कवि जीवका अधीन जीवो
जीवका बिगरि होति फिरिरि सबाई है।
पाय जिंदगानी सब जगत मैं जीवन कौं
जीव हू ते प्यारी यह जीवका बनाई है॥

---

१ दि० कानि   २ दि० सो आनि   ३ दि० जग   ४ दि० रुकी

वैदेक, जोतिष, पंडित, काव्य लिपाई, कि गाई कें मोप भरोगे ।
प्रोहित कें गहुनाई फकीरी पुमामदी है गुरुदुःप्य हरोगे ।
स्यांनप के सिरदारी मुक्द्दम चौधरी है[1] कै[2] यजारें[3] करोगे ।‡
मन[4] में ते कहौ जो 'गुपाल' पिया तुम कौन सो जो हजिगार करोगे ।।†
सुप जाको सर्व हम सौं कहियें सु कहां[5] कहां देस विदेस फिरोगे ।
जाइ कहूं धन लाइ कमाइ कें लाइकें मेरेई आगें धरोगे ।
दया करिकें द्विज दीनन दांन दै दारिद को दुष दूरि करोगे ।
जस कीरति काजें 'गुपाल' पिया तुम कौन सो जो हजिगार करोगे ।

इतिश्री दंपति वाक्य विलास नाम काव्ये गुपाल कवि राय विरंचिता याग्रंथ सूचीवर्णनाम नवमो अध्याय: "९"

---

१. है० चौधर २ है० लैंकै ३. है० इजारे ४. है० इन ५. है० कहो

‡ यह है० प्रति मे दूसरी पंक्ति है ।

† है० प्रति में एक और कवित्त यह है ·

पेनी किधौं परवारगी चाकरी लादि लदेंनो प्रदेस फिरोगे ।
बनिजें बिवहार दलाली दुकांन तमोली है गंधी सुगंध भरोगे ।
परचूनी सराफी बजाजी पसारी कसेरट कै हलवाय धरोगे ।
मन में ते कहो जो 'गुपाल' पिया तुम कौन सो जो हजगार करोगे ।।

दशम विलास

(शास्त्र प्रबंध)

पुरुष वाच्य

दोहा

ब्रह्म सच्चिदानंद घन ताको अनुभव होत।
पढ़े सदा वेदांत के मिले जोति में जोति ॥

कवित्त

आतमा को ज्ञान, परमातमा को ध्यान, जात
रहतु अज्ञान, उर ज्ञान होत नित नें।
ततपर होत निरगुण की उपासना में,
ब्रह्ममय दीसे जीव जगत में जितने।
सुकवि'गुपाल' जड़ चेतनि की छूटे गाँठि,
मायक विकार हटि जात सब तितने।
छूटै भवकूप, पावै ब्रह्म को सरूप,
सुष होतु है विदातिन, बिदांत पढ़े इतने ॥

सोरठा

साधन कठिन विवेक, समुझत बहुत सुकठिन बहु।
होइ मुनाधार एक, पुनि कलेस यामें घनो ॥

कवित्त

कोरे ज्ञान ही की बात ठानत रहत अर-
ठान मानैत न मत दूसरे करैया कौं।

सुकवि 'गुपाल' मांयो मारत रहत बड़े
कष्ट के करे ते ज्ञान होतुहै दढ़ैया को ।
सरगुन ब्रह्म को सरूप सुध जानत न
भ्रांत भव भार कष्ट बाढ़ते बढ़ैया को ।
देत लोग लांति, पारैं भगति में भ्रांति, मन
होत नहि शांति, या विदांत के पढ़ैया को ॥

व्याकरन

पुरुष वाच

दोहा

पांडित्यहि को आभरन सब सव सास्त्रन को मूल ।
ग्रंथ व्याकरन जगत में याते है अति थूल ॥

कवित्त

वेद औ पुरान सब सास्त्रन को मूल यही
याही के पढ़ेतें होत मति को बढ़न है ।
बानी सुधरत सुधरत उर ज्ञान जान
मांनत प्रमांन पद अर्थ निकरनि है ।
सुकवि 'गुपाल' बड़ो चरचा को जाल हाल
पंडितन बीच पांडिताई को भरन है ।
पवत कथन घन चाहिये करन बड़ो
बुद्धि के करन को करन व्याकरन है ॥

स्त्री वाच

दोहा

थोरे आवे ते कबहुं, काज सरत कछु नांहि ।
याही ते यह व्याकरन व्याधि-करन जग मांहि ॥

कवित्त

कटुक बरन लागें, नीरस नरन जाको,
कठिन चरननि करनि अघरनि है।
अन्वय, अरथ क्रिया, करता, समास पद,
जाको रूप साधे हाल आबें उतरन है।
सुकवि'गुपाल' कबी आवत न स्वाद रहै
भारी बकवाद होइ नाहक लरन है।
मूढ कों मरण जीभ जीउ को जरन बहु
व्याधि के करन कों करन ब्याकरन है॥

नैयायक

पुरुष वाच

दोहा

कष्ट करै सब ब्रह्म को, तरकन में मति होइ।
याते नैयायकन को, जीति सकै नहिं कोइ॥

कवित्त

जानें अनुमान, सब लक्षन प्रमान, सप्त
पदारथ ज्ञान परमान मत बाय ते।
सुकवि'गुपाल' बहु तर्कन में गति होति,
होति अति मति, मत जानें सब काहू पै।
व्यासजू के मत को, सुधारि रिषि गौतम नें
कीनों बेद विरुद्ध मिटावन कों चाहकें।
मिटत अन्याय मुद्द कविता बनाइ केंई
आवत हैं न्याय नैयायकन कों न्याय ते॥

न्यौ वाच

दोहा

वादी बकवादी रहैं परनिंदा में गर्क ।
न्याय सास्त्र के पढ़ैं बहु करनी परति कुतर्क ॥

कवित्त

होइ बकवादी, सबही को अपराधी, बड़ो
रहति उपाधी, मत खंडे सब काय के ।
याही तें 'गुपाल' श्रुति थापित है सास्त्र, बड़ो
लागतु है पाप, श्रुति सुनत मैं याइ के ।
कुजस विख्यात ज्ञान भक्ति को न बात मति
भिष्ट होइ जाति समझायें जाय ताय के ।
निंदक कहाइ, मरें स्यारजोंनि जाय, ऐते
होतहैं अन्याय. नैयायकन कों न्याय कें ॥

सांख्य सास्त्र

पुरस वाच

सब दुख हांनि, तत्व निरनें को ज्ञांन, आंनि
प्रकृति पुरस को विवेक होत होए तें ।
अकर्तता, अभोक्ता, असंग. आतमा को जानें
ज्ञानरु विराग बढ़ि जात, जाके भीए तें ।
आवत गुपाल नित्यानित्य कों विचार सब
तत्वन कों जानें सार यामें मन दोए तें ।
पूर्ण हिय आंखि, पूरे होत अविलाष, कोऊ
रहत न कांक्ष सांख्य सास्त्र पढ़ि लीए तें ॥

स्त्री वाच्य

धर्म कर्म क्रिया त्याग ईश्वर न मानें कबो,
बेदक कहा में द्रढ रहे नही पन में।
जड जो प्रधान जग कारन कहत तासों
कैसें बनें सिप्ट यह आवति न मन में।
सुकवि 'गुपाल' भाव भक्ति कों न जानें, बकवाद
ही करैं ठारें, बडो कष्ट रापें तन में।
झूंठी बात वारे नहि हरि रखवारे याते
सांख्य-मतवारे, मतवारे हैं सवन में॥

पातंजल

पुरुष वाच्य

दोहा

रिधि सिधि निधि हाजरि रहे, योग अग में दंग।
पातजलि के पढे ते प्राण होन नहि भग॥

कवित्त

हाजरि हजूर सिद्धि ठाडी रहे आगे प्राण
चढते कपाट, आवें काहू के न हाथ हैं।
जानत 'गुपाल' निघियासन, नयम, ध्यान,
धारना, समाधि, यम, प्राणयाम, गाथ है।
मन के मनोरथ, सरल सिद्धि होत, औ'
कहाय जोगी राज होत जगत विष्यात है
जिय को न घात, दुष होत नहि गात, याते
सबही में प्रबल, पृतिजल को बात है॥

स्त्री वाक्य

दोहा

सब सुष त्यागिय कंत रहि मन कों राषें हाय ।
बड़ी कठिनता ते सधें. पातंजलि की बात ॥

कवित्त

लोक परलोकन के सुष कों न जानें, लों
सरीर कष्ट टारें जब प्रान जात चढ़ि कें ।
श्रवन, मनन, ज्ञान, साधन न बनें, चूकें
बादरों सों होत, नारी छूटें रोग बढ़ि कें ।
सुकवि'गुपाल' भक्ति मुक्ति न मिलति सिद्धि
प्रापति भए पै अभिमान होत अड़िकें ।
मन जात भरियक, अंत बैठें घर, यातें
दीजे जल अंजुलि पतिजल कों पढ़िकें ॥

मीमांसा

पुरुष वाक्य

बेदोच्चारन मंत्र-पढ़ि देवन बस करि लेत ।
सास्त्र मिमांसा पढ़ि करें, जाप दीक्षत हेत ॥

कवित्त

राजन में मांन होत, जस धन मांन, नांना-
जग्य के विधांन, ज्ञान होत, याके आनें ते ।
धरम बड़ाई, जग्य दीक्षत कहावें, कर्मकांड
मन लावें, राज मिलें बीरबानें ते ।
सुकवि'गुपाल' होत जग में बिख्यात जानें
जे मुन की बात लोग मोनें मुस्यानें ते ।

बेद मत मानै, दीयो करै दिन दानैं, ऐती
होति पूरी आनैं, या मिमास मत जानै ते ॥

स्त्री वाच

दोहा

कष्ट अमित करनै परत बिघन करत सब देव ।
मीमांसा मत साधनैं, परत भगति को भेव ॥

कवित्त

मुकति विराग ज्ञान ईश्वरै न जानैं, देव–
विग्रह न मानैं साध-सतैं न अराधे तैं ।
कर्म नष्ट भए पाछैं भोगत चतुरासी, जाय
नरक परत, बहु जीबन कैं बाधे तैं ।
सुकवि'गुपाल' लगे चूकत मैं पाप देव
करत बिघन पूरी पर तन नाधे तैं ।
सधे न समाधे, कष्ट करत अगाधें, दहे
दुपम ते दाधे, या मिमास मत साधे तैं ॥

राजनीति

पुरुष वाच

रिपु को जीति अजीत है, न्याय करै नृप नीत ।
राजनीति के पढ़े तैं पहत सदा निरभीत ॥

कवित्त

सील-सुप-सपति सकल सिद्धि होति, सधै
धरम करम सारैं काज निज मीत के ।

सुकवि'गुपाल' बड़े होत ज्याबसाली, पावै
समान में आदर, सहत हित प्रीति के ।
राजा, पातसाह, उमरावन को रावि, होइ
बड़ेन को, बड़ो न्याव करत अजीत के ।
रहे निरभीत, कोऊ सकै नहिं जीति, सब
छुटत अनीति, नीति पढ़ें राजनीति के ॥

रती वाच

सवैया

दिनराति सुजात बिचारहि में चलनो सु परें नृपनीतिहि के ।
सुनते मे सुहाइ नहीं नृपकों सब बैन लगे बिपरीतिहि के ।
सु'गुपाल' कवो छुटकारो मिलै न प्रबंधहि बांधत नीतिहि के ।
कबहो नहिं होइ अभीत रहैं यतें होत पढ़ें दुप नीतिहि के ॥

कोक सास्त्र

पुरुप वाच

रति-आसन, गुन दोप वय, जानें जंत्ररु मंत्र ।
कोकसास्त्र के पढ़ें ते, तिय सुप होत अनंत ॥

कवित्त

मोहनी के मंत्र बहु जानें जंत्र तंत्रन,
लुकांजन लगाइ बस करें तिय जाना कों ।
सुकवि'गुपाल' वाजीकरण अनेक आमें
ओपधि औ' आसन समुद्रक की गाथा कों ।
कांमं कें सथांनन ते काम कों जगाइ, रितुकाल
पहचानें, सुप मांनें, रति दाता कों ।
जान्यों करें नायकरु नायक को याता सदा
होइ सुप साता कोकसास्त्रन के ज्ञाता कों ।

इस्त्री वाच

भगति भाव सुभ करम नहि, नहीं राम को नाम।
कोकुकारिका बहुन को, है कामिन को काम॥

कवित्त

मार्यो जात हाल, मन्त्रजन्त्र न जपत, पर–
पतिनीन चाहै घन यामें घनो चढ़िये।
सुकवि'गुपाल' मातु भगिनी के भले बुरे–
लक्षन पिछानें तब पापन सौं बहिये।
बढ़त अघमं सुभ कर्म में न लगै मति
रोग बढ़ि जाय निश्चै नरकहि लहिये।
वेश्यन को गांमी, होइ जातु है हरामा, याते
हूं के कहूं कामी, कोकुकारिका न कहिये॥

पिंगल के

पुरुष वाच

जाने छंद-प्रबंध, होइ पदरचना को ज्ञान।
पिंगल सास्त्र पढं, करं काव्य कबी परमांन॥

कवित्त

पद को प्रमांन, छद-मगन को ज्ञान, लघु
दीरघ सुजानि, बहु गणति दुढ़ैया कौं।
अलट रु' सूधे आमें पोडस करम, दग्घ–
अक्षर पिछानि गणगणहु कढ़ैया कौं।
छंद औ' प्रबंधन के लक्षननिजानें, नई
काव्य करिवे को बुधि हियमें बढैया कौं।
सुकवि'गुपाल' होत गुपन पढैया बड़ो
होत हरवैया सास्त्र पिंगल पढ़ैया कौ॥

स्त्री वाच

दोहा

लिषत पढ़त षोड़स करम, कछू न आवै हाथ ।
पिंगल के पढ़ते सदां, सासन ही जिय जात ॥

कवित्त

आछी लगै न सुनावत मैं बड़ी देर लगै तहँ रूप मढ़े तैं ।
राय'गुवाल' गंभीर बड़ो मत आवनु है बड़ मूंड चढ़े तैं ।
नैकहू भूलि जो जाइ कहू, तौ परःश्रम जात वृथा सु कढ़े तैं ।
काव्य के भेद अनेक जित, कछु आवै न पिंगल छंद पढ़े तैं ॥

मंत्रसास्त्र

पुरुष वाच

तेज जौम बल सौं सदां, सबही कौ ठगि षाइ ।
मंत्रसास्त्री कौं सदां, सब कोऊ पूजत आइ ॥

कवित्त

देई, देव, थिर, चर, नर, बस रहै, काम–
कटत्त त्रलोकी के पदारथन जाने ते ।
सुकवि'गुपाल' जाकों डरप्यो करत सब
पूजा ठौर ठौर बैठै होइ निज थाने ते ।
बढ़ै तन तेज, नेम बरची करै लाल, चाहै
सोई करि सकै, सदो रहै बीर बाने ते ।
परम पुराने लोग ईश्वर ही जानैं, राजा
राउ सनमानैं मंत्र सास्त्रन के जाने तैं ॥

स्त्री वाच

दोहा

हिय अंतर डरप्यौ करत जपें जाय येकत्र ।
मंत्र सास्त्र के पढ़ें जब सिद्धि होत है मंत्र ।।

कवित्त

मन दृढ राखि, कष्ट करमों परत पत्रौं,
त्रया धमजात जो विधन नेंक कढ़ियें ।
सुकवि "गुपाल" मंत्र जत्रन जपतर में
अजायें जात जानि जो प्रियोग नेक पढ़िये
भलो बुरो करत में निंदत है लोग, हथ्यः
होति रहै हायन, कुजस जग मढ़िये ।
छोड़ि तिय मढ़ियें, बिदेसन में हढ़ियें, पै
भूलिकें कबौ न मत्रसास्त्र कहूँ पढ़ियें ।।

जोतिस सास्त्र

पुरुष वाच

जोतिस कों रुजिगार अबै करिहौं प्रिया प्रवीन ।
जाको सुप बरनन करूँ,[१] जो जग होत नवीन ।।

कवित्त

देव औ नरन बसीकरन करन, याते
गूढ़ की गसो को गाँठो काटत फँसी को है ।
जनम मरन दुख सुख की खबरि यामें
दीस्यो करै जैसे जैसे मूर्ति आरसी की है ।

---

१. है० के २. है० वौ ३. है० मरता

सुकवि "गुपाल" तीनि जन्म, तीनि लोक, तीनि
काल्न की कहै बात बिना दरसो की है।
पढ़े जोतिसी को, जोई जानें जोतिसी को, जैसी
जगें जोतिसी को, जग मांझ जोतिसी को है॥

स्त्री वाच

सोरठा

जोतिस जानें जोइ,[1] जग जान्यो जिनमें न कछु।
पढ़त बड़ो दुप होइ, कहत कठिन[2] याको मरम॥

कवित्त

गिनति समुहार, गृह लग्न निरधार, सुभ-
असुभ विचारत, जजार होत जीको हैं।
त्यागें घर नारि औ' बढावें नष-बार, जीत
हार में "गुपाल" मिश्र करेन[3] हँसी को है।
टारि के अरिष्ट, लेत याते है निकिष्ट काम,
सिष्टि वोच इष्ट सुभ दृष्टि बिन फीको है।
ज्ञान ध्यान सीको, ही को सी को होत ठीको नीको
याते बड़ो भीको यह[4] काम जोतिसी को है।

मिसुराई

पुरुस वाच

सदा काम सब को परत, जनम गमी अरु व्याह।
मिसुराई के करत में नित नव रहत उछाह॥‡

---

१. है० जोय २. है० कठन ३. है० करत ४. है० रजगार

‡है० में इन दोहे के स्थान पर निम्नलिखित सोरठा है:
"जनमत सादी मांह, सदा काम सबको परै।
नित नव रहत उमाह, मिसुराई के करत में।"

कवित्त

आपने पराअे भले बुरे दिन जान्यो करे.
सडसों मिटायो[1] करे सबही के डर कों।

गृहन लगाइ कें बताइकें बरस फल[2]
ज्योतन को पाय माल मारे नारी-नर कों।

सुकवि "गुपाल" नव गृहन के लेके दान
सादी ओ बधाइन में राजी रापें पुर कों।

गाम होत[3] सर, बडो होत हैं अुकर, याते
सब में सुघर यह काम हैं[4] मिसुरकों॥

स्त्री वाक्य

दोहा

मिसुराई के करत में, निस दिन होत हिरान।
भले बुरे दिन[5] देप ते, पचिमचि[6] जात पिरान॥

कवित्त

सोघत में साहो, एह लगन लगावत
बतावत हैं[7] झूंठा जो न काम होत जाई कों।

होंम के करावत में घूपत रहत नित
घेरा[8] बडो रह्यो करे ब्याह औ बधाई को॥

सुकवि "गुपाल" भले बुरे दिन पूछि संति-
मेंति में हिरान करवायो करें ताई को।

गृह को चढाई, पतिगृह की कमाई,
याते बडो दुखदाई यह काम[9] मिसुराई को॥

---

१. है० मिठाय देत २. है० नित ३ है० रहै ४. है० रुजगार है
५. है० यह ६. है० पूछत ७. है० हैं ८ है० घेरो ९. है० रुजगार

पांडेके

पूजा भयो करें व्याप्त पून्यो चौक चांदनी कौं,
सीधे रखौते दाम आमें पाटिन के माड़े कौं।
गुरुजी कहाय, बैठ अंम कीयो करें, घर
चहुल को राधे भरि सौंजन ते मांड़े कौं।
सुकवि'गुपाल' विद्या हस्तमल[1] रहें, कांम
हुकम में होइ सैया करें देपि चांड़े कौं।
सीधे होत बांडे हाथ जोरें लोग ठाडे, रहें
याते रुजिगार भलो चट्टन के पांडे कौ॥

स्त्री वाच्च

होजिवो करत सो सिपावन अज्ञानिन कौं
फूटिवो करत कांन वहत पहाड़े कौ।
पाइ होत बांड पात हाथिन सौं गांडे
वटसार बिगरति यामें अेक दिन छांड़े कै।
सुकवि'गुपालजू' पकाय पाको करे गुण
कोऊ नहि मांने गुरमार विद्या मांड़े को।
मारत मेंडांडे, चट्ट रातिदिन फाड़े, याते
पांड को सो धार रुजिगार यह पांडे को॥

रसायन

पुरुस वाच्च

जाके सम कोऊ साह नहि, कभी कहूँ नहि जाइ।
होति रसायनि दाहिनी, रहत लच्छिमी ताहि॥

---

1. छन्द की आवश्यकता के अनुसार हस्तामलक के स्थान पर इस रूप का प्रयोग है।

कवित्त

टहल में जाकें लोग लगेई रहत सदा,
कहूं करामातों मारी बाढतु है मरमें।
सुकवि'गुपाल' नित जेतो पर्च करें, तेतो
आवै अनायास, कमी रहै नहि घर मैं।
भलो मयो करत, हजारन गरीबन को,
घन दै निहाल करै काहू ते न सरमैं।
घरमें बढ़त जाको घरमें अपार हाथ
रहति रसाइनी रसायनी के कर मैं।।

स्त्री वाच

दोहा

बूटी ढूंढत ही सदा, निसदिन जाको जाइ।
रसायनिन को अेक ठां पांव नहीं ठहराय।।

कवित्त

जानीं जाइ जोपै तोरे घेरें रहें लोग घने,
घेरा परि जाय राजु राजन के धाम है।
परच न करै क्बो, अग जो लगावैं फिरि
कबहीं न होति व्यर्थ जात श्रम याम हैं।
करे ते टहल, बड़ी सिद्ध: की कृपा ते मिलै,
जाको चैयं बूंटा घनो महनति दाम है।
फिरै आठो जाम, ठहरं न एक गांन, यह
याही ते निकाम सो रसायनी को काम है।।

पैधके[१]

पुरुष वाच

तजि जोतिस को काम, वनों[१] वंद[२] वंदक करों।
होइ देस में नांम, ज्यों सुप सरस सदा रहैं॥

कवित्त

सायन बनाइ के रसायन कमामें[४] नाम,
यामें[५] गाम-गाम कोंम परें जने जने को।
रहैं रुष्ट पुष्ट देह, नेह निरवाहैं सब,
जीव दांन देकें जस लेत नव घनें को।
होइ[६] उपकार, जुर्यो रहै दरबार द्वार,
ओपधि के सारते सँमारें काज अनेकों।
कहत 'गुपाल' होत हाल ही निहाल[७] याते
सब ही में भलो रुजिगार वैदपने को॥

स्त्री वाच

दोहा

बड़ी बड़ाई वैद की, बरनि बताई बाल।
बालम बहुरि सुनों बहुत बुरवाई विख्यात॥

कवित्त

मरेन कों मारें बुरी सबको विचारें पर-
नारी हाथ डारें, नित रहै यामें मंद को।
सुप सों न सोवें, पर दुष्यन कों रोवें, इक
पलहो में पोवें दिन, करें कांम कंद को।

१. है० वैदक को २. है० बनू ३. है० वैद ४. है० कमावै
५. है० पावै ६. है० होत ७. है० यामे

हत्या पर हेत धरें,[1] करे रेत-पेन पाछें
औषधि को देत बिद[2] लेत पलै[3] सेद कों।
कहत "गुपाल" कवि मेरे जान में तो याते
सबही ते बुरों रुजिगार यह बैद को ॥

पंडित

पुरुष वाच

वैदक[4] पंडित करि बनो, पण्डित बाचि पुराण।
मण्डित करो समान कों, जग कहाय गुण मान ॥

कवित्त

रहै महि मण्डित, अखण्डित प्रताप काम,
क्रोध मद खण्डित कै, मेटै दुचिताई को।
ज्ञान कों द्रढावे, औ' प्रतिष्टित[5] कहावै, सिर
सब कों नवावै, कहै हरि चरचाई को।
सुकवि "गुपाल" व्यास गादि पर बैठि भलो
आपनों परायो करे करिके कमाई को।
गुरुमें द्रढाई जाते सभा दबि जाई याते
बडो सुपदाई इह काम[6] पंडिताई को ॥

स्त्री वाच

दोहा

पहले पढत पुरान के पचिपचि जात पिरान।
पंडित के दुप सुनत में अकति होत हैरान ॥

---

१. है० करे धरे २ है० वदि ३ है० पेले ४ है० जातिस
५ है० पतिपुत ६ है० रुजगार

कवित्त

सुलप अहार, होत वार पर द्वार, होत
छार घरवार, होत देसन कमाई कों।
त्यागनी परति तिय, मांगनी परति भीष,
मूरिष[1] कों सीष देत पावें कछु याई कों।
कहत "गुपाल" बड़ो सोपत कठिन काम
राजन के धाम दान जीते मिलै जाई कों।
पढ़त सदाई, जाके जगम विहाई, याते–
बड़ो दुषदाई यह[2] काम पंडिताई को ॥

बंदी भाट

पुरुष वाच

[3]सदा राव पदवी मिलत, दबत राव उमराय।
चारि वरन आश्रम सकल,[3] नवत सकल जग जाय ॥

कवित्त

पोल्यो करें बंस, वाक वांनी मुष बोल्यो करें,
पोषो[4] करें सदा राव राजन के रोग कों।
'सभा जस[5] लहे, जाइ होइ ताइ तैसो कहें,
टेरी के कहामें पुत्र, भोग्यो करें भोग कों।
[6]सुकवि "गुपाल" चार्यो पूंट में विरति, और[7]
अंड ब्रहम मंड में प्रचंडन[10] के सोग कों।
[11]कविता प्रयोग करें जोगि कों अजोग याते
सबही में भलो यह काम भाट लोग को ॥

---

१. है० मूरष २. है० रुजगार ३. है० नही है ४. मु० सदा
५. है० तोल्यो ६ है० मे तीसरी है ७. है० काहूँ ते न डरें जैसो
८ है० मे यह दूसरी पंक्ति है ९. है० जाकी १०. मु० अवंडन
११ है० में : "साध्यो करें जोग करें जोग को अजोग याते
सबही मे भलो रुजगार भाट लोग को।"

इस्त्री वाच

दोहा

बरकति होइ न नैकहू, देइ सु थोरो होइ।
याही ते भट लोग कौं, पोटो उद्यम जोइ ॥[1]

कवित्त

[2]बार न लगति भली बुरी के कहत जाइ
सरम न आवै माँगो पहरत पाट को।
सुकवि'गुपाल' न्यारी सबही ते चाल चले,
डर्यो न रहत कछु राम याके बाट को।
रिस भये अत, प्रान हत न लगत बार,
बोलत अनंत झूंठ काहू को न डाट को।
पाय नहीं काट, ढूंढै[3] लेवे ही की याट, याते
सब में निराट रुजिगार बुरो भाट को ॥

मागध जगा

पुरुष वाच

सेकरन आदि की मिलाय देत विधि जाके
लिपी रहै सब चली जाति वृत्ति जगा को।
वंस कौं बपानें जिनें माँगद ही जानें,
आपनोई करि मानें कबौं पावत न दगा कौं।
सुकवि'गुपाल' भल भले मिलें माल मिज–
मांनी होति भलें जैसी मिलति न सगा कौं।
दे कें जगा-पगा आय पूजें सब पगा मान
होत जगा-जगा, जिजमानन में जगा को ॥

---

१. हे० मे यह दोहा नहीं है। २ हे० गायित है। ३ हे० टूटै

इस्त्री वाच

पोथ्या गांठि बांधि पोथ्या साथ्यां को मिलामें विधि;
तव कछु पामें वहि तोरे नित पगा कों ।
गांम-नांम-ठांम न संभारें रहे साठो जांम
मानें कोई जब तब लिप्यो मिलै लगा कौ।
सुकवि'गुपाल' घर बैठे पात दगा कवो,
सगा कौन थांम यह कांम पिछलगा कौं ।
जाय सब जगा, फिरयो करें जगा-जगा, तब
मिलै किहु जगा जिजमांनहि के जगा कौं ।।

चारन

पुरुष वाच

कोसन लिवामैंन कों राजु राना जात,
पालिकीन में चढ़ामें तिनें राना सिरपांउ दे ।
पढ़ि गीत कवित, करोरन को लेत मौज,
मांमले करत बड़े, रापत पराय दे ।
झूमें हय बारन, मुदवारन हजारन ही,
मीर संग रापें चाहें ताकी बात हाय दे ।
ताजी-मनि पाइ, देत मूंछन कौं ताय, रज-
बारन सिवाय रहे चारन के कायदे ।।

स्त्री वाच

गीतन कों पढ़त, हड़त रहें देसन में,
छुरे बोलि लेत प्राण देत नैंक बात में ।
रागड़े से हैंके, बड़े पहरि जे करायो, करें
जंग कौं हत्यार, गहि गहि निज हाथ में ।

समा मे गुपाल काहू देवे न सिहात सबही
सो अकड़ात जे कमात धनी घात में।
मंद मास खात किया बने नही गात ऐती
रहै अुतपात सदा नारन की जाति मे

कविताई के

पुरुष वाच

कविता के रुजिगार कौं हम करि हैं चित लाय।
†ताको सुप वरनन करत, कवि'गुपाल' सुप पाय ॥

कवित्त

जोरे नृप कर डरपति[1] रहै जाति सब
सकै नाहि कहूँ तर्क औरन पराई को ।
कविता[2] करत न भरत डाँड राजन कौं
पंडित समाजन में पावत बडाई कौं ।
डूबे रहै रस बस, करे सब ही कौं चित,
जग में अुकर करि करत कमाई कौं।
फैलति लबाई यौं गुपाल की सबाई याते
बडो सुपदाई[3] यह काम कविताई को

स्त्री वाच

दोहा

कविता के रुजिगार कौं, कबहुँ न कीजे पीय ।
यतनें औगुण बसत हैं, समझि लीजिये जीय ॥

---

† 'ताको सुप सुनि लीजियें प्यारी श्रवन लगाय ॥' भी पाठभेद मिलता है।
१. है० डरपत   २. है० पेतीन   ३. है० सबहीं ते भलो रुजगार

कवित्त

नर जस गंवो, परदेसन को छैवो,
अभिमानिन ढे जैवो, पौरि परन पराई कों।
रस अुरसैवो, गप गप ते डरैवो, बहु
कवित बनैवो, यह घर है सुटाई को।
बुद्धि: को बढ़ैवो, परै अक्षर[1] चुरैवो. राज–
सभा जस लैवो, तब पैवो कछु पाई को।
कहत 'गुपाल कवि' रायन रिझैवो, याते
सबही में कठिन कमैवो कबिताई को ॥

कुकवि

पुरुष वाच

कविता में समझै नहीं रीझै सब सों बाद।
है कें कुकबि सु सुकवि बनि, लेत सभा में स्वाद ॥

कवित्त

पाठ सो न जानि, अक्षरार्थ को न ज्ञान, कविता
सों पहचानि न, घमंड में सबै फिरै।
पिंगल प्रमानें, छंद भंग न पिछानें, जानें–
और को कवित्त तोरि जोरि कें मनै फिरै।
भनत "गुपाल" गुन दूषन बषानें कौन,
जैसे दोरि-दोरि पोरि-पोरि में घनै फिरै।
और को न मानें, आप झूंठी बात ठानें, अब
जैसे कलिकाल में कवीन्दर बने फिरै ॥

---

१. एक है कें मन देबो

स्त्री वाच

दोहा

कठिन कल्पनां करत नित, जपत कष्ट को नाम
याते कठिन 'गुपाल कवि' कविताई को काम ।।

कवित्त

कहा भयो कंठ करि लीने जो कवित्त, चित्त
अर्थ में न दीयो, जिनि पाई कहा धूरि है।
कहा भयो साँठे, कसी गाँठे तुक गाँठि लीनो,
साँठो सों लगाइ करि आपरन पूरि है।
कहा भयो ग्रंथ बिन समझें अनेक बांचे
पायो नाहिं मत कविरायन को भूरि है।
सुगम न जानो तुम सांची करि मांनो यह
कहत 'गुपाल' कविता को घर दूरि है।।

नई काव्य

पुरुस वाच

जग में नांव चलाइहो, निज कुल करि कछु काव्य।
कवि कोविद राजी करहु, धरि नवीन कछु भाव।।

कवित्त

नई नई जगति जुगति, अनुप्रास बहु-
बरण मिलाप में रसीली रस ताको हैं।
नांनां धुनि, व्यंगि अर्थ, आपर अनूप जाके,
सुनत ही होइ कबिरायन कैं झाको है।
दूषन रहत, नद भूषन सहति, सब-
ही को मन गहत, कहत जब जाको है।

सुघर सभा कौ, चरचा कौ, मत जाकौ, कवि
कहत 'गुपाल' कविताई नांम याकौ है ।।

स्त्री वाच

दोहा

जौ प्रबंध आदर्यौ नहिं, सुघर सभा के बीच ।
कविता करि ता कविहि नें वृथा कर्यौ श्रम हीचि ।।[1]

कवित्त

कवि कौ न नेंम, प्रेम जामें नर नारि कौ न
कोऊ कग-मार एक गुण कौ गहा भयौ ।
पंडित समाज आदरी न कविराज महा-
राजन में जाइकें न जस कौ लहा भयौ ।
हरि कौ न नांम, आई काहू के न काम, व्यां
चकि गांम गांम ते कुनामहि महा भयौ ।
कहत 'गुपाल' पढ़ि भारत जे गाल कवि
ऐसी कविताई के बनाए ते कहा भयौ ।।

पुरुस वाच

काव्यगुन

भगति मुकति पावै बड़ौ, नांम जगत में होइ ।
कविराजन में मांन होइ, काव्य पढ़ै जो कोइ ।।

---

१. इसमें तुलसी की समीक्षा-दृष्टि की प्रतिध्वनि है—
जे प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं ।
सो श्रम बादि बाल कवि करहीं ।।

कवित्त

गणागण छंद गुण भूषन औ' दूषन के
जाने रस भेद-धुनि ब्यंगि लक्षनाई के।
नायक'रु नायक सुरति सुतात[१] हावभाव
चेष्टा कर्म दूती सषी औ' सखाई के।
समझै 'गुपाल' रितु, काल, दरसन-मत
मान, मान-मोचन औ' विरह दसाई के।
बूझै सब आई, परै दस में अवाई, वुधि
बढ़ति सवाई, सदा पढ़ै कविताई के॥

धन कीरति औ' अति आनँद देति, दुरत्यय दुःख्य दलावति है।
कवि पंडित राज समाजन में नृप ओगहि जो गुण गावति है।
तिय ज्यौं उपदेस करै सत्यहि के औ कवीश्वर भू में कहावति है।
रसिकैं करिकैं 'श्रीगुपालजू' को कविता हरि ओर लगावति है॥[२]

स्त्री वाच

कवित्त

करने परत ग्रंथ सगृह अनेक कठ,
रापने परत हैं कवित्त सब काई के।
राज-सभा बीच बाद रपनौं परत, पूरे
करणे परत जेते प्रश्न चरचाई के।
सुकवि 'गुपाल' निज कृतकरि काव्य अर्थ
जानने परत काव्य आपनीं पराई कि।
चहै बढ़िढताई, बुद्धि बढ़त सवाई, तब
होति है कमाई, कछू पढ़ै कविताई के॥

---

१ सम्भवतः यह सुरतात है।

२ इसमें मम्मट के काव्य प्रयोजन की झलक है- 'काव्य यशसे, अर्थकृते व्यवहार विदे कान्ता सम्मित उपदेशयुजे।' साथ ही आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर भी संकेत है।

पुरुष वाच

वादी कवि

एक बनें न कहूं मुप सों गुनी औगुनी डोलें मजेज के मारे।
जो गुनी आय के कोई मिले तिन सों यदि वाद मचावत भारे।
सांचो न मानत झूंठिये ठानत लंपटी ए करतार सँमारे।
ऐसेन सों तो 'गुपाल' कहे हम जीतहु हारे औ' हारेहु हारे॥

स्त्री वाच

जानें न कवित्त चरचा को रीति-भांति, सांचो—
बात के कहत ही में ह्वाल पीजियतु है।
देपत ही जरे जात गुनिन के गुण, सुनि—
तिन के बचन ही सों हियो हीजियतु है।
आप कहि जानें, नही और को कौं मांने, नहीं
चोज कौं पिछांनें नहीं हियो भीजियतु है
बैठि कें सभा के बीच, सुकवि 'गुपाल' कवो
भूलिकें न अंसन सों बाद कीजियतु है॥

पुरुष वाच

लिखई [1]

पुरुष वाच

कविता के रुजिगार ते, वरज्यो तेनें मोहि।
करहुं लिपाई तास मुष वरनि सुनाऊँ तोहि॥

---

[1] ह० लिपाई को

कवित्त

हरि गुण गांन, पहचानि गुणमांनन सौं,
सुकन कौं ग्रांन बुद्धि परे अधिकाई मैं।
जंत्रन मैं, मंत्रन मैं, तंत्रन मैं, गति होति
रहत सुतंत्र हूं इकत्त मनभाई मैं।
जांनत 'गुवाल' बहु ग्रंथन को मत घर–
बैठे रुजिगार हांनि जोखो नहिं याई मैं।
स्वारथ की सिद्धि, परमारथ की रद्धि
अनेकारथ की सिद्धि, होति लिपत लिपाई मैं॥

रती वाच

दोहा

लेषक के सुष तुम सुनें, दुष्य सुनें नहिं कांन।
नैन बैन कटि ग्रीव कर पुरसारथ की हांनि॥

कवित्त

न रि रहि जाति, नहिं बात कहि जाति, बहु
देह दहि जाति, जोर घटै करगाई कौं[१]।
भोजन पचै ना, पाथ आदिमो रचै ना, कछु
नफा हू बचै ना, ऐसी करत कमाई कौ।
नैन जल भरें, औ' नितंब दूषि परें, जब–
दिन भरि अरे, तब पामें कछु याई कौ।
कौम पर्यो जाई, सोई जानतु है दायी, यह[२]
बहुत 'गुवाल' धांम कठिन लिपाई कौ॥

---

१ है० कौ २ है० इह

रासधारी

पुरुष वाच

रासधारि ह्वै करहुंगो[3], जोरि मंडली रास।
गाय बजाय रिझाइ कें, धन लाऊं तो पास ॥

कवित्त

सोंहन सरूप, बड़ो लोयन रहत नोन,
भोंहन नचाइ, मन मोंहैं नर नारी कों।
स्वामीजू कहामें, औ' हजारन के लामें माल
हरि गुण गामें करें सुकरम भारी को।
सुकवि 'गुपाल' मिलै' पंवे कों नगद माल
लाल बनि सदा मजा लैंय[4] सब ठारी को।
जामें बात धारी, देह रहति सुधारी, याते
बडो सुखकारी, यह कांम[5] रासधारी को ॥

स्त्री वाच

कवित्त

*जाति घरैं नांम, नाम होत बदनांम, करें
घर के हरज कांम, रहैं नांहि नारी को।

---

३ है० करहैंगो ४ है० लैत ५ है० रुजगार

*है० प्रति में इस कवित्त से पूर्व यह दोहा है:

"स्वामी बनि करि मंडली, भूलि करो मति रास।
देस छोड़ि कैं होइगो, परदेसन मे वास ॥"

जेती है नफहि[1] ताहि पात हैं समाजी लोग
सेवनो परत परदेस परद्वारी को ।
गावत, बजावत[2], नचावत[3], में लागै लाज,
द्रष्टि परि जाय जब कोऊ हितू यारी को ।
कहत 'गुपाल' होत पछिम दुवारी, याते
बडो दुष-कारी यह काम[4] रासधारी को ।

गवैया

पुरुष वाच

कर न नदीनी मडली, होइ गवैया गाइ[5] ।
तानन को धन लाइहैं[6], सुजन समाज रिझाइ[7] ॥

कवित्त

हरि-गुण गबो प्रिया-प्रीतम रिझैबो, नित
भक्ति उपजैबो, नैवो हिय उमगैया को ।
सँकरात नर-नारी जोवन रहत मुष
देत हैं बडाई अरु लेत हैं बलैया कों ।
है कै गुनमान मान पावै गुणमानन में
कानन में तान गान सुष तरसैया कों ।
कहत 'गुपाल' भलो आपनो पशायो यामैं
यातें यह भलो रुजिगार है[8] गवैया को ॥†

---

१ है० नफा होइ ताय   २ है० बतावन   ३ है० नचावत   ४ है० रुज-गार   ५ है० गाय   ६ है० लायहैं   ७ है० रिझाय   ८ है० है

† इसमे दूसरी पक्ति है० की प्रति मे तीसरी पक्ति है और इसमें तीसरी पक्ति है० प्रति मे दूसरी ।

स्त्री वाक्य

दोहा

गवै के रुजिगार कों समझि कीजिये कंत।
सुनिये कान लगाय कें, याके, दुख्य अनंत ॥

कवित्त

आगें बैठि गावै औ' भमैया लौं बतावै भाव,
तब कछु पावै यौं रिझावत रिझैया कौं।
स्वाद कौन जानें, बड़ी साधना न ठानें, कंठ–
रहै न ठिकानें, पाटें भोजन पचैया कौ।
ढीठताई धारि कें, पराए द्वार चार होत
ठट्ठा करवावैं, ताल चूकत चवैया को।
कहत 'गुपाल' दैया दैया करि आवै, याते
सबमें कठिन रुजिगार है, गवैया को ॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्य-सास्त्र प्रबंध वर्णनं नाम

दसमोविलास ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ विलास

(भिक्षा प्रबंध)

पुरुष वाच

दोहा

गैवे के रुजिगार ते, बरज्यो तैंने मोइ ।
भिक्षुक के रुजिगार के गुण्य : सुनाऊं तोइ ॥ *

कवित्त

आवै नांहि चोट, गढ़कोट ओट तकै न,
निलाले पात रोट, पोट करत न प्यारी को ।
चहियै जमान, सब देस जिजमान, भलो–
पावै पान-पाँन जोव्यो ज्याँन न अगारी को ।
घर घर यार, चाहै हाथ न हथ्यार, इवाल
करत हो त्यार, प्यार होत नर नारी को ।
कहत 'गुपाल कवि' मेरे जॉन में तो याते
सब ही तें भलो रुजिगार है भिषारी को[1] ॥

---

* है० प्रति में यह दोहा है–
स्यानप के रुजगार ते बरज्यो तैंनें मोंम ।
भिक्षुक को गुण सुनिय नित भीष माँगिहैं गाँम ।

1 है० में यह पंक्ति इस प्रकार है.
"कहत गुपाल आबुबानि के जमाने बीच
सब ही ते भलो रुजगार है भिषारी को ।"

रती वाच

सोरठा

काके द्वारे जाय, कहें कि हमकों दीजियै।
मरि जैये विसवाय, जीवत भीष न मांगियै॥

कवित्त

राषत पराई आस, चित में उदास रहै,
सतत विनास औ' निवास दुष भारी कौं।
प्रीति हरकति, बरकति नहिं होति, आजू–
आदर न रहै निरलज्ज रहै गारी कौं।
लैबी होत इहां, आंनसी में उहां दैनो दिन
रैनौई पराव, चित चैनौ न अगारी कौं।
डोलै द्वार द्वारी, यामें यह बड़ी ख्वारी, याते-
कहत 'गुपाल' कांम कछु न भिषारी को॥

प्रोहिताई

पुरुष वाच

पुजवावै लै पांय, पतितन कों पावन करै।
पल पल प्रीति वढ़ाय, प्रिया प्रोहिताई करत।

कवित्त

जाके हाथ है कें सब होत काम कारज को,
सदों पुन्य दांन सदों गमी औ वधाई कौं।
सवते पहल, पाइ[१] पूजियत जाके आइ,[२]
ताके दियै बिन धर्म्म[३] होत नहिं काई कौं।
'सुकवि गुपाल' जिजमांनन के मांन भलौ
पांन पांन दैके[४] सनमान मिलैं ताई कौं।

---

१ है० पाय २ है० आय ३ है० धर्म ४ है० दैके

मानें मनिताई, होइ हिय में हिताई, याते-
बड़ो सुषदाई यह काम प्रोहिताई को ॥

स्त्री वाच

सोरठा

प्रोहित ह्वै नाहि, जो जिजमान कुबेर सो।
निंद्य कहैं सब ताय[५], गति न लहै परलोक में ॥

कवित्त

रहतो परत दुष-सुष जिजमान के में,
दान के बपत[६] लोग देत बुरवाई को।

जाको धान पाय, ताके पापन को भागी होइ,
बद औ' पुरान, यातें निंद्य कहैं ताई को।

कहत 'गुपाल कवि' भले बुरे कर्मन में
सबते पहल ग्रास लैनों परै जाई को।

जाइ[७] कै निताई, यों कमाइयै किनाई, क्यों न,
ठहरत काई कै न पैसा प्रोहिताई को ॥

गहुनावा

पुरुस वाच

होइ कुटम प्रतिपाल, माल मिलै यामें[१] घनों।
याते 'सुकवि गुपाल' गहुनाई करिहै सबै + ॥

---

५ है० याहि
६ है० बपत वृंदावन वाली प्रति मे लिपिक की भूल से पत लिखा है।
७ है० जाय
१ है० जामें
+ है० प्रति मे पंक्तियों का विपर्यय है।

कवित्त

आय आय सब, ब्रजबासी जाँनि पूजैं पाँय,
बात सही होति है सदा कौं प्रोहिताई में।

तीरथन न्हात, कथा करत विख्यात, भले
भोजनन खात, जे न मिलें पहुनाई में।

'सुकवि गुपाल'[२] मिलिजात माल, हाल यामें,
भागि के जगे में तौ निहाल होत याई में।

करें मन-भाई, कछु राई न दुहाई, याते
सब ते सवाइ है कमाई गहुनाई में[३]।'

स्त्री वाच

दोहा

कवि गुपाल बहु कठिनि है गहुनाई कौ काँम।
घूमें देस परदेस में लेइ[४] न नैंक अराम॥

कवित्त

सेयौ करें राह, औ' गनें न भूप प्याह जब[५]
आवें कछु आह, न गुनाह कछु याई[६] में।

डोल रहे मारौ, कम तौल रहे न्यारौ, परदेसन
में प्यारौ, बँधौ जीवका न जुपाई में।

कहत 'गुपाल' जब मिलें कछु[७] माल, बाँधें
बातन के झाल, जब[८] लावें दाम घाई में।

छोड़ि कें लुगाई दहुताई राति जाई,
होति बड़ी कठिनाई ते कमाई गहुनाई में॥

---

२ हे० कहत गुपाल ३ हे० टड़ो नुपदाई रुजगार गहुनाई कौ।
४ हे० लहे ५ हे० तब ६ हे० याही ७ हे० जत्र ८ हे० तब

चौबेके

पुरुस वाच

श्री बराह अवतार नृप महमाँ गावत आप।
याते माथुर लोग को जग में बडो प्रताप॥

कवित्त

रावत है सोप बडो, पाइबे पहरिबे को
बैठक रहनि सदा जमुना समीप की।
'सुकविगुपाल' जे कहत में न चूकें कहूँ
अकति न यात बडी रावत है टोर की।
गावे श्री वराह, द्विजराजन के सिरमोर
जिनके अगारी विद्या चलै न हरीफ की।
सेवत महीप सात पड नव दीप याते
जाहर जहूर जोति माथुर महीप की।

स्त्री वाच

दोहा

औरन की पंडो कहत, अपु बातन को पात।
याते सब ही म बुरी, यह चौबिन की जाति॥

कवित्त

जाको धनि पाय सदा साई को निगोयो करें,
पोटी के कड्या जे मुगाय रहें रोटं को।
पूदत रहत सदा देत परदेस बने
रहैं मटपरा जिजमान पे रिझैबे को।

'सुकविगुपाल' और ब्राह्मनें न देषि सकै
बड़े धुरबोल, सो रगाये रहैं देवे कौं।
सुख सौ न सोवैं, परद्वारे दिन षोवैं, याते
सबही में बुरो रुजिगार यह चौबे कौ ॥

पुन

अेक साहो सोधि के, असूझ करैं ब्याह सब,
बदले बहनि बेटी के ते ब्याहे जात हैं।
देसी परदेसिन कौं, घर में घुसाइ कें—
रिझाइ लेइ सबै नहिं नेंक सरमात हैं।
'सुकवि गुपाल' घर टहल करत आप
चौबिन की सदा सेर राष्यौ करैं बात हैं।
पति: गृह पात सबै देषे जारे जात, याते
सब में कुजाति यह चौबिन की जाति हैं ॥

घटमंगा

पुरुष वाक्य

दछिना कौं मांग्यौ करें जपि जमुना को नाम।
याते यह सब में भलौ, घटमंगा को काम ॥

कवित्त

(जे) सदाही रहें तट तीरथ के सुभ कर्म सुनें सतसंगिन कौं।
नित न्हात औ धोवत देख्यौ करें, सुमर्दा तरुनीन के अंगन कौं।
परदेसी' ए देसी ते लें दछिना, हरि नाम जपें लें उमंगन कौं।
यह 'राय गुपालजू' याते सदा रुजिगार भलो घटमंगन कौं ॥

स्त्री वाच

सोरठा

यक कौडी कै काज, नगा है दगा करै ।
याते बडो निलाज, काज सु घटमगान को ॥

कवित्त

मांगन में झोली ठोली डार्यो करै सबही पै,
अक-अक कौडी पर झर्यो करै दगा कों ।
मरनों परत मोर ही ते जाय लै रथ पै,
कान्धि पै रहै डर बीछी औ' भुजगा को ।
'सुकवि गुपाल' घान मझते जबर फकी—
मूत नहिं होत लेत जमुना औ' गगा कौं ।
बने रहै नगा, राखि जाति सौं अरगा, याते
बडो पति भगा यह काम घटमगा को ॥

पुसामदी

पुरुष वाच

छोडि सबै रुजिगार, करहु खुसामदि आइ कै[1] ।
बस करि कै नर नारि धन संचित करिहौं बहुत ॥

कवित्त

बढै हुरमति अति आवति है[2] मति, लाल
बन्यो रहै नितप्रति खूब पाओ पोओ ते ।
दुख-सुख परै, दब औदर में सरै काम,
रापत हमेश हित हाकिम[3] हौओ ते ।

---

१ हैं० में २ हैं० ह ३ हैं० हुरमत

'सुकविगुपाल'[४] माल मिलै पै निहाल होत,
भले परिजात और द्रुमन के मीले ते।
या मदि में आमदि, सुदामदि को होति, पुस-
आमदि की रहति पुसामदि के कीये ते ॥

स्त्री वाच

सोरठा

या आमदि के काज करहु पुसामदि जाइ[५] कै।
हियें मानि कैं लाज[७] चुप[८] करि घर में बैठियैं ॥

कवित्त

साँचरु झूठ को हाँ कहनो औ' नटाँ कहनो महुँ-सोमिली बातें।
पापरु[९] पुन्य में संग रहै सदा[१०] रापत राजी सु आपनी घातें।
'रायगुपालजू' देय कछू जब, डोलत पाछे लग्यो दिन रातें।
याही ते या जग माँझ बुरो रुजिगार पुसामदो को यह यातें।

रोजीने के

पुरुष वाच

रोजीना बधवायबो गुन महनति ते होत।
याके छूटते सदाँ, बहु दुष होत उदोत।
लालो रहै न अेकहू अंस करत दिन जात।
याही ते जग में बड़ी रोजीना की बात।

कवित्त

मिलिबो करतु है कपूत औ'सपूतन दों
ब्याज मारो जैसें बद्यो दीसे दिन-राति है।

---

४ है० हाल ही गुपाल ५ है० फिरते ६ है० कीन को ७ है० लजि।
८ है० चुप ९ है० दुष्यरु सुष्य १० है० नित

'सुकविगुपालजू' कमानों न परत, कछु[१]
जानों न परत सो निलाले रहें गात हैं।
संपति कों पावे, गुन कदरि बढावें, ऐसे—
बड़ी करआवें, फूले गात न समात हैं।
दांम रहें हाथ, पात रहे पेंड़ो सात याते
जग में विख्यात रोजाना की बड़ी बात हैं।

स्त्री वाच

कवित्त

लगत सबेर, जानों परें बेर बेर, कछु
बरकति होति पात पियत न पाके मे।
'सुकवि गुपालजू' दिमान ओं' मुस्सदिन[२] के
देनी परे घूंस, काम हाथ-होत जाके में।
होत है हराम, और है सकै न कांम, जब
पटत न दांम, दिन जायो करें फाके में।
कांम रोजीना के, दुख देखि रोजीना के, आय—
जाय रोजीना के, रुजिगार रोजीना के में॥

इतिश्री दंपतिबाक्य विलास नाम काव्य मिथा प्रवंध
वर्णन नाम एकादसो अध्याय। ॥ ११ ॥

---

१ सम्भवत: यह 'कहूँ' है।

२ लेखक ने मूल में 'द' के द्वित्व के स्थान पर 'स' का द्वित्व कर दिया है। इस प्रकार पाठ 'मुत्सद्दिन' होना चाहिए।

द्वादश विलास

(मंदिर–प्रबंध)

अथ गुसाईंन सुख

पुरुष वाच

दोहा

धन देके पधरामनो करत राउ उमराउ।
घर बैठे पूजत जगत, गोस्वामिन के पाँउ।

कवित्त

ईश्वर के रूप, भूप सेवत अनेक जिनें,
राषत न उर में भरोसो कहूँ काई को।
आसन कौं डारि करि जाप माल बैठे जब
नवत भलोकौ रूप देवत ही ताई को।
'सुकवि गुपाल' व्रज रज कौ रहत ध्यान,
जामें चली भेंट घर बैठे सदा ताई कौं
पद्वत सवाई, भोग भोगत सदाई, याते
बड़ो सुषदाई यह काम है गुसाई को॥

स्त्री वाच

कवित्त

आँमदनि पाँच, पै पचास को षरच राषें,
ब्याज झगरे में धनजात सब जाई को।
'सुकविगुपालजू' डिफाँन बड़ो राषे सदा
देस परदेसिन की पात है कमाई को।

करनी परति तन काष्टा अनेक, कंठी—
दुपटा, प्रसाद, दैनों परे सब काई कौं।
होवहु गुसांई॰ मरे रहत गुसांई याते
बड़ीई गुसाई को य करम गुसाई को॥

भट्ट

पुरुष वाच

दोहा

भोर-सांझ॰ कीर्तन कथा, सतसंगति दिनराति।
पूजा पुन्यरु पाट में भट्टन को दिन जात॥

कवित्त

बाँचत पुराण, गुन मान सनमान, भलो[1]
पात पान-पान-दान-मान मिलै[2] ता को हैं।
करत 'गुपाल' बरषोत्सव समाज, रास,
प्रभु को लहाद, सुप देत सब ही को हैं।
अनगण धन, वातसल्य में मगन मन,
करत पवित्र जन जनन के जी कौं हैं।
व्रज भाव टीको, सर्व अर्पं हरि ही कौं, याते
सबही में ठीको कर्म भट्टन को नीको है॥

भट्ट

स्त्रीवाच

हैं सम्पति, कृष्णारपन तन मन धन करि देत।
तबै भट्ट है कै कछू, या जग में जस लेत।

---

१ मु॰ आछो। २ मु॰ होत दान मान ती को हैं।

कवित्त

माल पात जट्ट, दिन जात छट्ट पट्टहि में,
(पटाही में) पटरी रहत बड़ी नीरन की ठट्ठ को।
'सुकविगुपालजू' कमात जेते दाम, तेई[1]
करिके इकदठ जात बनिया[2] की हदठ को।
अर्पनी परति[3] है समर्पनी देह, गट्ट-
पट्ट है सकै न घर रहै पट्टपट्ट को।
लागे रहै पट्ट, झांकी[4] होति झट्ट पट्ट, याते-
सब में निपट्ट कर्म[5] कठिन है भट्ट को॥

अधिकारी

पुरुष वाच

संत महंत दबे रहैं, जगत-जगत में जोति।
हरि मंदिर में जाइ जब, मुखिया मुखिया होत॥

कवित्त

आमदि औ'खरच हजारन को रहैं हाथ,
मार्यो करैं माल, बात कहिकैं हुस्यारी की।
'सुकवि गुपाल' कोई मामले रहत हाथ,
पावै मुफ्तयारी कैऊ बात की तयारी की।
दुपटा प्रसाद, रोझ बूझ लेन देन, ताके
हाथन है आयो करै भेंट नर नारी को।

---

१ मु० सोई २ मु० बनिक
३ मु० करत समर्पण अर्पन के देह गट्ट पट्ट पर ह्वै सकै न घर पट्ट पट्ट को।
४ मु० पूजा ५ मु० काम

दबत पुजारी, रुप रापत भँडारी, होति
मंदिर में भारी मुपत्यारो अधिकारी को ॥

दोहा

स्त्री वाच

जाके दाम घटैं न ते दया करैं घरकार।
अधिकारिन की रातिदिन, माँटी रहति पुआर ॥

कवित्त

रापनी परति पर बस्ती सब बालन की
आमदि परच जमां सौज की सँभारी को।
'सुकवि गुपाल' रहैं झगरे अनेक, कर्यो
परै सनमान नित नअे नरबारो को।
सेवक-सती की यादि रापनी परति कंठी
दुपटा, प्रसाद, दैनों परै सब ठारी को।
लोग देत गारी, औ'तगादो रहैं जारी, याते
बड़ो दुपकारी यह काम अधिकारी को ॥

सिरकार

पुरुष वाच

मंदिर में सिरकार जब गोंडियान को होत।
भाव भगति हिय में बसै, जग में होत उदोत ।

कवित्त

चाहैं ताहि रापैं, चाहैं ताही कौं निकारि देइ,
रापैं गुलजार घर नगर बजार कौं।

'सुकवि गुपाल' भेंट मारे परे हाथ औ'
परच करि सकें जाके दूसरी अगार को।

महुरा कौं लेइ, भिरि झगरे कौं जीतें, सब
काम में हुस्यार के चलावे कारबार कौं।

मंदिर मँझार, सदा रहें मुखत्यार, याते
सब में अगार, रुजिगार सिरकार को।।

स्त्री वाच

दोहा

रगरे झगरे बहु रहैं, मंदिर महल सँभार।
गौड़ संप्रदा कौं कबहुँ हूजै नहि सिरकार।।

कवित्त

रगरे अनेक जाकूं, झगरे लगेई रहैं
बिद्दति अनेक लोग राखें अहंकार कौं।

रैयति निकारें, दीन भिखपुक बिडारें, भेंट
मारे के अगाहत में पायौ करे गारि कौं।

'सुकविगुपाल' कांम मिलकि मकांनन को
निसदिन रहें फूटी टूटी की सँभार को।

भेंट देती बार, जाली कहे बुरबार, याते
बड़ो दुपकार रुजिगार सिरकार को।।

फौजदार

पुरुष वाच

जुर्यो रहे दरबार घर मिलें भेंट में भेंट।
फौजदार को काम यह याते सबमें ठेठ।।

कवित्त

जाली लोग जेते, काम पूछि के करन, ब्रह्म
मोज पुन्य-दान भेंट पूजा के बिचार कौं।
'सुकविगुपाल' बाबू काबू में रहत, घर
बैठे माल आयो करे मंदिर मंझार कौं।
जाके हाथ ह्वैके भेंट मंदिर न होइ
गहुनावा ब्रजबासी सब कर्यो करें प्यार कौं।
दबै सिरकार, रुप रावे सिरदार याते
बड़ो ओजदार, रुजिगार फौजदार कौं॥

फौजदार

स्त्री वाच

गहुनावा घेरें रहै, जालिन के आधीन।
याते सबमें काम यह फौजदार को हीन॥

कवित्त

घर में उतारी, जात्री लोगन की सहै घूम,
करि बरदाय बिकरावै निज जुबान कौं।
पांन पांन दैके बहु आदर कौं फेंकें, मन
राखनों परत गहुनाव सनुआन कौं।
'सुकविगुपाल' सिरकार अधिकार भेंट
देत, लेती बार कर्यो करत हिरान कौं।
मेरी कही मांनि, हरि मंदिर में आंनि, कबौ
भूलि के न हूजै फौजदार गोंडियान को

छरीदार

पुरुष वाच

दरस करत निसदिन रहत हरि मंदिर के द्वार।
याते भलो 'गुपाल कवि' छरीदार रुजिगार॥

कवित्त

सबते पहल जासों आइ कें कहत बात,
प्रात हो ते सदां हरि मंदिर बहत है।
जाके हाथ है के सब मंदिर सथानन,
प्रसाद पनवारे संत सेवग लहत हैं।
'सुकविगुपाल' जब मदिर में भेंट होति
भेंटे में ते भेंट लियो करत सहित हैं।
बढत महत, सुष संपति लहत, सुष
सब ते बहुत, छरीदार कों रहत हैं॥

स्त्री वाच

दोहा

डोलत बोलत रैनिदिन देह जाति है हारि।
याते सब ही में बुरी छरीदार रुजिगार॥

कवित्त

सदां ही, नठल्लन में, टल्लन में, डोल्यो करें,
ठाड़ो रहै द्वार निरवारें भीर-भार कों।
घर-घर जाय, बटवावनों प्रसाद परें
काम रह्यो करें जापें सब को बिगारि को।

सुकवि'गुपाल' जाय सेवक सबी को
करबाबनी परति भेंट, करि के संभार कों।
रोकत में द्वार, जात्री कहैं पुरवार, याते
बड़ो दुपकार रुजिगार छरीदार को।

भंडारीके

पुरुष वाच

सौज, प्रसादी, अमनिया, हाथ रहत भंडार।
भंडारिन सों रहतु है, याते, सबको प्यार॥

कवित्त

सौज परसादी औ' अमनिया रहत हाथ
ताको दई चीज मिले सेवग पुजारी कों।
सुकवि'गुपाल' मुपत्यार रहै मंदिर में
भलौ भयौ करे ताते सेवक मिपारी कों।
सौज परसादी, दे'लगायो करै लाग, ताते
लोयो करे मजा महबूब-नर-नारी को।
देह होति भारी, पात सबते अगारी, याते
बड़ो सुपकारी, यह काम है भंडारी को॥

स्त्री वाच

दोहा

सौंज अमनिया को सकल निसदिन रायें त्यार।
सदै भंडारी होत हरि-मंदिर में मुपत्यार॥

कवित्त

करनी परति स्यवारी, नित रातिदिन,
देइ नहिं जाइ, सोई दीयो करै गारी कौं।
शापनी परति है तयार सब सौंज, काम
लग्यो रहै सदां, भोग-राग की तयारी को।
सुकवि'गुपाल' समझावत में लेयो, चोज
घटि बढ़ि दीयें, डर रहै अधिकारी को।
लोग करें चारी, पाअें जात हैं[1] भिखारी, याते
बड़ो दुखकारी यह काम है भंडारी को॥

पंडा

पुरुस वाच

बांधे जग झंडा, तेज रहत प्रचंडा, जाको
पूजे ब्रह्मंडा, करवावै नित हंडा को।
पूजि करि देव कौं, सुसेव करै आछी भांति,
जानें भक्ति भेद जेब रापै तन मंडा कौं।
पहरि 'गुपाल' कड़े, मोती, गोप, तोड़ा, सेला
समला, दुसाला, मोहि लेत नव पंडा कौं।
पाय पीरि-पंडा, जाकी देह होति संडा, बहु
जोरतु है भंडा, रुजिगार करि पंडा को॥

स्त्री वाच

इप्ट में न निप्ट, लिप्ट, पिप्ट रहैं रांड़न सौं,
मन के निकप्ट जोरैं कप्ट करि भंडा कौं।

1. मूल प्रतिमें यह 'हों' है।

छोटे बडे आदिमी के पीछे लगे डोलें, आस
जात्रिन की रापें, देव-पूजा पात चडा को।
रहत 'गुपाल' राजमद मँह छाके सब
बापन बिरोध बहु आपुस में हडा कों।
रहै रहा मुडा गुप करें मुछ मुडा, बडे
होतहु गुरडा काँम करतहि पडा को॥

पुजारी

पुरुष वाच

घटा, संप बजाय के पूजत हरि दिन राति।
याते सब ही में भली पुजारीन की बात॥

कवित्त

प्रभु के निकट रूप माधुरी कों देप्यो करें,
कर्यो करें काम सदा सुन्दर मजारा को।
भूपन बनाइ, तन सुगंधि लगाइ, चरनामृत-
प्रसाद लीयो करें हरि-द्वारी को।
सुकवि 'गुपाल' हरि मदिर में बैठ्यो सदा
पातरि में लावत न बामन हजारो कों।
रूप होत भारी, आवै देह पै तयारी याते
सबही में भारी यह काँम है पुजारी कों॥

स्त्री वाच

दोहा

राति दिना घेरो रहै, जाय सकै नहिं धाम।
याते कठिनि 'गुपाल कवि' पुजारीन को काम।

कवित्त

जागं पिछराति, घेरा रहै दिनराति, बडे
सीतन में न्हात, गात रहै न सुपारी कौं।
सुकवि 'गुपाल' रंगौ पग्त अपर्स, पुनि
पामनो परै प्रसाद, सबतै पिछारी कौ।
सेवक समाजी, कविराज, द्विजराज, जाय–
देइ न प्रसाद, सोई दीयो करै गारी कौ।
छूटै घरवारी, पैंड़ो देख्यो करैं नारी, यातै
बड़ो दुषकारी यह काम है पुजारी को।।

रसोइया

पुरुष वाच

सबै सौज कर में रहै, घर में होइ मुपत्यार।
यातै रसोईदार को भलो सु यह रुजिगार।।

कवित्त

भोजन सो छकि कैं, रसोई मांझ बैठें, मन
भर्‌यो रहै, कांमना रहति नहिं कोई है।
सुकवि 'गुपाल' जासौं सबको रहत प्यार
कबही बिगार करि सकत न कोई है।
मार्‌यो करै माल, भलो बुरो करै हाल, नांना
भातिन के स्वाद, सदां लीयो करै सोई है।
करत रसोई, जोई कहै सोई होई, सदौं
जाके हाथ लोई, ताके हाथ सब कोई है।।

स्त्री वाच

दोहा

कोई दुप सुप परत जब, भरम घरत सब कोइ।
यातै रसोईदार को, बड़ो दुष तन होइ।।

कवित्त

जरयो करै हाथ, देह गरमी में भुज्यो करै,
धुआं धुमडत जब, आपिन छो सूझै ना।
बडो कष्ट पावै, सो पसीनन तें न्हावै, पाछै
भोजन न भावै, तव बखत पै पूजै ना।
'सुकविगुपालजू' रसायनि को काम, जाके
करत में कोऊ अररस ह्वैकें छूजै ना।
निशदिन धूजं, कोऊ दुख को न बूझै, याते
राजन के मंदिर रसोईदार हूजै ना॥

कुलवाल[१]

पुरुस वाच

'कविगुपाल' कुनबाल बनि, गहरे मारत माल।
करि कुटंब प्रतिपाल नित, बन्यौ रहत है लाल॥

कवित्त

संत औ[२] महंतन के रहै बडी बूझ, सदा
आदर अधिक, भागि जागत है भाल को।
लेत अरु देत मुख्त्यार सब ही के होत,
जाको[३] कयौ[४] बोलबालो परै न सवालको।
आमदि[५] दरफ[६] हरि-मंदिरन रहै, गहु-
नावा ब्रजवासी सब अरयो[७] करै प्यार कौं।
कहत 'गुपाल' भल भले मिलैं माल, याते
सबमें बिसाल, रुजिगार कुनबाल को।

---

१ है० पेरन को कुनवाली
१ है० 'क २ है० तारो ३ है०, मु०, कहूँ ४ है०, मु०, आमद
५ मु० रफन ६ है०, मु० नित होय (होत) उपगार भले दीन प्रतिपाल को।

स्त्री वाच

दोहा

कुतवाली के करत मन जने जने की लेत ।
राति दिना डोल्यो करत तब कछु यार्नों देत ।

कवित्त

राति दिन यामें होनो परत हिरान, नित
डोलें घर घर, कहूँ न्योतो[7] जब दीजिये ।

गारी-गरा देकैं, बोली डारत रहत लोग,
जेमें-जूठिबे में जाय भीतर न लीजिये ।

रोकत में पाप, लगै दीन को सराप, भूलें-
चूकें लेत-देत में महंत जात[8] पीजिये ।

सुकवि 'गुपाल' कछु और कर जीजियें, पै
सत के घरे. को कुतवाली नहिं कीजियें ॥

इतिश्री दंपतिवाक्यविलास नाम काव्ये मंद्र प्रबंध वर्णनं
नाम द्वसो विलास ॥ १२ ॥

---

७ है०, मु० न्योते   ८ मु० जात

त्रयोदश विलास

(देवालैन की रोज़गार)

पुरुष वाच

संत समागम हरि भजन दरस मोर अरु साझ।
यतने सुष नित होत है हरि देवल के मांझ॥

सदाई भँडारी के भँडार रहै हाथ औ
रसोइका के हाथ सब रहति रसोई है।
परच को रहैं अधिकार अधिकारी हाथ
फौजदार हाथ भेंट आवै सब सोई है।
ऊपर के काम सब रहैं छरीदार हाथ
पूजा को मुर्म सो पुजारी हाथ होई है।
सुकवि गुपाल भावभक्ति उर होइ सदा
ऐसो रुजगार तो त्रिलोक में न कोई है।

स्त्री वाच

भगत भाव मन में रहै इंद्रिय-जितनिहि काम।
कवि गोपाल तापै बनै देवालन को काम॥

देत अरु लेन में भँडारी के हिसाब हैं हो
घेर बडो रहत पुजारी को सदाई है।
छरीदार भये डोला डोली में पगाव, धुँआ
आगि को रसोइया को दुर अधिकाई है।

अधिकारी भये पै रहैगो बोझ भार सब
फौजदार भये होगी आफति महाई है।
चाहिए 'गुपाल' भाउ भगति भलाई याते
यंत रुजगारन में येती कठिनाई है॥

ब्राह्मण के रुजगार ते बरज्यो तैंने मोहि।
क्षत्रिय के रुजगार के सुष्प सुनाऊं तोहि॥

अथ साध प्रबंध महताई

पुरुष वाच

हाथ करामाति, औ' जमाति मानैं बात
दिनराति-प्रात जात जाको हरि चरचाइ में।
सबही सौं हित, परमारथ निमित्त, भाव
भगति[१] में चित्त, औ ममित्त नहिं काई में।
'सुकविगुपाल' भले माल पाय लाल होत
हाल ही निहाल है पुस्याल रहै याई में।
बड़े साधुताई नवै राजा राउ आई, याते
सबते सवाई है कमाई महंताई में॥

स्त्री वाच

बनि है नहीं महंत बनि तुम पै बड़ी महंति।
सांचो जोई महंत जो सब की करै महंति[२]॥

कवित्त

झूंठ-सांच बोलि, धन लेत सतो सेवग को,
बिना भक्ति-भाव, जमलोक गयें मूंजियै।

---

१ है० भक्तिहि २ है० में यह दोहा प्रथम है

मिलिकि, मिरासि, कुआ, बाग, औ' निवासन के
रगरे अनेकन के झगरे तें छूजियै।
'सुकविगुपाल' काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद
माया जाल परे न पसारि पाँय सूजियै।
जाइ के यकत,[३] टूक माँगि जीजै अत थे पै
सत की जमाति[४] को महंत नहिं हूजियै॥

महंत कौ चेला

पैला को बल होत पुनि, मेला चूतर होत।
मंदिर माँझ महंत को चेला होत उदोत॥

कवित्त

देषत ही गादो मुपत्यार होत मदिर को,
गुरुन को माल सूब मिलत अकेला कौं।
'सुकविगुपाल' सदाँ रजई करत, ओढ़ि
साल औ' दुसाला सो झुकाय कढे हेला कों।
कुलप्रति पाल भागि जगत विसाल वहो
देह होति लाल हाल हो मल पैला कों।
वनो रहै छैला मिलै भोजन सवेला याते
कह्यो जात सुप न महंतन के चेला कौं।

दोहा

छोडि अकेला कुटम कौं रहै मौडन के माहि।
याते जाइ महंत को चेला हूजै नाहि॥

कवित्त

कुटम कबीले के न काम को रहत कछू,
होत निरमोही. सुप पावै न यकत कौं।

---

३ हे० इकत ४ हे० जमाति

देखि-देखि जर्यो करें, भाई गुर भाई,
दुष दाई सव होत, मद करत अनंत को।
'सुकविगुपालजू' रजोगुनता आवै दिन-
टहल में जावें, भाव रहतु न सुंत को।
कवी न मिलत, भाव भगति न वंलि, ऐते-
दुष होत अंत, चेला भये तें महंत को ॥

महंत की चेली

सोज अनेक प्रकार को भरि भरि दौंना वाति।
काहू संत महंत की तब चेली ह्वै जाति ॥

कवित्त

साजि के सिंगार, रापें सब ही सौं सैली कांम
वंद नहिं रहे जाकों रूपा औ' अधेली को।
'सुकविगुपाल' सदां सांझ औ' सवेली सो
नवेली बनी रहै हार पहरि चमेली कौ।
जाय परजंक पें, निसंक भरि अंक, मजा
लीयौ करे मंदिर में करि-करि केलो कौं।
रहै अलबेली, बांधि करिहा सूं थैली, याते
कह्यो जात सुष न महंतन की चेली को ॥

रती पञ्च

सोरठा

तवयो करत सब ताय, कांम तपति ह्वै के सदां।
अंत जाइ पछिताय, चेली भये महंत की ॥

कवित्त

डारयो करें लोग जापे टोंक औ' मजाक, नित
धरयो करें नाम, जाकों ज तो लोग सैलो के।

'सुकविगुपाल' मिलि भाई गुर-भाई सदां,
हृवै कें दुपदाई प्रांन लेन है अकेली के।
करे गर्भपात, होति हत्या दिनरति, सुष
सतत को जात, दूरि रहति हवेली के।
चहूं रेला-पेली वावि करिहा सूं चेली, याते
कहे जात सुष न महंतन की चेली के॥

महंतानी के सुष

सुष सांनी निसदिन, कहै भगतानी सब कोइ।
मुषिया साघ महंत की, महतानि जब होइ॥

कवित्त

बनी ठनी रहै, मिसी काजर लगाइ फूली
रहै मन अैसे फुलवारी ज्यों बसंत की।
'सुकविगुपाल' कोकिला सी मिलि गामें रनु-
झनु झनकार करे भूषन अनंत की।
मेला औ' तमासे रास भजन समाज देषि
दरस परस पूजा करैं साघ संत की।
राजन की रानी, बनी रहै ठकुरानी सदां,
रहै सुषसांनी महंतानी है महंत की॥

स्त्री वाच

दोहा

भगतांनीं निसदिन रहै भगतानी बनि सोइ।
महंत की महतांनि ते, भली कहै नहिं कोइ॥

कवित्त

जातिपांति कुटम के वांमकी रहै न, अंत
भोगति नरक हत्या करि जंति की।
दंपति कौं संग नहीं, सतति कौ मानें सुष,
कंपति रहति भय मानि साध संत कौ।
नांमनां न चलै पूरी कांमनां न होइ, वह
पाछै दुष पावै वूझ रहति न तंत की।
रहति यकंत, जाको कोऊ नहि गंत, दुष
पावति अनत महंतानी हूं महंत कौ।।

मुषिया

पुरुष वाच

दबै धरे जासौं सकल महमा मंदिर वोत।
सत महंतन कै सदां मुषिया मुषिया होत।।
पाय आप पोपै सबहि, मुषिया मुष सम जांनि।
दंतहु में लगि रहहिं तहें, काढ़ि लहइ सुष आंनि।।

कवित्त

उत्सव रसोई मेला 'पचरु' पंचायति मे,
लीयौ करें षबरि सुदीन दुषियांन की।
'सुकवि गुपाल' गादी बैठत महंत जब
पूछि कंठी वंधति महंत पुषियान की।
जाके आगे पेस होति, काहू की न वात, बैठ्यौ
मंदिर मे पवप कर्यौ करें रुपियान की।
दावि सुषियान, बैठि वीच मुषियान,
सब मांनें मुषियांन, मुषियांन मुषियांन की।।

स्त्री वाच

दोहा

दीयो करत घरेन के सब बुरबाई ताइ।
याते काहू मंद्र को मुखिया हूजे नाहिं ॥

कवित्त

पच औ'र पंचायति, रसोई उत्सव मांझ
रिस रहै जाको ताकी बात नहि बूझिये।
'सुकवि गुपाल' पनवारन के लैत देत,
सांझ लो सवारे ते भिपारिन सो जूझिये।
अपने सयानन की रहै जब बात, तब
बुरो बनि सात औ' महतन ते जूझिये।
गुरन के पाय दूरि ह्वैते जाय पूजियें, पै
भूलि काहू मंदिर को मुखिया नहूजियें ॥

संत

पुरुष वाच

दोहा

राम नाम जपते रहे बैठत कवि आधीन।
दै दरसन सब जगत के, पाप करत हैं छीन ॥

कवित्त

तीरथन माझ सदा विचर्यो करत, सदा
पूजापाठ भजन में जात दिन जाई कैं।
अंबरा कुपीन छापे तिलक दै भाल, माल
कंठ में 'गुपाल' भली करें सब काई को।

राजु अरु रंकन में, दूसरो न भाव, निस-
किचन बिरति, सील सहन सदाई को।
नमृता सवाई, रहै हँसत सदाई, यह
बड़ो सुषदाई सदा बानो साधुताई को॥

स्त्री वाच

दोहा

सत संगति निसदिन भगति राजा रंक समांन।
सहन सील संतोष करि धरे सदा हरि ध्यांन॥

कवित्त

मूड़ के मुड़ाअे, छारे तिलक लगायें, माला
कंठी लटकाये, झूंठो ठठको ठठन है।
पूजा के करायें, संष घंटा के बजायें, बहु
भगर दिषायें, कछु होत न पठन हैं।
तीरथ के न्हाअे, बग ध्यांन के लगाये व्रत
नेम मन लाअे, सत संगति सठन हैं।
कीजे न हठन, मेरो सुनि के पठन, याते
'सुकवि गुपाल' हो तो साधुता कठिन है॥

पुन

पुरुस वाच

बुझ्झिल मेल करें पर बासन बास करे नहि, घेक ठिकानें।
देत हैं औरन को सदा मांन औ' आप अमान रहै तजि मानें।
संतन की सतसंगति में 'श्रीगुपालजू' को निस बासर ध्यांनो।
देषत पाप हरें सब के जब में है सिरे यह साधु को बानों॥

स्वी व्याच

कवित्त

बने डोलं साह, घर बीस बीस राघें भाड,
पात बनि साड, जं लगैया तिलक माल के।
चोर ठग लपट, असाधुता करत हिय
दया नहिं राघें मरवैया बडे गाल के।
काम-क्रोध-लोभ-मोह पगेई रहत बहे-
निपट हरामी जे जुरैया धन माल के।
झूंठो भेष धालि भाव भगति बिसालि, साध
अैसे रहि गये है 'गुवाल' आज कालि के।

नागा

सब मिलि इक जगा रहे, रखिकें बडी जमाति।
यतें सत महंत में, नागन की बडी बात॥

कवित्त

राघें सोप सांनि चढ़े नोबति निसान, लखिवे
को अभिमांन, सजें अस्त्र सस्त्र हाथ हैं।
संग हय घोडे, रण मुरत न मोरे, औ-
गुरामें कडे तोडे, रहें हृष्ट-पुष्ट गात हैं।
'सुकविगुवाल' पटब जो के दिपामें हाथ,
काहू न डरात जग जोरे बित जात है।
माल बडे पात, सग रावत जमाति, माते
जग में विष्यात बडी नागन की बात हैं।

स्त्री वाच

दोहा

हारत नहिं हथ्यार धरि, सूझत मारहिं धार ।
याते यह नागान को निराधार रुजिगार ॥

कवित्त

बांधत हथ्यार, जिनैं सूझै मार धार, हरि
नाम उर धारि, करो सोधत न आगा कौं ।
लूटत पसीटत्त रहत दिनराति सदां,
बसिकै कुजागा'ओ विगोवत विरागा कौ ।
'सुकविगुपाल' बांधै बारन की पागा अनु-
राग में नरक है लगायो करै दागा कौं ।
काटे बन बागा, रहत न अेक जागा, याते
सबही में बाधा यह भेव बुरो नागा को ॥

"सिद्ध"

पुरुष वाच

है प्रसिद्ध जग सिद्ध बनि सिद्ध करैं सब काम ।
रिद्धि सिद्धि लाखू धनी वृद्धि करत जस नाम ॥

कवित्त

भूत को भभूति, औ' विभूति देत भूतन कौं,
बांझन कौं पूत अवधूतन समिद्धि कौं ।
चाहै न प्रसिद्धि भयो मौन वृत्ति गहै, हिय
सुद्ध रहै मेटि कै विरुद्ध काम क्रुद्ध कौं ।
'सुकविगुपाल' छोडि अंबर डिगंबर-
दिगंबर है रहै मेटि संबर की वृद्धि को ।

छुवत न निद्धि, लागी रहैं रिद्धि सिद्धि हरि–
मिलिबे की सिद्धि, होति सिद्ध ही मैं सिद्ध कौं ॥

स्त्री वाच

दोहा

चाहत करयो जु सिद्धई, होति सहज सो नाहिं।
मन इंद्रिन को मारिबो, बड़ो कठिन जग माँहि ॥

कवित्त

मागे नहिं कहूं, नित जागैं दिनराति, अनु-
रागैं हरि ही मैं, जो मैं मेंटि काम क्रुद्ध कौं।
रापे नप-देस, भेस अजुजिल बनाइ ओ-
सुरेसहू के सामने न होइ पर सिद्धि कौं।
'सुकविगुपाल' ओढि अवर-दिगंबर–
दिगबर है रहैं मेंडि संवर की बुद्धि कौ।
छवत न निद्धि, लागी रहैं रिद्धि सिद्धि हरि
मिलिवे की सिद्धि होति सिद्धई में सिद्ध कौं ॥[२]

---

१ है० हैबो
२ अंतिम दो पंक्तियाँ है० प्रति मे इस प्रकार हैं .
"बोलै नही मुष, नही डालै घर-घर कहूं,
जोरों नही धन, हाथ आवैं नवनिद्धि कौ।
सुकवि 'गुपाल' करैं सुछमन बुद्धि जब
होइ कछु सिद्धि, नाम सिद्धईमें सिद्ध कौं।"

फकीर

पुरुष वाच

सबते भलो फकीर को, या जग में रुजिगार।
लाल बन्यो नितप्रति रहै[१], घर-घर पूरत स्वाल॥

कवित्त

फाका को न फिकिरि, प्रवाह न दिसो की करै,
घरैं तन गुद्दर गरयारन की चोरी का।
रवि ससि दीया, जाके अवनी बिछैया, फल
फूलन के भोजन औ[१] पंयार्यो नसीरो का।
नाता करि हांता, 'श्रीगुपाल' गुण गाता रहै
प्रेम मदमाता सबिसंतन की मीरो का।
बैठि छांह सीरो न करत दलगीरी, याते
सबमें अमीरी, यह कांमहू[२] फकीरी का॥

स्त्री वाच

सोरठा

घरैं सदा तन चीर, भिक्षा को घर घर फिरैं
याते होइ फकीर[४], ध्यैं नहीं विदेस कौं

कवित्त

सबते उदास, करैं जंगल में वास, नहि
रावं पर आस, राजु रंकरु[५] अमीरी कौं।
धन कौं न धरैं औ' पराए दुप परै, नित
इंद्री[१] वस करैं, त्यागि अरघ सरीरी कौं।

त्यागि बकवाद, लौ गुसैया सो' अबाद, कछु
मागै न मुराद, नहिं स्वाद ताती-सीरी कौं।
काहू की न पीरी, घरै करै दलगीरी, याते
कहत 'गुपाल' काम कठिन फकीरी को ॥

तपेसुरी

पुरुष वाच

जपत पकरि मन बस करत, इंद्री रापत हाथ।
याते यह जग में बड़ो, तपेश्वरन को बात ॥

कवित्त

चले आमें लोग, लैकें नाना भाति भोग, मिटि
जात सब सोग, रोग रहत न जी को हैं।
गाजे औ' चरस के लगायो करै न दम, गम
कछू न रहति रिद्धि बाटे सबही को हैं।
'सुकवि गुपाल' पूजा मानसी करत, दुप
सबको हरत, चित जानें आनसी कौ है।
सुद्ध : करै जोकौ, ध्यान रहै हरि ही कौं, याते
सबही में नीको, यह काम तपसी को है ॥

स्त्री वाच

दोहा

कंद-मूल-फल-फूल-दल, भोजन, वन में बास।
तप करिकै तपसी सदौ, सब सों रहै उदास ॥

---

१ है० रहै २ है० गुन ३ है० रुजगार हैं
४ है० जैये ५ है० औ ६ है० पैंड़ी

कवित्त

कूबरी कठारी कर, कौंपना ते कसें कटि,
राखें नष-केस, बैठे करिकें आधीन कों।
राख कों लगावें तन धूनी ते जरावें, रवि
मांऊ द्रष्टि लावें, बहु है करि अधीन कों।
सुकवि 'गुपाल' जप-तप के करत, करें
काष्टा अनेक मूप देपें नहिं तीन कों।
देह रहें छींन, भेस बन्यो रहें दीन, याते
सब में मलीन, यह भेस तपसीन को॥

विरक्त

पुरुष वाच

कुंज कुटी में बास बन, कर करवा कोपीन।
है विरक्त सब सों सदा होत भगति में लीन॥

कवित्त

कुंजन में बसि, कथा कीरतन सुनें, नित
हिय में उमंग, सतसंग साधु भक्त को।
संगृह कों तजि कें, भजन ही को संगृह कें,
करवा-कुपीन कटि राषत हैं फक्त कों।
'सुकविगुपाल' हरि-लीला में मगन मन
मधुकर वृत्ति ही में होइ कें असक्त कों।
त्यागि करि जक्त, होत हरि अनुरक्त, याते
सबही में धक्त, यह कांम है विरक्त को॥

स्त्री वाच

दोहा

करें कुटी में बास नित, करि हरि सों अनुराग।
तब विरक्त के हृदय में, उपजें भगति विराग॥

कवित्त

भक्त अनुरक्त, झूठो जानें सब जक्त, हरि
भक्तन के संग सदा रहे जत-मतमें ।
'सुकविगुपाल' सीष संतन सों लैके, सबही
कों पीठि दैके, मन राषत बिरति में ।
होइ न प्रकास, करैं आस कों बिनास, सदा
जाइ बास करैं कुंज कुटी जो यकत में ।
तना झिरकत, घर घर रिरकत, ऐती
होति हरकति, बिरकत के बनत में ॥

विदेही

पुरुष वाच

देसन में बिचर्‌यो करत, रहत अजरी भेस ।
सदा बिदेही साध कों पूजत सकल नरेस ॥

कवित्त

कर करामाति, सदा रहत जमातिन में,
रहैं दिनराति भक्ति भाव में भिदेई है ।
'सुकविगुपाल' कंठ बटुआ कों धारैं आप
तरै, औरें तारैं सुद्ध करैं निज देही हैं ।
जात जित सिद्धि चली आमें रिद्धि सिद्धि ठौर
ठौर ह्वै प्रसिद्धि सुद्ध रहत बिदेही हैं ।
देवै न बिरेही आप रहत बिदेही सदा
करनी बिदेही की सो करत बिदेही हैं ॥

दोहा

निरमोही भव सों रहे नगन इकंत निवास ।
विदेहीन कों होत है पैतिक कष्ट प्रकास ॥

कवित्त

देसन के मांझ सदा फिरनो परत, चोरें
रहनो परत, सीत घाम बरसाति में ।
'सुकबिगुपाल' सती सेवग बिगरि, करनों
परत कड़ाको, रिद्धि आवे बिन हात में ।
धारने परत जटा, कोंधना, कठारो, धूनो
तपनी परति चीमटा ले संगसात में ।
फटिजात गात, नंगे रहे दिनराति, दुप
होत है विप्पात, जे विदेही की जमाति में ।।

जोगी

पुरुष वाच

तेज प्रचंड रहे सदा नैन बरत दोऊ लाल ।
धारत जोगीराज तन बाघंबर मृगछाल ।।

कवित्त

माल-मुद्रा-मेषला-विभूति-सेली-शृंगी हाथ
रहैं, संग सदा अवधूतन समाज हैं ।
'सुकवि गुपालजू' निरंजन को ध्यान हिय
साधत समाज हरि मिलन के काज हैं ।
होत जग ख्यात सो दिखाय करामात जात
बस करि लेत बड़े राजा महाराज हैं ।
फलत अवाज, जिनें आवति अगाज, याते
राजन के राज, महाराज जोगी राज हैं ।।

स्त्री वाच

सोरठा

जटिल अमंगल वेस, वास करन बन में सदा ।
यातें कठिन विसेस, काम सुजोगी-राज को ।

कवित्त

जटिल अमंगल, मसांनन में बसें पच
तपा तें तपत, सुध जानत न भोग कों।
करत रहत तन काष्टा अनेक यम—
नियम के साधें मुख देपत न लोग कों।
कांनन फरामें, जोगी जगम कहावें, या में
'सुकविगुपाल' घ्यांन धरत अमोग कों।
काहू को न सोग, रहैं तिय तें वियोग, फेऊ
लागे रहैं रोग, सदां साधत में जोग कों॥

परमहंस

पुरुष वाच्य

भोजन कर न करें कबी, अजुजिल जैसें हंस।
हरि के अंस प्रसंस जग, परमहंस अवतंस॥

कवित्त

तन, मन, पीन, कटि, राघे न कुपीन, होइ
हरि लव-लीन, साधुता के अवतंस हैं।
बसन दिसा है करें घ्यान को नसा है, मुख
मौन है न चाहें हे, गिरि कदरा के मंध हैं।
'सुकविगुपाल' क्यों जांचना न करें, सबही
की व्याधि हरें, जे बढ़ावत न बंस हैं।
काहू की न संध, रहैं अजुजिल ज्यों हंस, याते
अंस हरि ही को, जे प्रसंस परमहंस हैं॥

स्त्री वाच्य

दोहा

सीत घांम जल संध है, वसें गुफा के मांहि।
परमहंस को साधनों, धर्म सहज है नांहि॥

कवित्त

करनो परत गिरि कंदरा में वास, मन
मारनो परत, मुप मौनता के लेवे में।
सीत, घांम, जल, सदां सहनों परत, बहु–
आवति है लाज सो नगन वेस कैवे में।
'सुकविगुपाल' भूप जाति रहे जब पर–
हाथ ते न स्वाद आवै भोजन के पैवे में।
पर हाथ जेंवे, नही होत है कमेंवे, बड़े
होत दुप पैवे, या परमहंस ह्वैवे में॥

मौंड़ा

पुरुष वाच

[1]गांम गांम में मांगि के, मगन रहत दिनराति।
याते या संसार में, मौंडन की बड़ी बात॥

कवित्त

अस्तल में वास, माई गाई रापे पास नाम
पावत है दास, पूजा करें सांझ भोरा की।
फरि के बहु रंगति दूनी व्याज पात लेत
चूनन के चुगल झुकाइ[2] कड़े तोड़ा कों।
कुल प्रतिपाल सदां पेत विरिहान किसान [3]
नते मिलिकि लैकें रापें घोरी-घोरा कों।
करें छोरी छोरा, 'औ' कमात होड़ी, होड़ा, याते
बड़ो धन जोड़ा रुजिगार यह मौंड़ा को।

---

१ है० घंटा जांति बजाइ के करत भजन दिन राति।
याते या संसार मे मोंडन की भली जाति॥
मु० घंटा संप बजाइ के मगन रहत दित रात।
२ है० दिवाई ३ है० किसासन
है० याते यह कलिकाल में मोंडन की बुरी जाति।
मु० जाते या कलिकाल मे मोंडन की नहि बात।

स्त्री वाच

दोहा

गोड़ा-गोड़ी करत धन, जोड़ा-जोड़ी जात ।
धन जेतौ मोंड़ान कों, मोंड़ा-मोंड़ी पात[1] ॥

कवित्त

करनौ परति जिमीदार की पवासी, गरें
परि जाति जाके विसै बासना की फांसी हैं ।
'सुकविगुपाल' आए-गये साघ संगति में
गारी दयौ करें जो पन्नावें न मवासी है ।
दाम ले अुधार, पाय जाय नर-नारि, तब
जिय में विचारि, हारि आवति अुदासी है ।
कबी न पलासी, जिय जायौ करें सासी, साव
भोगत चुरासी, सदाँ अस्तल कौ बासी है ॥

संजोगी

पुरुष वाच

सोग नहीं किछु बात कौ, निसदिन भोगत भोग ।
साघ सँजोग सँजोग में, घर बसि साधत जोग ॥

कवित्त

ब्याह गौनें चाले कौं, न परचनें परें दाम,
लाय नित नईन सौं भोगयौ करें भोगी कौं ।
गोत और नात न मिलांमनें परत नाम,
धरिबे कौ डर न रहत, काहू लोगी कौ ।

---

१. है० याते यह कलिकाल में मोडन की बुरी जानि ।
मु० जाते या कलिकाल में मोडन की नहिं बात ।

'सुकविगुपाल' बड़े होत परवीन, रूप
निकरै नवीन सदा, नैनन के रोगी कौं।
कबो न वियोगी, सदा रहत निरोगी, याते
सब में सजोगी को सुकरम संजोगी को ॥

स्त्री वाच

दोहरा

विषय लीन है होत हैं, दीन ते सदा कुदीन।
संजोगिन की बात यह, याते जग में हींन ॥

कवित्त

बवै पाप बीज, सो गृहस्त ते गलीज रहे,
भोगिवे कौं तरयो करै, भामिनि अभोगी कौं।
भगति गमाय वर्ण-संकट कहाय कै
भयंकर से ह्वं कै कांम करत कुयोगी को।
'सुकवि गुपाल' धन जोरत ही जात दिन
माया-जाल परि निंदा सह्यौ करै लोभी कौं।
नरक कौ भोगी, देह रहै न निरोगी, याते
सब में सजोगी, यह करम संजोगी को ॥

जती

पुरुषवाच

दोहा

कहत मठवती गजपती, जाहर जग में जोति।
पुलत रती बाढ़ति मती, जती जाय जब होत ॥

कवित्त

पीमें जल छानि, रापें जेंवण के प्राण, पूछि
पात पान पानि, सुद्ध : रापन मती कौं है।
रहत न कीन, जंत्र मत्र में प्रवीन जादू
करि कै नवीन, वस्तु छावत वतीको है।
'सुकवि गुपालजू' कहामें मठवता, जैन
मत अघपती हैं कै जागत गती कौं हैं।
साधि के व्रतोकौं, बस करं गट्टातो कौं, नाते
सब में रतो कौ, भलौ करम जत्ती कौ है।

इरती वाच

दोहा

सुमृत सास्त्र आगम निगम, निंदत है सब ताय।
याते साधि सु जैन मत, जती न हूजे जाय॥

कवित्त

मढ़ें रहैं बाँधें, छार पर रहै काँधें, सदा
जैन मत साधे, जे अराधे लै पतीन कौं।
नंद नहीं पवामें, मिष्ट भूतिया कहामें
परलोक दुप पामें, सुप पामें न गतं न कौं।
बेद औ पुरान निंद्य, कहत निदान, जे
अधर्म कर्म ठानि धर्म टारत सनीन कौं।
देवं सुप तीन, पात निस में रतो न, यौं
'गुपालजू' मलीन होन परम अतीन कौं॥

स्थानपत

पुरुष वाच

सोरठा

सुमरि इष्ट को जाप करहु स्थानपत जाइकें[१]
बस करि कै नरनारि, घन उचित करिहो बहुत ॥

कवित्त

नर को कहा है, भूत प्रेत कों करत बस,
आंगन को पूज देत, भभूति लगत में।
देइ सिर आवत[*] में, गावत बजावत
पिलावत, दिखावत, चरित्र अजगति में।
'सुकविगोपाल[२]' घर घर में वगत्ति बात
सब कौं ठगत, जोति बाती के जगत में।
होइ आसु-भगति, कहावत[३] भगत, याते
जगति है जोति, स्थानपत की जगत में॥

स्त्री वाच

सोरठा

याते सोचि निदांन, कबहुँ न कीजें स्थानपत।
होइ जीय कौं ज्यांन, गति न लहै परलोक में॥[४]

---

१. है० जायकें २ है० कहत गुपाल ३. है० कहवत
४. इसकी जगह पर यह सोरठा है
मेरी कह्यो प्रमानि, कबहुँ न कीजे स्थानपत।
होइ जीय को ज्यांन सुभ गति कबहुँ न पावही॥"

कवित्त

करत रपत जाके अति ही कमप गात
होइ जीव[1]- घात, घात चलत फिरत में।
सधति न पावै, 'औ' मलीनता बढ़ै, सब
निरफल जावै, कर्म दष्ट[2]के कुवत में।
'सुकविगुपाल' मंत्र जाप पै जात, ध्यान
धरत डरत प्रान जातह [3]सुकति में।
भिष्ट होति मति, नहिं पावै सुभ गति पर
बडी है अगति, या करत स्थानरत में।

सरभंगी

पुरुप वाच

जंत्र मंत्र में निपुन अति, सिद्धि होत सब मंत्र
याते यह सरभंग मत, सबते भलो सुतंत्र

कवित्त

डिम्भ नहीं राखें ब्रह्म सबही म भाखें, कुच
काहू सौं न मांगें काम करत उमंगी कों।
काहु में 'गुपाल' कवी भेद नहिं मानें, मन
जानें हरि अंग, सदा आह्वान रु भंगी कों।
आपस में प्यार, हौरें ठौर ठौर कौं झारि, ठढे
रहे नर अनारि, दुवार लै के चोज चंगी कों।
देह राखें नंगी अवधूतन के संगी, यातें
सब में पचंगी यह मत सरभंगी को।

---

१ है० जीव   २ है० दुष्ट   ३ है० है।

स्त्री वाच

न्हाइ नहिं धोवें भली बुरी ठौर सोवें, चोटी
सिर पै ते पोंवें अनविग्न राखें अंगी कों।
करि मल मूत्र कों, न धोवें हाथ-गोड़ हाथ,
धोवटीन राखें दूजो पावत न संगी कों।
'मुकविगुपाल' रहें सबतें उदास अवध
अभवदन पात, तब काया राखि नंगी कों।
हीन बहु रंगी बात भारत दुरंगी, याते
भंगी ते गयो है यह मत सरभंगी को।

गुरदक्षा

पुरुष वाच

चेला चांटी करत में पावत सुन्दर सरीर।
नवत सब जग आइ[1] के मटे भव की भीर॥

कवित्त

राम नाम कहैं, माला मुद्रा धरे रहैं, कर्म
शुक्रत[2] के गहैं, लोग मानत परक्षा कों।
चरन छुवावैं सीस, सब कौं पुजावैं, गुर
ईश्वर कहावैं, नवशावैं, करैं रक्षा कों।
बढ़त 'गुपाल' भाव भगति विसाल होत
हाल ही निहाल प्रतिपाल बाल बच्छा कों।
मानैं जग सिक्षा तामैं पूरैं सब यत्न,[3] याते,
सबही में[4] अच्छा रुजिगार गुरदच्छा कों॥

सोरठा

लीजै सिक्षा मानि, अरु इच्छा[5] होइ सुईकरो॥
मेरो कह्यो प्रमानि गुरदच्छा नहिं दीजियें॥

---

१. है० आय २. है० सुकृत ३. है० दूसा ४. है० ५. है० इसा

कवित्त

देस-परदेस अुपदेसियै न धन काज
धरिकैं सुबेस, बिन भक्ति रंक राऊ कौं।
लागैं अवराध जो असाधुते न साधु होइ
गर-भव बारिध अगाध परैं ताऊ कौं।
'सुकबगुपाल'[1] बहु सिष्य ज' करत पाप
सबते लगत आइ आधो आध जाऊ कौं।
सिक्षा मांगि जोजें, और इक्षा हो सु कीजें, मेरौ
शिक्षा मांनि लीजें, दीजे दक्षा नहिं काऊ कौं॥
होत महपाप बिबहार छुटजात हुरि
रूप दरसन तिहि बैन मन दअे ते।
'सुकबिगुपाल' जग में, सुजन प्रभाव, भाव
भक्ति बढिजाति, ग्यान होत पद नअें ते।
हिय होत अमल विमल मत नैन होत
होत चित चैन भैन रहैं कोअू चिये ते।
नयौ होत जनम करम सुभ होत कर
ऐते सुख होत गुर मनमुख भअे ते॥
तन मन धन सब अर्पनौ परत, कर्म
करनौ परत जनुबत्त गुर रक्षा के।
पूजा पाठ भजन ध्यान संध्यादिक करि
मांनने परत सब जेते बैन सिक्षा के।
चलनो परत निज संप्रदा के अनुसार
सारहि बौं गहि भाव भगति परक्षा के।
रोपि पक्षा पक्षा, कर्नी परै जे व रक्षा अैसी
करनी परति बात लोयें गुरदक्षा के॥

"इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये साप्रदाय वर्णनं नाम त्रयोदस विलास।"

---

१. कहत गुपाल

चतुर्दश विलास

ब्राह्मन

पुरुष वाच

सौच, सांति, संतोष, दम, दया, सुघाई ज्ञान ।
हरि ततपर, तर, सत्य, मम द्वज लच्छन अ जानि ।।

जगत अपावन, तप करन, धर्म रच्छवे काज ।
दान पात्र भगवान निज पूज्य करे द्वतराज ।।

सबही के पूज्य, औ' पवित्र सब जीवन में,
कोमल हृदय जे बनाझे धर्म-काज हैं ।
होतहैं पवित्र घर तिन के तृनिष्ट हो सों,
तिनकी कृपा सों मिलें बहु सुखसाज हैं ।
जिनही के तप तेज जगत को रच्छा होति
तिनके चरन धारे हरि महाराज हैं ।
कहत 'गुवाल' भगवान को सरूप याते
राजन के राज महाराज द्वजराज हैं ।।

सोरठा

जप तप व्रत मन देइ, हरि सतोष रंच न करै ।
तब दुज है जस लेइ, है वेदक करि शाप्टा ।।

कवित्त

दिन आधे रहे भोजन की बात बने
भिच्छक भिखारी, आस करे सब जन की

'सुकवि गुपाल' सों सरारि देत हाल, जाति
कौन देवि सकै पोटो रहत सुजन को ।
रहत न तेज पति गृहन को कौडी पात
पात न कमाई कवौ अपने भुजन को ।
धर्म के सुजन को विसरत तुरत कम
भुजन को याते यह जाति है द्विजन को ।।

क्षत्रिय

पुरुष वाच

कवित्त

छिमा, तेज, सूरता, प्रभाव, दान, धीर्य, धारि
रहत प्रसन्न, मन जीउत पवित्र है ।
तिनही के हाथ रन सत्रुन के जीतन को
बाधुयों है विधाता नें विजै को जीत-पत्र है ।
सुहृद 'गुपाल' गऊ साधु द्विज दीनन को
हैके हितकारी रखया करें सरबत्र है ।
बाधे अस्त्र सस्त्र, भारी सब में नखत्र, याते
सुजस को सोहे सिर छत्रिन के छत्र है ।।

स्त्री वाच

दोहा

मिले रहे मद्य सों सदा जियको कसक न जाय ।
याते यह छत्रीन को, जाति बडी दुपदाय ।।

कवित्त

घरट में छोड स्वामि नरक में पेरें, तिय
सोंवे न सरोर बडो लगतु अधम है ।

कायर भजे पै जार-जातिक कहावै धन—
धरा-राज-काज मन पट रन गर्म है ।
'सुकविगुपाल' नौन करिबे हलाल काज,
बेटा बाप लरे रन छाँड़ि निज सर्म है ।
बेधै पर मर्म, फटै तिल तिल चर्म, याते
सब में कठिन, यह छत्रिन को धर्म है ॥

वैश्य

पुरुष वाच

दोहा

धन संचै करिकै चहुल रापन बीच बजार ।
याते यह सबमें भलो वैश्यन को रुजिगार ॥

कवित्त

संमत-कुसमत में राषि लेत लाज, राजु
राजन की काटै बद, करत निसाँको है ।
याही तें जगत प्रसंस, मेवा को कहत ग्राप,
याते सदाँ होत प्रतिपाल दुनियाँ को है ।
'सुकविगुपाल' काँम परें सबही को सदाँ.
घर भरयौ रहत, कुबेर को सो ताको है ।
बनिज को पाको, धन जोरत सदाँ कों, काज
करनी कों बाँको, सो बनायौ बनिया को है ॥

स्त्री वाच

दोहा

पहल नरम, पाछें नरम, दाम परें करघात ।
याते यह बनियाँन की, सिंह तुल्य है जाति ॥

कवित्त

जानिकें निसक, चाहें सोई धमकाइ लेइ,
मानत न कोई आनि-कानि नेक ताकी हैं।
साहु बने रहैं, अरु चोरी को करत काम
दिनही में काट्यो करें गाँठि दुनियाँ की हैं।
'सुकवि गुपाल' वहु जानते कों मारें माल,
काँम भये पाछें, फिरि जाति आँखि जाको है।
लार गिरें याकी, जाति सिडिबिडि न ताको
डरपोकनी सदा की, यह जाति बनियाँ की है।

सूद्र

पुरुषवाक्य

प्यारे चारिहु वरन के सबन देत सुख गात।
याते यह सब जाति में भलो सूद्र की जाति॥

कवित्त

भले बुरे करम में निंदतु न कोई, बहु
करनों परें न जप तप व्रत गात को।
हुरमति, इज्जति- सुचाहिये न बड़ी, बड़ी
दीसे कारखानों ताकी चोरी सी बिसाति कौं।
तिनसौं 'गुपाल' काँम निकरें अनेक, रहैं
सबही के प्यारे, सो बनाय निज बात कौं।
सब काँम हात करें, भोजन न पात, याते
सुख सरसात, बहु सूद्रन की जाति की।

स्त्रीवाच

दोहा

दीन रहत भूषन मरत, होत भोगते हीन ।
सूद्र लोग दुष भीनि के, रहत पाप में लीन ।।

कवित्त

चारिहू बरन को सुननों परत, सब
कहे नीच जाति, हय्या भयो करें हात हैं ।
जिनको 'गुपाल' अधिकार नहीं वेदन को
तापें भव छेदन की बनति न बात है ।
बुरे दिन जात, भवप अभक्षहि पात औ'
कुकरम को कमात इतराइ हाल जात हैं ।
मरत न छूद्र, घेरें रहत दलिद्र, यामें
सबही में छुद्र, यह सूद्रन की जाति है ।।

पुरुषवाच

गृहस्थाश्रम

चारि बरन आश्रमन में हैं सबको सिर मोर ।
गृहस्थाश्रम के सद्रस, कोउ न जगत में और ।।

चारिहू बरन, चारि आश्रम को मूल यहो
याही ते सकल अबादानी[१] होति बस्ती है ।
बंस बढ़वारि, व्याह-सादी-भोग-राग-सुष
है रहत यामें पुन्य-दान अबरदस्ती है ।

---

१. मु० अबोदानी

'सुकविगुपाल' याते जगत के जीवें जीव,
सदां सब ही को भयो करें परवस्ती हैं ।
तनकी दुरस्ती रहे, धनकी न सुस्ती, तो पे
प्रथिवी के मांझ सरवोपर गृहस्थी हैं ।।

स्त्रीवाच

दोहा

कुटम सुसील सपूत सुत, अनगण धन प्रभु देह ।
तब गृहस्त हैं कें कछू या जग में जस लेइ[1] ।।

कवित्त

रातिदिनां यामें केई परच लगेई रहैं,
आयो-गयो, व्याह गौनों, गमी औ' बधाई हैं ।
विषय के भोग कर्म जोग के वियोग रोग[2]
जिकिरि फिकिरि मारें आपनी पराई हैं ।
'सुकविगुपाल' भाव भजन बनै न यामें,
फँस्यो रहै सदां मोहजाल में महाई हैं ।
करत कमाई, तऊ रहै हाइहाई, याते
सबते सवाई दुषदाई गृहस्थाई हैं ।।

ब्रह्मचारी

हरि-गुर-अगनिह पूजिकें, साध सदां त्रकाल ।
ब्रह्मचर्य ब्रत धारि गुर ग्रहैं बसै सब काल ।।

---

१ है० मु० बरनी कर तब बरि कछू तब गृहस्त सुष लेइ ।
२. है० मु० योग

कवित्त

पूजत रहत हरि-गुर-अग्नि सूरज कौं,
साधिकै अकाल कर्म करौ सुभकारी कौ।
मन वस करि, पढ़ि, वेदन को भेद जानैं
गुरकुल बसैं तजैं मादक अहारी कौं।
'सुकविगुपाल' होई चतुर सुसील अद्-
-मान प्रयोजन मात्र करैं विवहारी कौं।
सत्य अुरधारी, ब्रह्मचर्ज ब्रतधारी, भारी
करनी परति क्रिया बालब्रह्मचारी कौं॥

स्त्रीवाच

दोहा

देह टटैं, सुष सब मिटैं, घटैं कुटम सौं हेत।
कष्टा बहु करनी परत ब्रह्मचर्ज ब्रत लेत॥

कवित्त

सांझ औ' सबेरैं भिच्छा लांमनी परति, तजि-
भूषन, अरगजादि पट सुषकारी कौं।
जटा, कुस, मेषला, कमंडल, अजिन डंड,
नव-गुन धारि मुष देषनौ न नारी कौ।
हुकरि दयाल, इंद्री-जित नित मुष गुर-
अग्या पाइ पानौ परैं भोजन की थारी कौं।
वेद मत-धारी, ब्रह्मचर्ज लेती बारी, भारी
करनी परति क्रिया, बाल ब्रह्मचारी कौं॥

वानप्रस्थ

गहि बिसवास निवास वन सदा सुसाधत स्वास ।
बानप्रस्थ गिरहस्त ते उढत बहुत सुपरासि ।

कवित्त

मुनिन के सम तेज आवत हैं गुण, पुनि
रिपिन के लोक भोग भोगै निज दास के ।
'सुकविगुपाल' निरविघ्न बनवास बसि
जानै निज रूप रहै आसरे न आस के ।
जप, तप, हौंम, के अद्वैत मत साधन मैं
व्यापत न दुख अहमपता के फाँस के ।
ज्ञान-परगास होत, ब्रह्म पास वास, सुख
कहे नहिं जात बानप्रस्थ सुख-रासि के ॥

दोहा

आय जबै बारह बरष, करै सुवन मैं बास ।
ब्रह्मचर्ज ते होइ जब बानप्रस्थ परगास ॥

कवित्त

धारे जटा रोम, तन डड औ' कमंडल कौं,
बकुल अजिन अगिनि राखे परगासी कौं ।
पवन'र धूप, जल, सीत, सदा सहै, अनसन
बन गृहै, राखै काहू की न त्रासी कौं ।
'सुकविगुपाल' अन्न काचो, रवि पाचो, पात
काल पाय पकै बिन जोते वन्न बासी कौं ।
रहि उपवासो, ध्यान राखै नहिं पासी, धर्म
सबते कठिन बानप्रस्थ सुपरासी कौ ॥

सन्यास

निरारंभ, निरदंभ नित, आतमराम सुप रासि ।
चारि बरन, आश्रमन में सरवोपर संन्यास ।।

कवित्त

आतमा को दरसी है, निजगति जानें बंध-
मोषहू में मानें, रापे काहू को न आस कों ।
सब सों सुहृद, सदां समचित सांति गहि,
होत महामना परब्रह्म रति तास कों ।
तजिकें सकल पचपात बकवाद है
नरायण-परायन सुकर्म करें दास को
कहत'गुपाल' बरनाश्रम के बीच याते,
सबमें धरम सरवोपर संन्यास को

इस्त्रीवाच

मानपमान समान नित, ग्राम ग्राम में बास ।
बडो कठिन तातें कछु, धर्म सधत संन्यास ।।

कवित्त

करनों परत ग्रांम ग्रांमन में वास, गूंगो
बावरो सो ह्वैकें, कर्म करयो करै हास के ।
देह कों न ढांकै, तजो बस्तु कों न रापें, ध्रुव
मरन कों मापें, अभिलाषै न प्रकास कों ।
सुकविगुपाल' कवो सिप्य कों न करें, सदां
विचरै अकेले तजि बासना की फांस कों ।
गहि बिसवास, सोवे जागें न निवास, याते
सब में कठिन धर्म्म साधन सन्यास कों ।।

*इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये वर्ने । श्रम प्रबंध वर्णनं नांम चतुरदसो अध्याय "१४"

पंचदशो विलास

सहर प्रबंध*

पुरुष वाच

संच करै सबसों[1] सदा सकी हूँ[2] सबही को अंच।
[3]जानत नहिं परपंच कौं, जिनते कहियत पंच ॥

कवित्त

रंक करैं राउ, अरु राउ को करत रंक,
दूपन को मेटि देत, आवति न अंच है।
काहू सौं न सकै, चाहै सोई करि सकै, करि
दया उपकार, वहै पापन तें बंच है।
जिनकौं[4] 'गुपाल' सब[5] सौंपि देत न्याय,[6] तिन
मांझ आप बोलै परमेसुरहू संच है।
आवति न लंच,[7] रूअ करत न रंच, नहिं
जानें परपंच, जिनै[8] कहियत पच है ॥

---

* मुद्रित प्रति में शीर्षक इस प्रकार है: अथ क्षत्रिय रुजिगार, शहर प्रबन्ध, संगादि सरदारी।

१. है० मुपते, मु० मुपसो २. मु० सबन ३. है० मेटतु जो परपच को सोई साचो पच ४ है० सुरवि ५. है०, मु०, राम, राजा ६. है० न्याव, मु० न्याऊ, ७. मु० अच ८. मु० अर ९. है० मु० तिन्हैं

स्त्री वाच

दोहा

[1]पंचायति में पंच जो, करै न सांचो न्याइ।
[2]ताकी पीढ़ी सातहू, सदां नरक में जाइ॥

कवित्त

डोलनो परत, झूठ[3] बोलनो परत, रूप
पक्ष न करत जाको,[4] सोऊ देत गारी हैं।
'सुकवि गुपाल' धर्म-संकट परत न्याव
मामल के छानत में लगत अवारी हैं।
अरनौं परत, कछु हाथ न परत, भली
बुरी के करत यामें पाप होत जारी[5] हैं।
[6]चिंता रहै भारी, चारी करै नर नारी, याते
पंच कों पँचाइति में होत दुख भारी हैं॥

सिरदारी

पुरुष वाच

सुघराई सरसाति, सब सों सरस सनेह नित।
स्यों सोभा सुख सात, सिरदारी कृत सहज में॥

कवित्त

जाको बूझ होति सदां राज दरबार, गुन-
मंडन के मुख ते बड़ाई गाइयति है।

---

१. है० जो कहुं साचो पंच है, करै नहीं कहुं न्याय २. है० जाको
३. है० सांच ४. है० ताको तेई ५. है० पाप लागत न वारो है।
६. है० लोग करै प्यारी।

बाँधि के मुजाद तोल आपनी जनाइ,[1] पर
फारज बनाइ, अरि छातो दाहियति है।
'सुकविगुपाल' बड़े मामले सुधारि करि,
जाको[2] घर बैठहीं कमाई पाइयति है।
होत मुषत्यारी जाहि चाहै नर नारी बड़े
भागिन ते भारी सिरदारी पाइयत है॥

स्त्री वाच

सोरठा

सिर प्यारी परिजाति, सिरदारी कृत सहज में।
बिना तोल दरि जाति, याते कीजो समझि के॥

कवित्त

राति दिन यामें धाये जात हैं भिषारी लोग,
सौगुनो भरम धरें आमदि की बारी में।
घेरे रहैं लोग, कँई लगे रहैं रोग, आजें
जाजें राठ याजे बात रहैं मुषत्यारी में।
'सुकवि गुपालजू' पधाजे काज जाय साधि
भरनी परति झूठी साँची[3] दरबारी में।
मार परे भारो, बुरो कहै नर नारी, बड़ो
भारी होति प्यारी, या करत सिरदारी में॥

धोकदारी

पुरुष वाच

धोते देतह लेत में, रंगि दमयती बार।
होत आपने थोक में, थोकदार सिरदार॥

---

१. ह० जनाय २. ह० ताको ३. ह० साँची

कवित्त

जाकी थोकदारी घर बैठें सदा आयो करै,
पायो करै हुक्म सदा सबवे अगार कौं।
'सुकवि गुपाल' सादी, गमी, औ' बधाइन में
जाके हाथ सब काम होत बिवहार को।
मार्‌यो करै माल सदां न्यौते औ पनीतन
कौं, पावै मुपत्यार दैनी दक्पना की बार कौं।
दबैं नरनारि रुप राखें सिरदार याते
बड़ो सुपकार रुजिगार थोकदार को॥

स्त्री वाच

दोहा

गारी दीयो करत सब, लै-लै जाकी नाम।
याते बड़ो निकाम यह, थोक-दार को काम॥

कवित्त

थात बहु बंस जाते जात निरवंस लोग
कर्‌यो करै पुस बैर करि करि मारो को।
माल लाइ कहूँ को पचाय जाइ जब तब,
मूंड फूटयो करै, दैनी दक्पना की वारो कौं।
करि करि चारो, गारी तारो दै दै लोग, अहं—
'कारो जे 'गुपाल' सदां दीयो करें गारो कौं।
देवे धरकारी, कोस्यो करे नरनारी, याते
बड़ी दुपकारी, यह काम थोकदारी को॥

मुहल्लेदार

पुरुस वाच

रुप रापें नरनारि सब, घर घर होइ मुपत्यार।
हल्लो भल्लो लगतु है, होत मुहल्लेदार॥

कवित्त

मानें सब कोइ, जो कहै सो काम होइ जाय,
सब ते पहले बात बूझें जाइ जाइ कें।
झगरेअर' झाटें, बट-चुट लैन-दैन जाके,
हाथन है निपटें अनेक काम आइ कें।
'सुकवि गुपाल' कंई मिल्कि-मकानन के
मांमिल करत, घूंस पच्चर कों पाइ कें।
सुप सरसाइ, सिरदार गन्यो जाइ, होइ
दरजा सिवाय, या मुहल्लेदारी पाइकें॥

मुहल्लेदार

स्त्री वाच

रापें जब नरनारि की, घरघर की सुंम्मार।
तबै मुहल्लेदार की, बूझ होति दरबार॥

कवित्त

रापनो परत घर घर को हवाल यादि,
आय रहै दोस भलो बुरी में महल्ले कों।
हंड चौरीदारी, दैनी परति बुगाहि, लोग
अंचे-अंचे डोलें, काम परें रल्ले-झल्ले कों।

'सुकवि गुपालजू' फरेब की वहै जो बात
अल्ले-मल्ले लोग आय पकरत कल्ले कों।
पायो करैं पल्ले, लागे रहैं रल्ले टल्ले, याते
हूजै न मुहल्लेदार, भूलि कैं महुल्ले को॥

जुमेदार

पुरुष वाच

वढ़ै हुकम हासिल सदा, सबही मों होइ हेत।
काहू जिल्ले की जवैं, जुम्मेदारी लेत॥

कवित्त

बूझ होति भारी जिमीदारी सिरदारी बीच,
होत दरबारी, काम परैं नर-नारी कों।
'सुकविगुपालजू' हुकम रहै, बस्ती बीच
करि परदस्तो, सदां रापत हुस्यारी कों।
चुंगी औ' करैंनां घर बैठे घूस आयो करै,
पायो करैं हक्क मो निकारि चोरीचारी कों।
बैठि कै सवारी, करै देसकी सँभारी, याते
सबही मैं भारी, यह कांम जुमेदारी को॥

स्त्री वाच

दोहा

नितप्रति हित करि लाइ चित, जो कोई देइ हजार।
काहू जिल्ले को तऊ न, हूजै जुम्मेदार॥

कवित्त

डर रह्यो करत डकैत ठग चोरन को,
    चास-वास लेत, कढ़ि सकत न हल्ले कों।
चोरी की 'गुपालजू' लगाइ कै सुलाक लाइ
    देनो परै मुद्दा आप जाय दूरि पल्ले को।
सूतरी गअे पै लाइ रस्सा देनो परै, लै—
    परै जो झूंठ चोभू तब प यो करै टल्ले को।
सूधि जात बल्ले, कोअू कहतु न भल्ले, याते
    भूलि कैं न हूजे जुमेदार कहू जिल्ले को॥

जाति चौधर

पुरुष वाच्य

चौधर के रुजिगार की बड़ी जगत में बात।
जाति-पाँति उपकार की, होतिह ताके हात॥

कवित्त

ब्याह-बधाई' हु[1] सादी गमी मुखिया सबही के बन्यो रहै न्यारो।
    काज सँभारतु है सबके सदा थोरे-घने में करै निसतारो।
डडे परै तकसीर परै कोअू देउ' रु लेत न रोकन हारो।
    राइ 'गुपालजू' पचन में नित चौधर को दरजा बड़ो भारो।

---

१. है- औ'

स्त्री वाच

सोरठा

पंचन में दरि जाति, गारी देत रुपात पै।
रुचयो रहै दिनराति, चोरी कौं मरमत सबै॥

कवित्त

पकति जुवांन, वात सुनत न वांन, वेसरम
हैं निदांन हौनों परत लरत में।
कहत 'गुपाल' देत नेगिन[1] को लाग जाको
उतरति पाग गारो पातु हैं मुफति में।
घूस उघरत, मर्म चोरी को घरत, पाप
करत डरत[2] दीण दुषो सौं अरत[3] में।
भूपन मरत, नहीं दौलति जुरति, बुरबाई
सिर परति या चोघर करत में॥

चबूतरा की चौघर

पुरुष वाच

सब बजार मैं[4] हुकम करि, लौऊं घरहिं कमाइ।
चोघर पाग बंधाइ कैं, चोघर करहुं बनाइ॥

कवित्त

मानें आनि-जांनि छै रकांनि पैं हुकम सो
बिपारिन ते मिलि माल मारैं आठो जांम मैं।
लै करि 'गुपाल' सिरोपाव सिरकार ते चबू-
तरा की लाग बंठ्यो लोयो करैं धाम मैं।

---

१. है० नेगिन २ है० गदत ३. है० अरत ४. है० पै

बाँधि तोल हासिल, करीना बनोबस्त, बहु
जिनसि के निरपनि, कर्यो करैं[1] गाम में ।
होत परकाम, फैलै देसन में नाम, होत
सेते सुष धाम सदा चौपर के काम में ॥

स्त्री वाच

दोहा

राजकाज के कांम को, चौपर कीजं नाहि ।
मार-धार भारी रहै, बड़ो दुख या माहि ॥

कवित्त

गारी दयो करैं चपरासी मजकूरी लोग,
सहुयो करैं[2] राजदरबारन की घाम कौं ।
आइ कै जगामैं, अधराति पिछराति लोग,
फौज के परे पै जब भरत[3] गुदाम कौं ।
'सुकविगुपाल' बुरा रहतु बजार को औ'
चुंगी औ' करीना जाकौं बंद करें गाम को ।
पावै न अराम, विच्यो डोलै आठों जाम, याते
भूलिके न कीजे गाम[4] चौपर के काम को ॥

गाम चौपर

पुरुष वाच

जोरि-जोरि धन मो धरत, जग में होत उदोत ।
सब कोउ जाको मो धरत, जो घर चौपर होत ॥

---

१. है० गान २. है० नित ३. है० काम पेट दे ४. है० कहू

कवित्त

चली आमें जाकों, गांम गांमन ते भेंट, घूंस—
पच्चर अनेक रिपि दबै ताको ताक ते।
'सुकवि गुपाल' नेंक दवत न कही ज्वाब,
साल के परे पै, ज्वाब देतु है अराक तें।
गांम-गांम, घर-घर, देस में करै सो होइ,
मामले बनाइ बड़ी रहत मजाक ते।
मानें जाकी धाक, सब मानें यस्तपाक, दब्यौ
करत फजाक, देपि चौधर की धाक ते॥

स्त्री वाच

दोहा

काहू के नीचें जबै, गाम बिसौ दबि जाय।
जब चौधर के कांमु में बड़ौ दुष्प होइ आइ॥

कवित्त

आठ पाइ यामें नित नौ की रहै भूप, सूकि
जाइ गूदा-गात, दिन राति रहै भौ घरी।
'सुकवि गुपाल' घूस-पच्चर मैं लेत, लोग
गपत अकस, पाप होत या में सौ घरी।
कारपाने बिगरे पै, बूझत न कोऊ तब,
करज के नांतै जाय मिलत न जौ घरी।
दाही औं' घरी सौं न बरी सो मिल सकै याते,
भूलि कें न हूजे गांम-गांमन को चौधरी॥

ठाकुर

पुरुष वाच

रन में सकै न काहू मूपो देषि सकै, झूंठ
मुष सों वकै न तकै पर धन माल कों।
सांच मुष बोलै, नही घर-घर डोलै, सदां
एक्सम जानै, व्रदध. तरुन र बाल कों।
घूस नहीं पोंद, झूठो करै नहिं न्याय, देषि
कुटमें सिहाय, फवों मारै-नहिं गाल कों।
हिय मे दयाल, सदां रहत पुस्याल, सोइ
जानियै 'गुपाल' बडो ठाकुर सुचाल को ।।

स्त्री वाच

दोह

चुगल-चोर घुसिहा बड़ै, तकै परायो माल ।
कपटी लपटा लपटी, ठाकुर है अजकालि ।।

कवित्त

अंठि बांधें पाग, कुआ बागन में अंड़ै, रापै
पीठि पाछै मूंठि वंद, चूतर पै ढाल के ।
चूहरी-चमारि, नटी-नाइनि सौं नेह करि,
जाके द्वार-द्वार न्याय करत विहाल के ।
लंवे कों पक्रठे न्यारे देवे कों रहत जग-
जुरै, दुरै घोंस औ' बुला,ए दरबार के ।
मूंठी मंप, घालि वकै परधन-शाल, सब
अंसे रहे ठाकुर 'गुपाल' आजुकालि के ।।

जिमींदार

पुरुष वाच

सोरठा

जग में जागति जोति, करत जिमींदारी सदा।
बूझ राज में होति, गाम चलें सब हुकम में ॥

कवित्त

धारि कें हथ्यार धारि आरि को निहारि मार
मारत में हारि ना मानें सिघ स्यार तें।
राखे परिवार, घरबार कों समारि, निराधार
को अधार नहि टूटैं हितू यार तें।
कहत 'गुपाल' लोग भुमिया-भुवार, सिर-धारन
हजारन में रहै सदां प्यार तें।
करे खेत बयार, सबही के मुखत्यार, देखि—
दबै दरबार, जिमींदार की बहार तें ॥

स्त्री वाच

दोहा

करत जिमींदारी सदा, अे दुख होत सरीर
सदां राजदरबार की, परें आय कें भीर ॥

कवित्त

यामें धौंस तलब की रहति अुपाधि, सेना
पररें अगारी, बाको रहै खेत बयारी में।

भेंट देनी परति, मजारदार आमिल कों,
लगै मलजाम, कहूँ होत चोरी चारी में।
'सुकविगुपाल' बड़ी चाहियै हुस्यारी जो
मदारी के करेते माल मिलै मुदारी में।
होति मार-मारी, बिसो दवत में भारी, बड़ो
भारी होइ ख्वारी, या करत जिमींदारी में

मजारदारी

पुरुष वाच

गाम मजारो[1] लेत में, जग में जागति जोति।
भिक्षुक दीन दुचीन की, परवस्ती बहु होति॥

कबित्त

जामें नित भेंट, पलैं जीवन के पेट, सदां
बन्यो रहै सेठ, मजा मारत तिजारे में।
बार न लगति होति आमदि हजारन की,
करि के बहार, छक्यो रहत तिजारे में।
रावत 'गुपाल' हुकुम हासिल हमेस जाको,
ताको दरबार बन्यो रहै गुलजारे में।
देव हर हारे, बात मानैं बूढे बारे, याते
भारे सुख होत लेत गाम के मजारे में।

स्त्री वाच

दोहा

देर न लागै परखते, सुरखत लागै बार।
याते भूलि न[2] कूजिये, गाम मजारेदार॥

---

१. ह० मजोर २. ह० कबहुं न

कवित्त

दाँम घटै गामैं, मारे मरैं, जिमीदारी के पेचन तें तन छीजै ।
खेती में होत 'गुपाल' कछू न, किसांन को जो परबस्ती न कीजै ।
हाल ही होत हवाल बुरो, जो जवाल परे पै जमा नहिं दीजै ।
भूपही जीजै, कि लै विष पीजै, पै भूलि कै गांम यजारें न लीजै ।

ग्राम बैनामा

पुरुष वाच

त्योर होत हैं राजसी, राजसीन सौं हेत ।
जिमींदार दबते रहैं, गांम बिनामा लेत ।

कवित्त

रैयति से रहैं सब जाके जिमींदार लोग,
दबे सब जाति सिरकार रहैं हेत में ।
'सुकविगुपाल' घर धूरी रहै हाथ सब,
जाही को सु होत ग्रण-तरु ग्रितो पेत मैं ।
ऐंठिबो करत, जमा पेठिबो करति, औ'-
सदां कौं चल्यौ जात, नहीं रुकै लेत-देत में ।
पावत अरामां, रापैं राजसी सुसामां, भोग
भोग्यो करे धामां, सो विनांमां-गांमां लेत मैं ॥

स्त्री वाच

दोह

दीसैं महुँ नहिं बांम को, नाम होत बदनाम ।
पावैं नहीं अराम कहूँ, बैनामा लै गांम को ।।

कवित्त

पहले परचने हुआरन परत हवे,
पाछें सिरकार में भरतु रहै दामां कौं।
घूस दे अनेकन कौं, नामा को लिखावे पत्र,
तऊ डर है जिमींदारन की धामां कौं।
'सुकवि गुपाल' लोग रापने अनेक परं
होत जब काम छोड़ि बैठें निज धामां को।
जात जिय जामा, राज फिरै डेल डामा होत
लीजियँ न नामा याते गामां के बिनामा कौं॥

किसान[1]

पुरुष वाच

गाम बिनामा[2] छोडि कै, षेती करिहौं थाम।
सब जग जाके करे तें, पान पियत निज धाम॥

कवित्त

सालहू बिरहू दहौ दूध के रहत सुष
लीयो करें स्वाद, औ रसाल नई नई को।
नितप्रति रहै सातौ पौनि पै हुकम,—
सिरकार में रहत भलो ठसा ठकुरई को।
जीवै जग जाते, जीव जंतु कौ कनूका मिले,
पिलै भली बात, यह काम मरदई को।
कहत 'गुपाल' बीस नहूँ को कमाई, याते
सबही में भलो यह पैसो रिसनई को॥

---

१. है० पेतो   २. है० पजारो

स्त्री वाच

दोहा

पेती करत किसांन के मो ते दुप सुनि लेउ ।
हर लेकें पिय पेत में, भूलि पाँव मति देउ ।।

कवित्त

कारो होति देह, सहै सीत घांम मेह, नित
रहै लेह देह, सुप नहीं पांन-पान कौं ।
बरहे में बास, रापै बौहरे की आस, ईति
भीति ते उदास. गिर मानत इमांन को ।
राजे देत पोता, हर जोता, सुप सोता, नांहि
पोता दिन यौंही, रहै लेस न सयांन को ।
देह में न मांस, रहै हाथ में न दांम, याते
कहत 'गुपाल' कांम कठिन किसान को ।।

स्यारी

पुरुस वाच

चारो घनो होइ, बड़ो भारो सुप रहै, सब
कोई करि लेइ, यामें कांम नहीं प्यारी कौं ।
थोरो परैं बीज, थोरि लागति, थोरे दिन में–
(बहुत) कमाय लाय डारैं घर-बारी कौं ।
'सुकवि गुपाल' हाल लाल परिजात, कछु
लालो नहिं रहै, कुआ पल्लर की स्यारी को ।
बनि जाय न्यारी, चैयै बरहा न बगारी, यातें
बड़ो सुपकारी, सदां पेत यह स्यारी कौं ।।

स्त्री वाच

परैं मड़सारन, गमारन कौ पानी, होत
गुरः सन रावत ही हारि जात जेती हैं।
'सुकवि गुपाल' पूरो किछानं न धाजैं, कछु
गरज न सरैं, फोग्रू करो क्यों न बेती हैं।
चारि मास रहैं, असमांन ही कौं मुप वयें,
सुप नहीं अूंचें नीचें पटपर रेती हैं।
पसम कि सेती, होति घने मेह हेती, बहु
प्रांणन कौं लेती, यह स्यारी कौ सुपेती है॥

उनहारी

पुरुष वाच

स्योसत कमेरे, घर हेरे जे सबेरे ही तैं,
पैरे बीच, साझो पट्टो मिलै विसेदारी कौं।
सुकवि 'गुपालजू' अुपज बड़ी होति, सेक-
-रन मन जिति आय परैं घरवारी कौ।
बढ़त 'गुपाल' दोमु साथि बीन साथि बरं-
-दाजो बड़ो दीर्स कुआ पत्थर की त्यारी को।
बोहरे मियारी, रुप रापें जिमीदारी, कवौ
आवति न हारी, अुनहारी बीच हारी कौं॥

इस्त्री वाच

हारी छकि हारिन कौ कारी परै देह, थकि
जाप बैठ भारी, बाकी रहै न अुनारी मैं।

पात जिय गोत, घना मानत म जोत सोत
देपत ही जात दिनराति अजा क्यारी में ।
चाहियँ 'गुपाल' बीच पादि बड़ी मारी, ओरो–
ढोरो डर त्यारी साक्षी रहें आमें ब्वारी में ।
बनति न न्यारी, बड़ी चाहियँ तयारी, याते
त्यारी ते सरस दुप होव अनहारी मैं ॥

पटवारी

पुरुष वाच

पेतन कों अब नाविहें, करि जरीब की सार ।
लिपें पढ़ें, कागद करें, बनि 'गुपाल' पटवारि ॥[१]

कवित्त

लिप्यो जाको मांनें, सिरकारहू प्रमांनें, मन
मांनें जोई ठांनें, जानें पेच जिमीदारी को ।
जेवरी परत, दांम पीता के भरत, जमा
घटि बढ़ि करत, करत मुपत्यारी कों ।
राज के फिरत, काज केते के सरत, जाते
जाके हाथ हैं कै होत कांम विसेदारी को ।
राज दरबारी, बूझ सब ते अगारी, यौं
'गुपाल कवि' भारी याते पेशो पटवारी कों ॥

---

१. है० में सोरठा : 'बनि गुपाल पटवारि, पेतन को अब नाविहें ।
करि जरीब की सार, लिपें पढ़ें कागद करें ॥"
इस कवि की यह प्रकृति मिलती है कि दोहे को चाहे जब सोरठे में परिवर्तित कर देता है ।

स्त्री वाच

सोरठा

और बरहु हजिगार, पटवारी नहि हूजिये।
याके दुष्प विचारि, कहति श्रवन सुनि लीजिए॥

सवैया

बाकी औ कज बतावत में, सो किसान को रिसहू ते मुप सूजें।
हाअु ही हाअु में टूटत पाअु, सौं सेना मदा सिरकार को मूजें।
"राय गुपालजू" पेतो में जात जरोब के कागद ते मन घूजें।
पूजें जु धाइ के, धाम में सूजें, पे गाँमन को पटवारी न हूजें॥

कवित्त[1]

जाकी अेक बात साची होति न हजारन में,
सबै घमकाय गरे काट्यो करें काम में।
"सुकवि गुपाल" घूस-पच्चर के लेवे काज,
करिके फरेबी, फूट रापें धाम धाम में।
हाकिम सों मिलि, करि अदकी गरीबन की
चोटी-परो कहि, पामी पारि देत काम में।
होत बदनाम, सब कहत हराँम, चाँदि
पिटै आठो जाम, पटवारिन की गाँम में॥

कानूगोह

पुरुष वाच

काम परै परगनन[2] को, बूझ राज में होइ।
याते कानूगोह को, बडो मजाफा होइ[3]॥

१ है० दूटगे पाप औ' २ है० म नहीं है ३ है० सब गाम
४ है० दरजा भारी जोइ

कवित्त

जेते पातसाही परमाने रहैं जाके हाथ,
जानतु हैं बात, परगनन की गोई कों।
सबते पहल,[१] जाके दसषत होत, राजकाज
में "गुपाल"[२] आइ पूछत हैं ओई कों।
बूदक' रु जोनां, चुंगी राज के करीनां, चंदा
पूछे ही पै मिलत फिरस्त मांझ कोई कों।
लिप्यौ[३] सही होइ, भेट देत सब कोई, याते
सबमें बड़ोई, यह कांम[४] कांनूगोही कौ॥

स्त्री वाच

गाम गाम परगनन कौ लिषत बड़ो दुष होइ।
याते कबँहु न जाय[५] कैं हूजे कांनूगोह॥

कवित्त

रापने परत रुजनामे-परमांने हाथ,
करनो परनि गांम गामन की जोह कों।
दैनो परे डंड, इर्च-पिचैं फंले भंट, जब राज
के फिरे[६] पै जो बराबर न टोह कौं।
काहू को "गुपाल" जो करी नां कब्ज करें तो पै
कृपन कंगाल कोस्यो करें करि कोह कौं।
होत बड़ो तोह लोग कर्‌यो करे द्रोह याते
बड़ो निरमोह रुजगार कानूंगोह कौ॥

---

१ है० सुकवि गुपाल २. है० के फिरत ३. है० लिषी
४. है० रुजगार ५ है० मूलि ६. है० बदलै

जामिनी

पुरुष वाच

जिमीदार ते लै जमा करू जामिनी जाइ।
दाम दिवाऊँ राज के, लाऊँ हाल[1] कमाइ ॥

कवित्त

मामले बनाइ कै, हजारन रुपैया लेत,
लेत अरु देत, हेत रहै सदा ही को है।
बूझ करै राज-दरबार-तहसीलदार
जिनसि के काटत मैं दीशी बरै घी को है।
"सुकविगुपाल" साहूकारे मैं बढति साषि,
माषि के जुबान सौदा करै सबही को है।
गाढो होत होकी, काम करत सब ही,[2] को, सदाँ
याते यह नीको रुजिगार जामिनी को है॥

स्त्री वाच

सोरठा

घर बैठो सुष पाइ, अरु मन आवै जो करो।
कीजे कबहुँ न जाइ, जिमीदार की जामिनी ॥

कवित्त

राज दरबार इत ऊत मैं फिरयोई डोलै
लालो करि नाहक पराय काज अरियै।

---

१ हि० बहुत २. हि० सही

टूटत में बाकी जो असामी भजि जाय कहूँ
दात रहै जब तब आप दाम भरियै ।
देत नहीं किस्त तो सिकिस्त लगि किस्त बात
सुकविगुपालजू फरेबिन ते डरियै ।
भूपैं दिन भरियै कि खाय विस मरियै
गामन के लोगन की जामिनी न करियै[1] ॥

तहसीलदारी

पुरुष वाच

छाँड़ि[2] जामिनी करहुँगो, गामन की तहसील ।
धन कमाइ कें लाइहु,[3] तनक करूँ नहि ढील ॥

कवित्त

गाँम पै हुक्म, परगने पै दवाब रहै,
चाब रहै हिय, मजा लेत सब ठारी में[4] ।
हाली औ[5] मवालिन में, होत[6] ज्वाव साली, हवि
साली नफा लालिन में, तेल बात सारी में ।
'सुकवि गुपाल' चली आमें सहुगाति-भेट,
सेठ बनि सदां, माल मारे मुपत्यारी[7] में
मोटो रहै भारी, कबहूँ न होति हारी, दब्यौ
करै जिमेदारी, सदां तहसीलदारी में ॥

---

१. है० अँगरेजी लोगन की नाजरी न कीजियै ।
वृंदावन प्रति में यह पाठ भ्रमवश हो गया है ।
ऊपर का पाठ है० और व्र० दोनों में है ।
२. है० छोडि ३. है० मुप पाइहों
४. है० नरनारी ५. है० दें करि ६. है० मजेदारी

स्त्रीवाच

"कविगुपाल" जो आपनों राख्यो चाहत सील ।
तौ कबहूं नहिं कीजियै, गांमन की तहसील ॥

कवित्त

त्यागि निज गांम, घिर्‌यौ रहै आठों जांम, होइ
नांम बदनांम, कांम जोम जरबील कौ ।
करने परत है कसाई कैसे कर्म, जब
राज बदले पै, जो बतावत न टोह कौं[1] ।
मार[2] बध[3] डंड यैं लिलाम करि लेत यातें
कहत "गुपाल" यह काम न असील कौ ।
चाहत जो सील, माफ कीजै तकसील, तौपै
भूलिहू के कीजियै न कांम तहसील कौ ॥

सहना

पुरुषवाच

गई-गाम में जाइ के तब कोऊ सहना होत ।
खेत मांझ विलिहार ते, तब यतनें सुपहोत ॥[4]

कवित्त

खेत औ' कियार जे निगाह में रहत, जिमी-
दारन ते माल मारयौ करै दिन-रैना कौं[5] ।

---

१. है० राज के पद्‌मैं देन कोई करै ढील कौ ।
२. है० मारि ३. है० मु० बांधि ४. है० मु०
"जमींदार के गाम को जो कोई सैंना होइ ।
खेत प्यार विलिहार तो पै गुर विरमैं मोइ ॥"
मुद्रित में तुक होत । होय भी है ।
५. है० मु० को काम नित परै लेना देना कौ ।

'सुकविगुपाल' चांक रासि पें लगाइ पिति–
हारन ते काम सदां परें लेंना-देंना कौ[1]।
बने[2] रहें मीर, नित पात[3] धाड-धीरि, सदां
पौढ़ि कें अथाइन में, लीयौ करें चेंना कौं।
देपें मजा नेंना, कमी कछू की रहै ना, याते
बड़ौ सुप देंना रुजिगार यह सेंना कौ।

रतीवाच

दोहा

घर छोड़ें गामन अरें, परें पराअे आन।
याते भूलि न हूजियें, सेंना पेत किसान॥

कवित्त

मारनौ परतु है गमारन ते[4] मूंड पिति
हार जिमींदारन ते नित तन लूजियें।
चांकहु लगायें, चित चिंता ही में रहें,[5] रासि
घटि वढ़ि जायतौ पकरि करि मूंजियें।
'सुकविगुपाल' याके पहरे कौं लेत देत
पायवे कौं भोजन, वषत पें न पूजियें।
कवहौ[6] न चेंना, दुप देप्यौ करें नेंन[7] याते
मेरे मांनि वेंन,[8] कहू सेंनां नहिं हूजियें।

---

१. है० मु० माल पारटी करें दिन रेंना कौ।
२. है० वन्यौ ३. है० पाद
४. है० मु० जमींदारन सौं मदां मुड, और पितियारन ते भित तन धुजिए।
५. है० वहूं 'कहौं'। इस शब्द से अर्थ अधिक स्पष्ट होता है।
६. है० मु० पसहूं ७. है० मु० नेंना ८. है० मु० वेंना

ग्वार

पुरुस वाच

जबहू दिवारी के दिना, गोधन पूजा होइ ।
ग्वारन को आदर करे, घर-घर में सबकोइ[1] ।।

कवित्त

नित गोरज[2] गग में न्हात रहैं परष्यौ करें पीठें हजारन कौं ।
बहु पात रहैं सदा दूध दही, बन को रहि लेत बहारन कौ[3] ।
मिलि हेरी दै हेरी कौं गायो करे, जब जात है गोधन चारन कौं ।
यह 'राय गुपालजू' याते भलो सब में रुजिगार गुआरन को ।।

स्त्री वाच

दोहा

अेक न विद्या आवही, कोरो रहत गमार ।
याते जाय कवौ[4] नही हूजे कबहो ग्वार ।।

कवित्त

झार झूकटन ही में डोलत रहत, अुजरे–
पें[5] पेत बचार, लगें मारि ग्वारिया को है[6] ।
घर छोड़ि बरहे को वेवनों परत, परे
रायनी सम्हार आई गई को सुवाको[7] है ।

---

१ मु० ग्वारन को मारी सबै घर घर आदर होई । २ मु० गोरस
३. मुद्रित प्रतियें प्रथम और द्वितीय चरणों के उत्तरार्द्धों में परस्पर विपर्यय-विनिमय है । ४. मु० कहूँ
५. मु० 'उमेरेवे' है । पर इसका कोई अर्थ नहीं है ।
६. मु० गारी भार याको है । ७. मु० सुवाको है ।

'सुकविगुपालजू' कहावत गमार ग्वार,
बिनटत पोहे[1] दाम देने परें ताको[2] हैं।
बुरी चहुँधा को, तम कारो होत ताको,[3] याते
सब में लराको, यह कांय ग्वारिया को हैं॥

[4]"इति श्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये सहर प्रबंध
वर्णन पंच दशो अध्याय"१५'

---

१. पोहो २. जाकौ (मु०) ३. जाकौ मु०)
४. मु० में -'अति श्री दंपति वाक्य विलास नाम काव्ये प्रवीजराय आत्मज गुपालकविराय विरचत शहर प्रबंध वर्णन नाम नवमो विलास: ।'

षष्ठदस विलास

राज प्रबन्ध[1]

पातसाही[2] : पुरुषवाच

पुरुष वाच

राजा-राव-राना कर जोरे आगे ठाढे रहैं,
    निरख्यो जात अंत में मुलक सब ताई को।
'सुकविगुपाल' चारि सूबन पै हुकम ताको,
    जाके रहै जोर सो जेजिया न खाई को।
वजीर नवावन के रापने परत रूप,
    मुलक अबाद करनो परैं सबताई को।
होत बातसाही, परि जान बात साही, याते,
    बड़ा आतसाही, यह नाम पातसाही को॥

स्त्री वाच

करने परत मनसूबे सब सूदन के,
    औरन परच करिबे को चैंचे जाई को।
'सुकविगुपाल' मुसलमानी ही में मिले थे,
    हिंदमानी माझ मिले कबहीं न काई को।
वजीर, नवाबन, के रापने परत रूप,
    मुलक अबाद करनो परैं सब ताई को।
होत बातसाही परिजान बातसाही याते,
    बडा आतसाही यह नाम पातसाही को॥

१. मु० अथ राज प्रबन्ध लिख्यते राज रविवार।
२. यह दो विषय है० मु० में नहीं है।

नवाबी[1] : पुरुष वाच

जेते पातसाही सुष भोग्यौ करै नितप्रति,
जाके हाथ रहै पर्च सूबे के हिसाब कौं।
'सुकविगुपालजू' हुजूर मे करै सो होइ,
दुलदै न कोऊ सब यारें-धूरि पाय कौं।
करै सर मुलक, अनेक दाम पावन सौं,
चायन सौं न्याय निबरावै राय राव कौं।
दबै उमराव, देस मानत दबाव, जाते
होत बड़ौ रुवाब पातसाही मैं नवाब कौं॥

स्त्रीवाच

पावै छुटकारो न निसाफ औं हिसाबन तें,
जोबन ही जात गुप नाद उमराव कौं।
करि न सकत कोई बात गौरि माव भन्त
होइ जात हाल यामें पी करि सराब कौं।
'सुकविगुपाल' घने चैपे दाब-दाब तब,
पावत है चाव दूर रहे परन्नाव कौं।
परत दबाव जब, रहत न आब, बड़े,
होनह खराब काम करि कै नवाब कौं॥

राजसुष[2] : पुरुष वाच

ईस्वर कर कहाव हौ, होइ[3] सब को सिरमौर।
रजई के सम सुष नहीं तीनि लोक[4] में और।

---

१. यह विषय है. मु. मे नहीं है।

२ मु. राजा व्यपार ३. मु. हैं ४. है. मु. कोउ जगत

कवित्त

परम प्रताप परसिद्धि देस देसन में,
प्रजा प्रतिपाल पुन्य पन प्रगटाइ कै।
साधि सत्य-सील, कोस देस कौ वढाय सत्रु—
सासन कौं[1] नासन, कै उग्रता दिपाइ कै।
'सुकविगुपाल' दान दुनन[2] दिवाय, सर—
मुलक कराइ वुध वलहि बढाइ कै।
आम कै हजूर, सुष रहै भरिपूर, बडौ[4],
आवत सहूर, नृप पदवी कौं पाइ कै॥

स्त्रीवाच

सोरठा

देषत सुष अधिकाइ, पुन सुष दुष ही रूप है।
तीनि लोक में नाँहि, नरपति के से दुष कहूँ॥

कवित्त

सभासद जुत, पावै नरक में बास, काम—
–क्रोध–लोभ मोह–मद–मत्सर बढाअे में।
बिदुदति अनेक, ज्ञान-ध्यान न विवेक, बने
भारी भय हीन, जामैं[5] रिपि के दवाअे में।
'सुकविगुपाल' जावै[6] धन के गृहे भौं पाप—
लागत सराप, आप प्रजा के दुषपाअे[7] में।
तीनि लोक पायैं तृष्णा घटै न घटाअ, याते
सबनै सवाअे दुष राज-पद पाअे में॥

---

१ हे० कैं २ हे० दौनता ३ हे० मु० दौनन ४ हे० मु० कहू।
५ हे साम ६ हे मु नार ७ हे दवाय ८ हे मु आयै

दीमानी : पुरुषवाच

द्विज दीनन कौ दान, गुनमानन कौ सनमान।
मान होत सब देस में, भऔ दीस[1] दीमान ॥

कवित्त

राज कौ पईसा, जमा होन सब जाकें आय,
ताके हाथ परच रहत राजा रानी कौ।
जाकी[2] बांधी–टोरी कौ न कोई रोकि सकै, ताकी
महर भऐ पै काम होतु है जिहांन कौ।
'सुकविगुपाल' न्याव मामले अनेक करि,
सीयौ करै भुप भलै सेई रजधानी कौ।
होत बड़ौ दांनी, सदा करै[3] अबादानी, बात,
देसन में जांनी, जाति करत दिमांनी कौ ॥

स्त्रीवाच

दोहा

न्याव मामले परत में, अरु हिसाब कौ पोत।
रहै बड़ौ डर रान कौ, देस दिमांनी होत ॥

१. हे० देग २. ताकी ३ है. रावे

राजचाकरी[1]

पुरुषवाच

मत्र वकील पजानची दाना दक्ष दिमान।
अरु वक्मी रुजगार करि, लाँऊ धन ऽ प्रमान॥

मत्री कों सदाई सब मान्यो करें मत्र औ'
वकीलई में राजा रुत राप करें जने है।
दानपुन्य होत दाना दक्ष ही के हाथ औ
पजानची के हाथ धन सदा रहै तेन है।
चोबदारी माहि परें सखती को काम थाइ
है कें हलकार महुं मागी मौज लेते है।
सुकवि गुपालजू कहे न जात येते इनि
चाकरी में चाकर को होत सुष तेते है॥

स्त्रीवाच

राज्यधान खानो परें, करत चाकरी माहि।
मो ते सुनि रुजगार ये, इतने कीजै नाहि॥

मत्रई में साची कहे मालिक रिसैहे, औ'
वकीलई में मदा परदेस दुष रहिहो।
दानादक्ष ह्वेहो नहि दें हो ताके बुरे ह्वेहो
दौलति संभारत पजानची ह्वे बहिहो।
चोबदार माँहि ठाडे राह है दरबार द्वार,
बनि हलकार गरा आगें जाम वहिहो।
'सुकवि गुपाल' मेरी बात को न ताहिहो,
तो सबते बहुन दुष चाकरी में नहिहो॥

---

१ यह प्रसग 'पू' और 'मु' म नहीं है।

कवित्त

करत भलाई दुरखाई आइ रहै हाय,
भले बुरे मांमले के बीच के परत मैं।
चुगल-चवाइन सौं, कांप्यौ करै देह, डांडि
सीधी जात नेक मैं फरेबी निकरत मैं।
'मुकविगुपाल' राज–काज कौ रहत[1] बोझ,
मार्‌यौ जात राजन के क्रोध के धरत मैं।
पाप की निसांनी होत मांनी अभिमांनी, मति,
रहति दिमानी, या दिमांनी के करत मैं॥

कामदारी[2] : पुरुष उवाच

केतिक केतिक नरन के, कढ्यौ करत वर कांम।
कामदार के कांम ते, होत जगत में नांम॥

कवित्त

होति मुपत्यारी, अधिकारी सब बातन की,
जाके हाथ है कै होत कांम दरबारी कौं।
'मुकविगुपाल' निज अकलि के जोर जोर,
सोर करि करि माल मारे नरनारी कौं।
सज कौं बनाय, दरबार के निकट रहै,
आपने अगारी नहीं गनै धनधारी कौं।
दबै कारबारी, बात थामै सिरकारी, याते,
सबही मैं भारी यह कांम कांमदारी कौं।

---

१. बोझ राज को रहत।

२. यह विषय मु. में नहीं है।

स्त्रीउवाच

दोहा

जाही में भरमार नित सब कामन को होइ ।
भलो कहै कबहीं नहीं कामदार को कोइ ॥

कवित्त

मिलै न भलाई, कहै कराम कसाई, मुख,
छाइ जाइ स्याही, चोरी निकरै हराम की ।
'सुकविगुपाल' नेकी करै हानि बदी, जावौं,
बांधन प्रबंध पर न अडि जाति काम की ।
रहत सदांही घर बाहर कौं बुरो, फलौ—
भूत नहीं होत पाल कौडी जो हराम की ।
छुटै धन धाम, कबौ पावे न अराम, यात,
भूलि कै न कीजै कामदारी काहू काम की ॥

मुसद्दी : पुरुष उवाच

बैठूं गद्दी दाबि कै, बनूं मुसद्दी जाइ ।
चोहद्दी को ऐंचि धन लाऊं हाल कमाइ ॥

कागद का लेखौ, होत रहै सदां जाके हाथ,
सब ही को काम परै भली अरु बदी को ।
राजु-उमराउ औ' सिपाह को परच जाकै,
लिखे ही पै पटत, गरीब औ उमदी को ।
'सुकविगुपाल' अरे मारयो करै माल, काट—
फांस करि करि लेत, देन सारि रद्दी को ।
बैठूं दाबि गद्दी, दाबो करत चहुद्दी, याते
सब में जिरद्दी यह काम है मुसद्दी को ॥

---

१ है रुजगार

स्त्री उवाच
दोहा

लिषत पढ़त, कागद करत, नेंक न नेइ[1] अराम ।
याते यह सब में बुरौ, मुसद्दीन कौं कांम ।।

कवित्त

मारि जात दाम, ताकौ होत नहिं कांम, तेई,
कहि कें हराम, लोग करयौ करें बद्दी कौं।
कागद सौ कागद, मुकालवे करे पें, निकरें,
जौ हर्मजद्दी होइ दफतर रद्दी कौं।
'सुकविगुपाल' यामें भली बुरी कहें बात,
रद्दी परिजात बुरौ होनु है चहूद्दी, कौं।
छाई रहे मद्दी, होइ वडौ वेदरद्दी, याते,
भूलि कें न कीजे काम कवही मुसद्दी कौ ।।

चेला राजा : पुरुष उवाच

वने रहै राजु–अुमराजु ते सरस, वाला
सव पें रहत' डर रहत न, मैला कौं।
होतुह 'गुपाल' सव बात कौं अगेला कड़े,
तोड़न पहरि धारें समजा' रु सेला कौं।
रहै अलवेला, मेला टेला में नवेला, नृप
सव ते सवेला, प्यारा रायत अगेला कौं।
सदा सव वेला निसदिन रहै मेला, याते
वड़ौ होत हेला, महाराजन के चेला कौं ।।

---

[1]. रहत

स्त्री उवाच

कवित्त

जाति निज जाति, निज धरम न रहै हाथ,
डरै दिन-राति नित लाग्यौ रहै पैला कौं।
भले बुरे कर्म, कर करने परत फर्णी
परति गुलामी लोग बुरौ कहै बेला कौं।

हाजरा-हजूर होंनौ परत हमेस, तमू,
रहन 'गुपाल' डर हुक्म के हेला कौं,
रहै न अलबेला, सब दीयो करै ठेला, बडे
रहैं अुरझेला राजु राजन के बेला ॥

बतिसलक्षन[1]

सज्जन सुरत्ती, सत्य सुचि सदा तुष्ट सील,
प्राक्रमी प्रवीन अुपकारी परदार हांनि।
आतम अभ्यासी, बुद्धि- वन, विद्यावत, वादी,
विचक्षन, गुण, रूप, देत मद जावौं मांनि।

इन्द्रीजित अनप अहारी रति- नींद हती,
मात पितु गुरु देव भक्त है धनमांन।
दाता, धरमी, कुलीन, सत्रुजित, रण, पीन,
लक्षन ,गुपाल' ये मनुस्य के बतीस जांनि॥

अवगुन[2]

कलही, कृतघनी, मोढो, कुटिल, कुमति मति,
कायर, कुरूप कुवचन वै कुरूप कौ।

१-२ य प्रमग है मु म नगो है।

वाँमन, वधिर, क्षुब्ध, बावरो,' रु बालक
अभागो, अध, अधम, अनायन् मुरस कौं।
पंगु, गंगु, ज्वारी, विभचारी, चोर नारी अग,
हीन, अहंकारी, अतिरोगि या पुरस कौं।
मन-वच-काय, सेवै सदा नृप पाइ, तिय
सपने न त्यागे कहूँ ऐसे हू पुरस कौं॥

रानी के सुष[1] : पुरुष उवाच

राजा ते सरस जा कौ हुकम रहत, जांनी—
मांनी जाति सारे, रूप होतु है भमानी कौं।
'सुकवि गुपाल' नृप जाके वस होत, जस
देसन में फैलै, दांन-मांन कर मानी कौं।
सबते सरस जाकौ परच रहत, होत
चतुर सुसील मान मारें अभिमानी कौं।
पैज पनसानी, जाकी रापै सब आनी, नृप
ऐते मिलें आनी, रासु राजन की रांनी कौं॥

स्त्री उवाच

कैद मैं रहति, दीसै नर कौ न मुष, सुष
सेज कौ न नित, चित रहै अभिमांनी कौं।
'सुकवि गुपाल' तरुनाई गऐ ज्याय होत,
छोटौ मिलै पति, सुष जाँनति न जवाँनी कौं।
जतन बड़े तें, होत नृप कौ मिलन, रहै
संतति कौं दुष, सौति करै प्रांनहांनी कौं।
रहै क्रोध सांनी, मति रहति दिमानी, ऐती
रहब गिलांनी' रजवारन की रानी कौं॥

---

1. यह छन्द है: मु. मे नही है।

फौजदारी : पुरुष उवाच

सदा रहत महाराज कौं, जाते निस दिन प्यार।
राज काज के करत होई, फौजदार मुख्त्यार॥

कवित्त

प्यार रह्यौ फर्ने सिरदारन कौ जाते, सदा
रहत हुस्यार जग जुरत की वार कौं।
मारि मारि रिपु वारि धारि कै हथ्यार सब,
सिमट सँभारि करि देत सिध स्यार कौं।
'सुकवि गुपालजू' छतीस कारखानन में
पावतु है सदा राज-काज मुख्त्यार कौं।
सातौ सुख त्यार, रहै, हाजरि सवार, याते
राज तें सरस दरबार फौजदार कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

जग जुरत की वार, है फौजदार सिर भार।
कहूँ न रहै ठनवारि बहु, रह्यौ करै भरमार॥
मिपह को स्वाल, इवबाल को हवाल सुनि,
हाजरी रपोट जानो परत मरारी को।
'सुकवि गुपाल' राज-काज को रहत दाग़,
वृथा जात दिन नेक पावत न वारी कौ।
धरन मुहर, बीयो करत कहर, वाल
लागनि जहर विन करत हुस्यारी को।
चिन्ता रहै भारी बँई गैल रुकै जारी, याते
बड़ो दुखकारी रुजिगार फौजदारी कौ।

वकसी को रुजिगार : पुरुष उवाच

दोहा

सेनापति को सुख सदा, रहनि सैन सब साथ।
जग जुरव में मुरत नहिं, प्यार करत नरनाथ।[1]

कवित्त

मांफ तकसीर जे अनेक होति जाकी, राति—
दिन सब फौज पै हुकम रहै वीत है।
च्वामद सों प्रीति, श्रम जीति के अभीत, ताहि,
जीतत हीं जंग, माल मिलें हरि पीत है।
'मुकवि गुपाल' जाकों राजा डर मानें, अुमराव
सनमानें बढ़ै संपति · अकोत है।
जग मे अुदोत, होत चाकर की ओत, याते
राजन के वकसी कौ ऐते मुख होत है॥

स्त्री उवाच

दोहा

फौजन के वकसीन कौ, वड़ो कठिन कौ काम।
सिर कौं धरि कै हाथ पै, करत कमाई दाम॥

कवित्त

सब सौं अगारौ वढ़ि, लरनौं परत जंग
जुरत मुरत मरवाबत है मकसी।
'मुकवि गुपाल' कहूँ हारि जाय रन में, तौ

---

१. मु. में है 'अन्यों' में नहीं।

वाहू के अगारी नेंक रहै न ठसक सी।
आप चढ़िआवैं, किधौ रिपु ही दबावैं, तब
राति-दिनां यामें बड़ो रहै धकपक सी।
लगति न जक, रहै नृपति की सक, याते
भूलिहू कैं हूजियैं न राजन कौं बकसी ॥

रसालदार : पुरुष उवाच

बाँधि ढाल-तरवारि रण, मारत सत्रुन सीस।
नृपति रसालेदार कौ, मौज देत करि प्रीति ॥

चढ़ तुरगन पै सग पै सिपाह घनी, जीतें
जग जाइ बाउ विस्मिति हथ्यार की।
'सुकवि गुपाल' सदां रहै मुप पानी बड़ौ
रहै महमानी सनापति सिरदार की।
काढे नाम गाम मिलें गहरी यनाम त्यों
दाम की रहै न रीझ भले सिरदार की ॥

स्त्री उवाच

दोहा

हय-गय चढ़ि कर पगा गहि, बटि-बढ़ि घर घर देत।
तव रसालदारैं कछू, मिलति यनाम सहेत ॥

कवित्त

बाधने परत तरवारि-ढाल माले त्यार,
रापने परत जेते जग के मसाने हैं।
है करि निराडे, सों निवारे न रहत, प्रान
परें परपाने, लाले रहत न माने में।

'सुकवि गुपाल' कहूँ नहीं हालें चालें जाके
देपत पसाले मन परत फसाले में।
सबही कों सालें, सदा रहें काल गालें, रहैं
कितने कसाले रसालेदार कौं रसाले में।

मुसाहिब

दोहा

रहत सदां आराम में जुरत पजानें दाम।
साहव को पुस रापिवौ मुसाहबन कौं काम ॥

कवित्त

सुनें राग-रंग, भोगें भांति भांति भोग, संग
गुनिन के गुन सुनि, आनंद बढाइयें।
तिनही सों सब, सब बातन कों बूझें, मंत्र
रहत सुतंत्र, प्यार नृप को सिवाइयें।
'सुकवि गुपाल' बैठि बरंबरि राजन के,
काजन को–सारि हिय वैरिन के दाहियें।
दवै राउ-राइ, होइ दरजा सिवाइ, याते
बड़ी सुपसाहिवी, मुसाहिवी में पाइयें।

स्त्री उवाच

दोहा

पचत नहीं कहुँ हाजिमा, रहत भोर अरु सांस।
मिलै न कहु सुप साहिवी, मुंसाहिवी के मांझ ॥

कवित्त

रहनौं परै पास हजूरहि के पुनि मारे परै हैं दुसाहिबी में।
निसवासर ही जिय जायौ करै दरबारिन की सुमु साइबी में।
मुप जोवत ही जिय जात सदा, मिलै पान न पान कुसाहिबी में।
मो 'गुपाल' कहै न परै जितने, तितने दुप होत मुसाहिबी में॥

पोतेदार[1]

ओजदार[2] भारी रहै बोझदार होइ चित्त।
फोजदार दबते रहै पोतदार[3] ते नित्त॥

फौज को परच जावे कर ते अुठत जावौ
कटि कै कटौना रुपया पटै दरबार को।
राज[4] को पजानौ सब जाके जमा होत आप
होत जमावद लैनौ परै न अुधार को।
'सुकवि गुपाल' धन रहै कैअू राह[5], बहु
लै करि[6] अुमाह, साह रहत बजार को।
दबै सिरदार, रुप रापै जिमीदार, याते
बड़ौ ओजदार, रोजगार पोतदार को॥

दोहा

गाम गाम परगनन को, जमा होइ नहि जाइ।
बोय[7] परैं सब राज को, पोतदार[8] सिर आइ॥

१–३ मु पातदार ४ मु राज्य
५ मु कैक विरुप के कदन को
६ करिकें ७ मु बाज ८ मु पातदार

कवित्त

देने परैं दाम. लैनी परनि रसीदि, लोग
गारी दयौ करैं काट फाँसत की वारी मैं ।
दौलति के विनठे पै, मार-बाँध होत जब
पटन न रुक्का जिय आइ जात[1] नारी में[2]।
'मुकवि गुपाल' जाय जुरैं जब जंग, तब
सग लै पजानीं जानों परैं भरमारी में[3]।
रहै बोझ भारी चोर चार करैं प्वारी याते
होत दुप भारी पोतदारैं पोतदारी में[4]॥

दरोगा : पुरुष उवाच

कछू काम पै जाइ कैं, होइ दरोगा सोइ ।
राजन के घर ते सदाँ, तब इतने सुप होइ ॥

कवित्त

तेज बढ़ै भारी, सिरदारी मांझ गन्यो जात,
मार्यो करैं माल, मिलि-झुलि जाई ताई मैं ।
'सुकवि गुपाल' भलौं भयौ करैं हाथन तें,
बातन कौ पाय, सदाँ बैठ्यौ रहै छाई मैं ।
सबहि कौ प्यार,[5] काँम परमुपतयार, धन
वढन अपार, कैंधूं काँम रहै धाई मैं ।
कीरति भलाई, बड़ी होतिहु बड़ाई, याते
सब ते सवाई है कमाई दरोगाई मैं ॥

---

१. मु. जाय २. मु. मे यह तृतीयचरण है । ३. मु. में यह द्वितीय चरण है । ४. मु. 'मे' के स्थान पर 'को' है । अन्तिम चरण इस प्रकार है : 'बड़ौ दुखकारी [illegible] पोतदारी कौ । ५. मु. नृपति कौ प्यार । यह चरण मु में द्वितीय है ।

स्त्री वाच

दोहा

टीको लागत लील को, बिगरि जाइ जो कांम ।
दरोगई के करत में नाम होत बदनांम ॥

कवित्त

देइ नहीं जाय, रिस रह्यौ करैं सोई सदा,
दोस आय रहै, सहै सबही पैं नाम कौ
राज कौ गुपाल' नित रहै डर भारी, छुटकारौ
न मिलत, इक छिनहूं अराम कौ
काम बिगरे पै टीकौ लील कौ लगत सिर,
बडौ कष्ट करि यामैं देतें मुष दाम कौ
टूट्यौ परे काम, पैंडौ देख्यौ करैं धांम, याते
भूलि कैं न हूजियै दरोगा काहू कांम कौं ॥

षजानची : पुरुष वाच

राज रहत आधीन नित बडे बडे सुष लेइ ।
है षजानची राज कौ, काम परें धन देइ ॥

कवित्त

रहत अधीन राज-काज मैं सकल लोक,
भोग कर्‌यौ करत, कुबेर के समाने मौं ।
कहे औं' पुराणें¹ जे षजानन कौं जानें आन,

---

1 है पुराने

दर्व के ठिकानैं रहै हिम्मिति बँधाने कौं ।
'सुकवि गुपालजू' भँडार पोलि देत धन,
कांम आय परें, जब जग के जिताने कौं ।
राज सनमानें, सब रापें आंनकानें, याते
बड़े सुप पामें, है पजानची पजाने कौं ॥

स्त्री उवाच

राज्य खजाने में रहत. रहत बड़ो शिर भार ।
जिय जोख्यो के ज्यान ते, कांपति देह अपार ।[1]

कवित्त

दौलति सँभारतहि जात दिनराति, नित—
प्रात ही ते लेत देत धन तन घूजियैं ।
चोर औ' चुगल, नृपराज कौ रहत डर,
होइ मार—मार न पसारि पाय सूजियैं ।
परच बढ़े[2] पै गढ टूटत लरे पैं, राज—
काज के फिरे पै तौ पकरि करि भूजियैं ।
'सुकवि गुपाल' याते मेरी सिप मांनि, कहूँ
राजन को ग्रांन कैं पजांनची न हूजियैं ।

सिलहदार : पुरुष उवाच

सिलह पांन में सुपय ते, सिलहदार कौ होइ ।
सूर वीर रनधीर हित, सदां करत सब कोइ ॥

---

१. मू. मे यह दोहा है; बृ. में नहीं है। २. है· परे

कवित्त

हेत रह्यौ करत सिमाह, सूरवीरन कौ,
वडो रणधीर होत किम्मती हथ्यार कौं।
जग में अुदोत सदा राजा पुस होत, मिलें
गहरी यनाम घाम परें मार-धार कौ।
'सुकवि गुपाल' रुप रायत है जेते[1] तिनें
देत अस्त्र-सस्त्र मोल महँगे अपार कौं।
राज दरवार, सिलैपानें मुपत्यार भये
यतने अगार सुप होत सिलेदार कौं॥

स्त्रीवाच

दोहा

सिलेपान में जाय मति, सिलहदार होअु कोइ।
लेत देत हथियार कौं, वडो राज डर होइ[2]॥

कवित्त

करै न सँभार कोपें विगरैं हथ्यार, वडो
रहै डर भार, महाराज के रिसाने कौ।
लेत-देत, गिरत-परत, जिय ज्यान लगि
जात में विस्वास नहीं आपने विराने कौ।
'सुकवि गुपाल' कर कालिमा कलित रहै
नित प्रति यामें काम परें बनवाने कौ।
अति ही कठिन पहचान कौ सुकाम यातें
भूलि कैं न हूजे सिलैदार सेलपाने कौ॥

---

१. मु. ६ ठेई २ ६ इउने डर नित होइ।

दानादक्ष : पुरुष वाच

दाना दक्षन हाथ ते, दान होत दिन राति।
दुषी दीन द्विजराज गुन, मांन सराहत जात॥

कवित्त

जाके हाथ है कैं ही षरच होत लच्छन[1] कों,
देई–देव, तीरथ औ' सुकरम पक्ष कौं।
ह्वै करि दयाल, सो निहाल करि देत हाल,
भरिकैं भँडार माल मेंटें दुष–तुक्ष कौं।
'सुकवि गुपाल' निसदिन यही कांम, गुंनमान
सनमांन प्रतिपाल बाल वक्षः कौं।
भूपन कौ भक्ष, पुन्य दांन दीन रक्ष, याते
सबही में स्वक्ष, यह कांम[2] दानांदक्ष कौ॥

स्त्री वाच

दोहा

राजन के घर कौ सदां, होत हि दानांदक्ष।
दुषी दीन दुष देपतें होतहु पाप अलक्ष॥

कवित्त

सो तो रहे साई लों' पिसाई रहे बेक पुन्य—
पाप होत आई बुरवाई रहैं मांय[3] कौं।
देट[4] नहि जाय,[5] ताकौ ग्रातमा दुषित होति,
तुषित न रहै षाय जाय जौ पै गाय कौं।

---

१. है. लछन २. है. रुजगार ३. है. हाय ४. है. देत ५. जाकी

'सुकवि गुपालजू' प्रतिगृह कौ देत लेत
दुषी औ' अनाथ दीन छांड़त न साथ कौ।
सतन के साथ, सुनीं हरि गुन गाथ, नाथ
भूलि कै न हूजें दाना-रूप नर-नाथ कौ॥

मंत्री राज : पुरुष उवाच

राजन के दरबार में मंत्रि मंत्र जब देत।
जग[1] जीति जुलमीन सौं जबै जीति जस लेत॥

कवित्त

होत[2] गुनमान, चौधौ विद्या के निधान, नीति—
न्याव के विधान जानें लिये जेते तंत्र में।
आगम निगम सरबगुय बहु बात धात
पच अग गुन पट रापत सुतंत्र में।
'सुकवि गुपाल' होइ सूरिमा, सुसील, छिमा—
वत, ध्रमधारी, सालैं रिपुन के अंत्र, में।
जानें जंत्र-मंत्र, राजा रहै निरंतर याते
ऐसे गुप होत देत मंत्रिन कौ मंत्र में॥

स्त्री उवाच

दोहा

राजन के मंत्रीन कौ, जग जुरत कौ पोत।
मंत्र देत के समे में, इतनें डर नित होत॥

---

१. मु. है. जुरत जग जुलमीन सो जंग जीति जस लेत।
२. है. होय

कवित्त

सांचो जो कहै तौ, जामें राजा रिस होत, मुनि—
सिर के वचन विप सम मुप सूजियें।
'मुकवि गुपाल' सभासद बीच बैठि वड़े
सोच में परत मन मंत्र जब वूझियें।
अुड़ि[1] जात होस, जब आइ जात दोस, सह्यौ
परै नृप रोस- राजकाज लगि घूजियें।
जंग जुरि जूझियें. कि कीजै वात दूजियें, पै
राजदरवारन को मंत्री नहिं हूजियें॥

वकीलायति[2] : पुरुष वाच

रापत सकल नरेस हित, देस होत है नांम।
याते भलौ 'गुपाल कवि' है वकील कौ कांम॥

कवित्त

सभासद जेते रुप राप्यौ करें सदां, सब
देप्यौ करें राज दरवारन के सील कौं।
लिपि-लिपि पत्र, होत वातन विचित्र, राजु
राजा होत मित्र यामें ज्यान नहिं डील कौ।
'मुकवि गुपाल' राज काज के वहाल जानें.
हाल माल मिलैं, नेक लागत न ढील कौ,
चढ्यौ करें पील, बहु वाढतु है सील, याते
सवमें असील, यह कांम है वकील[3] कौ

---

१. है. देव सब दोस यों उडि जात होस, सह्यौ
परै नृपरोस राजकाजि नित छूजियें।
२. मु. वकीलात को रुजिगार ३. है. उजील

स्त्री उवाच

दोहा

निसदिन[1] अरनौं परतु है, पर दरवारन जाय ।
लिपने परत हवाल वहु[2] या वकीलई पाय ॥

सवैया

देसकौं छोडि प्रदेस रहै घर कौ सुपजाने[3] नहीं सपने में ।
दूसरे राज में लागै बुरो, दरवार में बातन में थपने में ।
हाल ही जौपै हवाल लिपें, न, तो काप्यौ करै सदा जी अपने में ।
'राय गुपालजू' याते सदा यतने दुप होत वकीलपने[4] में ॥

पहलमान : पुरुष उवाच

पहलमान के बनन में जोम, रहत तन मांहि ।
अमल मांहि छाके रहै, काहू सो न डरांहि ॥

कवित्त

जान्यौ करै वंअू दाउ–घाउ अेंच–पेचन कौ,
करि कसरनि देप्यौ करत भुजान कौ ।
अमल में छाके बाके बनिकै अदा कै, तोरि
रिपुन के टाके, लेन नावे के मजान कौं ।
'सुकवि गुपाल' लेत गहरी यनामा, गुटि,
झटकि, पटकि, जय मारे बलवान कौ ।
पाय पान–पान बने रहै जवर जवान,
यतने निदान गुन होत पैलमान कौं ॥

---

१ है मव २ है नित ३ है देरे ४ है उकील

स्त्री वाच

दोहा

गुडन की सहुबति रहै, निसदिन आठौ जाँम।
याते नहीं भलौ कछू पहलमांन कौ कांम॥

कवित्त

सवही कौं पोछि मह[1] पांनी परं चीज औ'
निवल वल होत सग तिय के डरत में।
'सुकवि गुपाल' यार वासन में आवे लाज,
देषि वल भारे तें अपारे में मुरत में।
लरत–भिरत अरु गिरत–परत हाथ
पाइ टूटि जात वार लागें न मुरत में।
रहै अकरत[2] कसरति के करत, कछु
कांम निकरत नहिं मल्लई करत में॥

राजचाकरी[3] : पुरुष उवाच

जमादार सूवेदार, चपरासी रुपनास निज।
सिपाही चौकीदार, इनके सुप वरनन करुं॥

पलटीन पर सूवेदार मुपत्यार रहै
हुक्म जमादार कौं सिपाही माने जेते है।
है कै चपरासी चाहै ताहि धमकामें चौकी–
दारी माहि चोरन कौ मारि माल लेते है।
करे ते पवासो षुस प्वामद रहत औ'
सिपाह में सिपाही मजा लियौ करे जेते है।
'सुकवि गुपाल' जू कहे न जात येते इन
चाकरी में चाकर कूं होत सुष तेते है॥

---

१. है. मु. मुर २. मु. अकरुव ३. यह केवल 'है.' में है। 'मु' और 'वृ' में नहीं है।

स्त्री उवाच

आय कहौ बिन कोइ, एक नहीं सिप मानिये।
लाप टका बिनि होइ, तउ न करौ ये चाकरी॥

ह्वैहौ सूबेदार, है है मार तरवार धार,
बनि जमादार सिरदार ब्यार बहिहौ।
बाँधि चपरास कौ दुपाइहौ गरीबै चौकी—
दार बनि राति में पुकारत ही रहिहौ।
करि हौ पवासी, तौ कहाइ हौ पवास, कहूँ
ह्वैहौ जो सिपाही सदा आठौ जाम बहिहौ।
भू—चि गुपाल' मेरी व त को न गाहिहौ तौ
सबते बहुत दुप चाकरी कौ सहिहौ॥

चाकरो[1]: पुरुष उवाच

और काम सब छाँडि के, करहु चाकरी जाय।
जामें जे सुप होत हे, सुनहु श्रमन मन लाय॥

जौम जिय रापैं, मरदाई नैन भापैं नित[3]
रापत भरोसो भारी भुजन में ठोकी है।
काहू सो न डरैं, रन सनमुप अरैं, अरु
नैनन में भरैं, लै प्रताप सूरई को है।
पायके पुराव पिजि[4]मिरि करैं ख्यामद[5] की,
छैन बन्यो रहै, सो रहै न सोच[6]जीको है।
कहत[7] 'गुपाल' यामें सुप सबही कौं सदा,
याते यह नीको रजगार चाकरी को है॥

---

१ यह विषय है' 'मु म है 'बु' म नहीं है।२ मु सज्जन कविराव
३ मु नित ४ मु दिदमत ५ मु ख्यादिद ६ मु मोष ज्ञ नहीं
७ मु सुकवि

स्त्री वाच

होत[१] प्रोनि की हानि, चतुर चाकरी करत में।
घटैं उकर-अभिमान, चैन न पावें चित्त में ॥

वहनो[२] परत नित,[३] रहनो परत पास,
सहनो परत दुप, भली औ' बुरी को है।
चाकर कहावै, बड़ो दरजा न पावें, भारी
नाम को घटावै, औ' हटावे हित हो को है।
कहत 'गुपाल' देह बिकतो पराये हाथ,
मार-धार परें यामें होत ज्यान जो को है।
कुजस को टीको, मोहि लागत न नीको याते
सब ही ते फीको[४] यह पेसो चाकरी को है ॥

सूरवीर : पुरुष उवाच

जाहर जस जग में रहै, तेज होत[५] परचंड।
सूरवीर रण रारि करि, फोरि जात ब्रह्मंड ॥

कवित्त

जाइ-जाइ, धाय-धाय, करें चाय-चायन
'गुपाल' दाय, घाय, पाय हरें परपीर कों।
जग जस छायकें, वरंगना वराय आप,
जान चढ़ि जाइ, दिव्य पाइकें सरीर कों।

---

१. होइ २. मु. गुहानो ३ मु. यामें ४. मु. में
५. है. होय

बारबार सहे तरवारि-धार, बार तिल--
तिल तन कढेहू पै सहै सेल तीर को।
होत[1] रनधीर, यों कहावतु है बीर, याते
सबमें अमीर यह काम[2] सूरबीर कों॥

स्त्री उवाच

दोहा

[3]रुड अरै. रन में मरै, लरै परै रन सोइ।
कठिन छत्रिया धर्म कौं, याते काम सु होइ॥

कवित्त

सनमुख है करि हथ्यारन की सहैं आंच,
चाय प्रान देनु छोडि कुटम लुगाई कौ।
पाच की पचासन ते, आय परें जग जब,
बिगरें जनम पाछे बगदत पाईं कौ।
होत बदनाम, जो प स्वामि के न आवे काम
धाह को कनाम होन होत कही गाई को।
'सुकवि गुपाल' करै रुड हू लराई, याते
बडो दुखदाई यह काम[4] सूरताई कौं॥

सिपाई के

और काम सब छोडि कें, करै नाकरी जाइ।
जामें जे सुख होत हैं, सुनि प्यारी चित लाइ॥

---

१ है रजगार २ है रड लरै रन म जरै मरै परै रन माह।
३ है रजगार

जीम जिय रापें, मरदाई बैन भापें, नित
रापत भरोसो भारी भुज की कमाई को।
काहू सौं न डरें, रन सनमुप अरें, अरु
नैंन में भरें, लै प्रताप सूरताई को।

पाय कै पुराक पिजमति करें प्वामद की,
छैन वन्यौ रहै सो रहै न सो चकाई कौ
फैलति अवाई, यौं 'गुपाल' की सवाई याते
बड़ी सुपदाई यह कामहू सिपाई कौ॥

सोरठा :

होइ प्रीति की हांनि, चतुर चाकरी करत मैं।
घटै अुकर अभिमांन, चैंन न पावै चित्त मैं॥

कवित्त

बहनौं परत नित, रहनौं परत पास,
सहनौं परत दुप, भलो औ' बुरो कौ है।
चाकर कहावैं, बड़ो दरजा न पावैं, भारी
नांम कौं घटावैं ओ हटावैं हित ही कौ है।

कहत 'गुपाल' देह निकति पराअे हाथ
मार मार-धार परें, जुयांन होत जी कौ है।
कुजस कौ टीकौ, मोहि लागत न नीकौ, याते
सबही मैं फीकौ, यह ऐसी चाकरी कौ है।

बहु चाकरी[1]

काजी[2] अरु वाली[1] रु पुनि नायक तुरक सवार।
हवालदार सूबदार पुनि रहत राज दरबार॥

कवित्त

काजी मत न्याय निवटायबौ करत पुनि
नायब निगाह सही करि लिये तेते हैं।
तुरक सवारी में सवारी रहै घाम की
है कै हवाल यक्वाल जानें जेते हैं।
पलटन पर सूबेदार मुख्त्यार और
हवालदारी पाय कै हवल जानें केते हैं।
सुकवि गुपालजू कह न जात जेते, बहु—
चाकरी में चाकर तूं होत सुख तेते हैं॥[3]

---

१ है प्रति में पुनचाकरी है।
२ है—नाजर नायब मुसाहिब मुसद्दीर बख्शार।
अरु दरबारहु के कहूँ सब सुख हिय विचारि॥
सु—नायब मुसाहिब मुख्त्यार सिपाह।
चौकीदार रु पौरिया रहत राज दरबार॥
३ है—दनि के मुसद्दी गद्दी दाबि करि बैठे सदा
नाजर हवाल के सवाल कहे जात हैं।
साहब के साहिबी मुसाहिब करत रहै
नायब निगाह रही करि लिये तेते हैं।
हैके बख्शार बख्शारन सो लेत [illegible]
दान बख्शार बख्शारन सो [illegible] हैं।
सु—[illegible] के साहिबी मुसाहिब करत रहै
नायब निगाह सहि बाग लिये [illegible] हैं।
तुरक सवारी [illegible] की सम्भार चौकी
दारी माहि घाम का सारि [illegible] है।
पलटन पर सूबेदार मुख्त्यार और
सिपाह में सिपाही सजा सोधी करें केते हैं।
[चौथी पंक्ति तीनों प्रतियों में समान है।]

सोरठा

लाप[1] कहहु किनि कोइ, अेक नहो सिप मानिये ।
लाप[2] टका किनि होइ, तऊ न करो कहू चाकरी[3] ॥

कवित्त

काजी भये न्याय की विद्दनि मे रहै, पुनि
नाइवी में पैहौ दगा मिलि जो न रहिहो ।
तुरक सवारी भये रहिहो समार ही में,
इकवाली होत इकवालन नों दहिहो ।
हैहो सूबेदार नैहो मार तरवार धार,
है हवालदार पै हवाल बुरो सहिहो ।
'सुकवि गुपाल' मेरी बात कों न गहिहो तो
सब ते बहुत दुप चाकरी में सहिहो[4] ॥

---

१. मु. आय २. मु एक
३. है दोहा इस प्रकार है —
सिरकारन की चाकरी, बडी कठन की धार ।
नेक फरेबी निकर ते, दीजे याहि निवारि ॥
४. है.—ह्वै हो जो सुभट्टी तो पै सब की सहोगे वही
नाजरपने मे सदा साहब सो दहिहो ।
पाइयो न कछु सुप साहिबी मुसाहिबी मे,
नाइवी मे पैइहो दगा मिलि जौन रहिहो ।
वैठन फिरोगे बटवार बनि बाटन पै
हैके पटवार बुरो सबही सो कहिहो ।
मु.—पाइवी न कछु सुप साहिबी मुसाहिबी मे
नायवी में पैइहो दगा मिलि जो न रहिहो ।
ह्वैहो सूबेदार पैहो मार तरवार धार
ह्वै हो जो सिपाही सदा आठों याम बहिहो ।
गहू की सम्हार भार तुरकसवारी चोवो—
दार बनि रानि मे पुकारा ही रहिहो ।
[चौथी पंक्ति सभी मे समान है ।]

द्वालीवन्व : पुरुष उवाच

रहि दरवान में सदा सब की जानत सार।
दयो करै द्वागाह दृशा, द्वाली बदन द्वार॥

कवित्त

भूमिया, मुवार, सिरदार, जौंमदार, जेते,
राख्यो करै रुप भारी करि-करि प्यार पै।
सबकी अरज करि पकरि गुजारै जाय
तिनही की बात पस परति हजार पै।
ठाढो करि राय महाराज के हुक्महू पै
रिस करि जाको कर्यो चाहें जौ बिगार पै।
'सुकवि गुपाल' गाने राजन की सार होत
दरजा अपार द्वाली बदन को द्वार पै॥

स्त्री उवाच

दोहा

घटन जानि-पहचानि, घर पान-पान की जान।
याते यह दरमान को अधम बुरो निदान॥

कवित्त

सहनी परति है अवाजें औ' तवाजें नित
रायन सिगट टरि सकत न भाजें को।
जानने परत बहु कायदा-कदरि, नौकरी
ते बेतरफ होत करत अकाजें कौ।
यन दुखी दीनन के रोकिये को पाप पुन—
पकरि गुजारत में रहै डर राजें को।
'सुकवि गुपाल' होनी परत निवाजें, याते
भूलि कै न हूजें दरमान दरवाजें कौ॥

चोबदार : पुरुष उवाच

दरबारन में जाइबे, सारत सबको काम
मिलत चोबदारन तहाँ, वारत मुक्ता दाम।[1]
राजदरबारन में हाजर हजूर रहैं,
बढ़त सहूर नूर लेतह बहार को।
काम आय परे, सदा जाते सब लोगन कों
राअ अुमराअु, सेट-भुमिया गुवार को।
'सुकवि गुपाल' चाहै ताहि रोकि देइ, औ'
गिलाय हाल देइ भने अरज-गुजार को।
सबही को प्यार रहै, राजदरबार, याते
सबमें अगार रुजिगार चोबदार को।

स्त्री उवाच

दोहा

ठाढ़ो रहनो परतु है, निस दिन आठौं जाँम।
याते बड़ौ निकाम, यह चोबदार को काम॥

कवित्त

सबही की अरज गुजारनो परति, यामें
लागत है पाप, रोपै दीन दुपकारी कों।
जान देइ भोतर, तौ राजा रिस होत, नहिं
जान देइ भीतर तौ लोग देत गारी को।
'सुकवि गुपाल' गरौ परि जात भारी, अगवारी
के भअे पै बढि बोलत अगारी कौं।
छोड़ि घरवारौ, सदा ठाढो रहै दुवारौ, याते
बड़ो दुपकारी यह काम[2] चोबदारी कौं॥

---

१. यह दोहा मु में है, वृ. मे नहीं। २. रुजिगार

हलकारे : पुरुष उवाच

दोहा

ठौढा[1] रहनो परतु है निसदिन आठौ जाम ।
याते भलौ गुपाल कवि' हलकारन कौं काम ॥

कवित्त

सैल देस–देसन, नरेसन की देखें आपि,
नाँम परयौ करत जरूर काम–वारे कौं ।
'सुकवि गुपाल' तिनें रोकत न कोऊ कहूँ
चल्यौ क्यो न करो नित साझ लौं सवारे कौं ।
वार न लगति रजवारन के वारन में
गहरी मिलति मौज मजलि के मारे कौं ।
राजन के द्वारे, करैं बातन के वारे–न्यारे,
याते सुप भारे सदा होत हलकारे कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

राति दिना चलनौं परत, दैनो परत जवाब ।
छिन भरि कबहू रहत नहि, हलकारन के पाँव ॥

कवित्त

राह ही में रहै परदेस[2] दुप सहै ठग
दौरत ते दहै देह चलत अवार कौं ।
जाय कैं मिताव, पहुचैं न जो जवाव, तव
होत बडो रुवाव राजु राजे के हजार कौं ।

---

१ है मु —दस दिदरा नरत हित, महूँ माँग सप दाम ।
२ है मू ठे ३ है राजिनि

'सुकवि गुपाल' हेला-हेली मचो रहै औ,[1]
मजलि रहि जाय जब[2] बेली रहि हारे कौं ।
परि जात कारे, पाग्रु थकि जात न्यारे, याते
सबही ते भारे दुप होत हलकारे कौं ।।

धाभ्रू : पुरुष उवाच

भागि जगैं जाकौ सदा, होइ दूसरो राज ।
राजन के धाभून कौ मिलत बड़े सुप-साज ।।

कवित्त

जग में अुदोत जोति तेज सौ पुरस होत,
राजा मान्यौ करत अुकर[3] जैसें दाभ्रू कौ ।
पांन-पान-काजें जे निकरि आमें गांम, तिनें
पायौ करें सदां सात सापि तोसी जाभ्रू कौं ।
'सुकवि गुपालजू' सदां कौ घर होत, इतवार
रहै अैसौ जैसौ और नांहि काभ्रू कौ[4]
होत है कमाऊ, दबैं राभ्रु-अुमराभ्रु, याते
सब में अगाभ्रू यह कांम भलो धाभ्रू कौं ।।

स्त्री उवाच

दोहा

बड़ी कठिन को चाकरी, पर आधीनें रहाइ ।
राजन के घर कौ कबहुं, धाभ्रू हूजै नांहि[5] ।।

---

१. हे. मु. औ २. मु. जहां ३. मु: अदब ४. मु. में यह द्वितीय चरण है । ५. मु. नाय

कवित्त

रापनी परति तिय आपनी पराअे घर,
तावे सुत-सुता सुख पावत न नेगि कौं।
राजा के टिगारी[1] नित रापतौं परत दर-
वारो जर्यो करै बात करत में पेस कौं।
'सुकवि गुपाल' हिन्दू[3]-पार[4]-जाति[5] वध्र सदा,
तावौं नित प्रति नाम धरत त्रिमम कौं।
छूटै निज देस, सुप पावत न लेस, याते
धाऊ नहि हूजे, काहू जायकें नरस कौं॥

पोजा कौ : पुरुष उवाच

जब होइ पोजा जायकें, रनमासन को कोद।
रावनि राजन के यहा, तब अेते सुप होइ॥

कवित्त

काम न सनावै, वडे दरजा कों पावै, सदा
मूज्यो करै राज, हुकम मानें सब कोना कौ।
सबते पहल रनसाल में पहुच होति.
रानी अरु राजा[6] हुकम मान्यो करें दोजा कौ।
'सुकवि गुपाल' दरवारन[7] में वैठि जान्यो-
करै टडवडे[8] गुनमानन के चोजा कौ।
पुलि जाय रोजा, बडो भारी होइ बोझा,[9] सदा[10]
मार्यो करै मौजा, काम करतहि पोजा कौ[11]॥

---

१. निकट २. रहनो ३ मु जाति ४. मु पारे ५ ।न्य
६ मु राना और रानी ७ मु सरदार ८ मु दन-बडे
९. मु बोजा १० मु दा। ११ मु सबही म कमो अजिवार
सहू थोजा को

स्त्री उवाच

दोहा

पोजा कबहुँ न हूजियै, रनमासन[1] कौं जाइ।
निसदिन तिन कौं सबन कौ, अरज गुजारत जाइ॥

कवित्त

मरद न महरी कहत तासौं, अैसें सब
कबहीं[2] न जानें नेंक विषै के हुलास कौं।
सुत अरु सुता नांम–गांम कौ न जानें सुप,
रहै काहू कांम कौ न, नांम बुरौ तास[4] कौ।
'सुकवि गुपाल' सुनि सबकी पर्वरि दरबार[5]
में गुजारनी परति सदां तास कौ।
घर तें गुदांस बन्यौ रहत पवास यातें,
भूलि के न हूजे कहूं पोजा रनमांस कौ॥

चिरवादार : पुरुष उवाच

ओपधि किम्मित जाति गुन, जानत परष सवार।
चढि घोड़न लीयौ करै चिरवादार बहार॥

कवित्त

घोड़न पै चढ़ै, संग रहैं सिरदारन के,
जानें जाति–किम्मित, अनेकन सवारी कौं।
'सुकवि गुपाल' जे निकारें घनी चाल हाल,
माल मारि जात देत नेत में बिपारी कौ।

---

१. मू. रनदासन २. मु नानों ३. मु. कबहूँ ४. मू. नाउ
५. मुनि पर्वरि मरज लै हजूर नें।

साल्लोत्तर पढ़ि नाना भातिन की जानें दवा,
पावत यनाम नाम करिके तयारी की।
परपै हजारी, बृज करै नृप भारी, याते
बड़ो सुपकारी यह काम चिरवादारी को॥

स्त्री उवाच

दोहा

दौरत-दौरत द्वार पै, मट्टी होति पुआर।
यारी देतु न करम तब, होतुह चिरवादार॥

कवित्त

दाने-घास-पानी को मसाले न पकावन,
पुजावन सिपायत में मानि जात हारी को।
लगि जात लात, हद्दिजात काढ़ि पान, ताको
माष्टर औ' डक पाय जान दह मारी को।
'सुकविगुपाल' घोड़ा करि कै नयार, पाछै
दोग्नो परत, पुनि मग उमग्रारी को।
हत्या होति भारी, मर्म देत नहि यारी, याते
बड़ो दुपकारी यह काम चिरवादारी को॥

पवासी पुरुष उवाच

मदा राज को हित [illegible], रहा [illegible] दिन रात।
यातें सबही में भगी,[1] या जग माज पनाम॥

---

१ [illegible]

कवित्त

करत खुसामदि अनेक लोग आइ जाकी,
कनि के मजेज राखे काहू की न आस कौं।
परम प्रवीन-बीन, बातन को जानें नित
जगर-मगर राख्यौ करत मवास कौं।
'सुकवि गुपालजू' लिहाज सौं रहत करें—
तोड़न इकाज कौं कहावतु[१] है पास कौं।
सदा रहे पास, राजा मानें बिसवास, यातें
बड़ौ सुपरास रुजिगारहू पवास कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

नीच टहल करनी परति रहिकैं सबदिन पास।[२]
तातें सबही में बुरौ, या जग भाँति पवास ॥

कवित्त

हाथन[३] में छाले, कँऊ बात[४] के रहत लाले,
परे परें पाले, बड़ी करत तलासी कौं।
करनी परति नीच टहल अनेक भाँति
राति दिना यामें भोग्यौ करतु[५] चुरासी कौं।
'सुकवि गुपाल' झूंठी—कूठी पानी परें वित
संग जानी परें असवारी में सुपासी कौं।
रहत उदासी, जिय जायी करें मासी, यातें
बड़ौ दुख—रासी, रुजगारहू पवासी कौं ॥

---

१. है. कहावति
२. है. सुख रहि रहत उदास सौं सब कोइ रहत [कहत] पवास।
मु. बैठ्यौ रहत उदास सौं, सब कोउ कहत पवास।
३. है. मु. गोटुआन ४. मु. काम ५. है. करिकें ६. है. नित भोगत

गुलाम पुरुष उवाच

रहत हजूर हजूर के, सदा आठहू जाम।
याते सबमें काम को है गुलाम को काम॥

सवैया

नित आठहू जाम हजूर रहै, पहुचावै सबी को सलामनि कों।
नुकता पै रिझाय के राजन ते, सदा पायो करै है यनामन कों।
सबमें अुमराव बनेई रहै, दरबारिन के करि कामहिं कों।
यह तें यह 'राय गुपाल' भलो सबमे रुजिगार गुलामन को॥

स्त्री उवाच

दोहा

नाम होत बदनाम पुनि, सब कोई कहत गुलाम।
कामन ते छूटै न छिन, लेइ न नेक अराम[1]॥

कवित्त

करनी परति जाइ नकिकै सलाम, झूंठो,
मिलै पान-पान, नहिं दरजा छदाम को।
'सुकवि गुपाल' यह काम के करत नेक
पावै न अराम, रहै काहू के न काम को।
ठहरै न पास, बड़ो होतु है हराम, आठो
जाम सहि नाम-बदनाम करै नाम को।
लिख्यो है कलाम, आवै दोसला कलाम, याते
सबमें निकाम, यह कामहु गुलाम को॥

पिलमांन[2] पुरुष उवाच

तबनै अंकुस हाथ पै गज पै बैठत आनि।
राजन के पिलमान जब, होतहु राज समान॥

---

[1] मू. याते काहू का नहीं, हुवै आप सुलाम। [2] मू. पीलवान

कवित्त

गजको सवारी. बैठे राजा के अगारी, रुप
राषे सिग्दारी, बस करे बलवान कौं।
'मुकवि गुपाल' सदा सधै[1] सौंप—सांन, घनौं
घृत औं मलीदा नित मिलै पांन—पांन कौं।
मुकृत कौ काम घनी मिलति यनाम, रहि
राजन के धांम, स्वाफ[2] रापत जवान कौं।
होत अक्लिमान. नृप पावत निदांन, बड़े
होत जोमवान, काम करि पिलमान कौ ॥

स्त्री उवाच

दोहा

पांन—पान करवावते, गज नित लेत पिरांन।
कांम वहै पिलमान कौ, याते बुरो निदांन ॥

कवित्त

रहनौं परत निसदिन काल—गाल ही में,
होत बुरो हाल, डर रहै जिय ज्यांन कौं।
'मुकवि गुपाल' जहां चलै तोप—बान, तहां
चलनौ परत रन सांह्मौ,[3] घमसांन[4] कौं।
करिकै हिरान जौ न देइ पांन—पांन, दाव
लगे मैं निदांन, चीरि लेत गज प्राण कौं।
चैर्य जोर ज्वाब, बन परत बिरांन, याते
बड़ोई गैवान, कांम यह पिलवान कौ ॥

---

१. मु. साधो २. मु गर्द
३. मु. रणसन्मी ४. घमस्सना

गडमान : पुरुष उवाच

रथ बैठे रथमान के, रजई आवति हाथ।
बाल करत महाराज[1] सौं, करत खुसामदि जात ॥

कवित्त

पावैं सिरदारन के बैठक अगारी, भलौ—
नितप्रति यामें माल मिलै पान-पान कौं।
देस औ' विदेस नर[2]-नारिन सौं हेत होत
भलभले लोगन सौं जानि पहचानि कौ।
'सुकवि गुपाल' असवारी ही में चलै, मेलै—
ठेलन में सदा लीयौ करत मजान कौं।
आवत सयान, होत नित नयौ मान, सुष
ऐते मिलैं आन, रथमान-गडमान कौं ॥

दोहा

चोर टोर कौ[3] डर रहै, धूरि परै सिर मांझ।
राह चलत गडमान कौ धँवे, कौं मिलैं सांझ ॥

---

१. है सिरदार सौ पाछे विचरतजात। मु. बडे लोग सादर कत्न, मटूष मिलतसुष साग। २ है बट्ट ३. है मु. चोरन ते डरप्यौ करत धूरि परत सिर मांझ।

कवित्त

राह ही में रहै,[१] परदेस दुप सहै,[२] सीत
घांम जल सहै, पावै बाहर उतारे कौं ।
गारी पात हाल, सिर पेल्यौ करैं काल, भगि
जात यलजाम[३] यामें नेंक वैल मारे कौं ।
'सुकवि गुपाल' रहै परच कौ पालौं, नित
रातिदिन लालौ रह्यौ करैं दाने-चारे कौं ।
टूट्यौ करैं, मारे दिक्य[४] रहैं घरवारे, यातें
होत दुप भारे, रयवारे गड़वारे[५] कौं ॥

मुल्ला : पुरुष उवाच

होत पूरकस यलम में, ग्म्न जबान दराज ।
पढ़त पारसी अकलि के मुल्ला होत जिहाज[६] ॥

कवित्त

करत सलामी सहजादे औं अमीरजादे,
ताको अदबजादे लोग रापत मुहलौ के[७] ।
पिजिमित करि कें पुसामदि करत पांना,
आगें से पड़े रहै फ़र्जंद[९] भल भल्लौ के ।
'सुकवि गुपालजू' हजारन किताबन की
कहत तिनाव, बाज पारसी की रल्लौ के ।
मोटे होत कल्ले,[१०] कहीं रहै ना इकल्ले, यातें
दरजा मुभल्ले, होत पलही में मुल्लौ के ॥

---

१. मु. राह तन दहै २. मु. प्रदेशन में रहै ३. मु. इलजाम ४. मु. दिक्क ५. मु. रखवान गल्मा ६. मु. जहाज ७. मु. मुहल्ला के । इसी छन्द पंक्तियों में अन्त्यनुप्रास मल्ला, रल्ला, और मुल्ला है । ८. मु. खिदमत ९. मु. कुमर १०. मु. कल्ला; इसी प्रकार आगे इल्ला, और गुमल्ला

स्त्री उवाच

दोहा

पढत पढावत में मगज, सब पच्ची ह्वै जात।
लडको से मुल्लान की, अकलि चरप ह्वै जाति ॥

कवित्त

फूटे जात कान, पा सकें न पान-पान, घब-
राय जाति जानि, छोहरों के होत हल्ला कों।
'सुकवि गुपाल' दूर्प हालत में मत्ला सब,
पूछि पूछि पाऐ जात पोपरा इकल्ला कों।
रहत निवल्ला, वडो लगत[1] झमल्ला, जब
कहि अलो अल्ला, सो जगावत मुहल्ला कों।
बढे रहें कुल्ला, लोग कहत मुसल्ला, आप
होत मति भुल्ला काम करतहि मुल्ला को ॥

हकीम : पुरुष उवाच

चढत नालिकी पालिकी,[2] बोलत सग नकीम।
रजवारन में[3] जायकें, जब कोऊ होत हकीम[4] ॥

कवित्त

हय-गय-रथ-पालिकीन में चढत, बहु
बढत पत्यारो, सो निकारें तरकीबी में।
'सुकवि गुपाल' दरमाहू यौ घर आयौ करें,
पावैं बडो दरजा, गिवाय काम बीबी में।

---

१. मु. मगजु २. चमत पालकी रथन में ३ मु कौ ४. मु होत
मु अर्वाइ हकीम।

जानत मरज, करि ओषधि अरज, होइ
समज[1] सिवाय पारसी औ' अरबी बी में।
मिले ग्राम जीमी, सब कहत करीमी, याते
येते सुप होत रजवारे की हकीमी में॥

स्त्रीवाच

दोहा

रहत काल के गाल में, छुट्टी मिलत[2] न जाइ।[3]
दूजे कहूं हकीम नहिं, रजवारन कौं[4] जाइ॥

कवित्त

रहत दुपारे, दिक्य[5] रहै घर बारे, रोग
बढ़ि गये भारे, ढील लगति न मारे कौं।
'सुकवि गुपाल' दवादारू के करत, नहीं[6]
मिलै छुटकारी, कवी सांझ लौं सवारे कौं[7]।
आदत औ' जादत में, महज दिषावत में,
दिक्य[8] करि लोग, लेइ, नीयें जात द्वारे कौ।
हारत जमारो,[9] लोग कहत हत्यारो[10] याते[11]
पावै दुषभारो है हकीम रजवारे कौं॥

कलामत: पुरुष वाच

गावत गावत सदन में[12] गहरी सदां यनांम[13]।
बाते महू गुन कदरि कौं, कलामतन कौ काम॥

---

१. मु. समझ २. मु. मिलति ३. मु. ताप ४. मु. का
५. मु. दिवक ६. मु. नेक ७. मु. में यह तृतीय चरण है। ८. मु. [illegible]
९. मु. हत्यारे १०. मु. सदा ११. मु. भारे दुख पावै है
१२. मु. ।। १३. मु. इनाम

मोदीषानौ : पुरुष उवाच

मोदीषानें राज कौ, जब कोऊ मोदी होत ।
भरम, धरम, हुरमति, सरम, बढ़त धरम, धन, जोत ।[१]

कवित्त

जा[२] दिनतें भरम, धम्म बढि जात घनौ,
कायदा कदरि[३] पावें सबते सभा में है ।
माल लेत देन कहूं[४] नाही नहीं होति जाकी
सही बात होति, चाहे ताकूं धमकामे[५] है ।
'सुकवि गुपानजू' तगादौ न करामें,[६] घर
बैठही कमामें,[७] नका होनि घनौ तामें है ।
बड़ौ होत नामें काम सब कौ चलामें[८] भअे
मोदी महाराजन कौ अेते सुष पामें[९] है ॥

स्त्रीउवाच
दोहा

मोदीषाने नें बहुत, काम परत दिनराति[१०] ।
राजन के मोदीन कौ, यातें वोदी बात ॥

कवित्त

लोग करें ख्वारी,[११] तगादे रहें जारी, कहूं
मिटै न उधारी, भीर परे चहुं कौदी[१२] की ।
त्रस होत गात, सोच में ही दिन जात, यौ
'गुपाल' दिनराति सोध धरत न सोधौ की ।

---

१. वृ. जोति । २. मु. सा. ३. मु. अकर ४. मृ. कोहू
५ मु. धमकावें ६. करावें ७. नृ. कमावै .८ मृ. चाहे ताही
की जिता मे ९. मु. यामें । १०. वृ राति ११. वृ. वौ १२. मु. मोदी

रहन लखूट, घर होत टॅट बूट, घर
घर[1] होइ फूट, यात रहै न[2] विनोदो की[3] ।
होत बडो ओधी,[4] बैर करत विरोधी याते
बोदींगति होति. महाराजन के मोदी की ॥

इतिश्री दर्पनिवारन विलास नाम ग्रन्थे राजप्रबंधवर्णन नाम षोडशो विलास .

---

१. मू. टोर-ठोर २ मू बिगरै ३. मू. मे यह द्वितीय चरण है
४. मू. ओध

सप्तदश विलास

फिरंग प्रबन्ध[1] : पुरुष उवाच

दोहा

माने गग, कुटान[2] कों, राखें नाम' रु टेक ।
अस्कनि ते पैचें सदा, पैमा महति विवेक ॥

कवित्त

न्यार[3] फौज राखे, मंत्र काहू सौं न भाखे, जोर
चातुरी कौ राखें, काम करें न लवेज कौ ।
पाप–पुन्य छाने, फूट फरेब न जानें, ऐन–
की हीं[4] बात ठानें, न्याव करें नहिं हेज कौ ।
'सुकवि गुपाल' सदा सूरज कौ इष्ट, बड़ी
कंपिनी की मानें आन, राखें न मजेज कौ ।
धरे तन तेज, सदा बैठत है मेज, याहि
सब मे अमेज, यह कोम[5] अँगरेज कौ ॥

जंगी कारपनिन की भरती करत सदा
फौज कौं सिपायों करें करि–करि हेज कौं ।
'सुकवि गुपाल' जंगु जुरती वपत, फेरि
मुरन न मोरे, करि काहू परहेज कौं ।

---

१. मु. में अ 'अथ रंगी प्रबंध वर्णन' तत्रादि फिरंगी रजिगार ।
२. वृ. कुराण ३. मृ. न्वार ४. बृ. अनेकौ हीं ५. मृ. रजिगार

जाकों पाप होइ, ताके सिर पर रापे, झूठो
न्याव नहिं करैं, करि-करि लग लेज को।
धरे तन तेज, सदा बैठत है मेज याते
सब में अमेज, यह काम अंगरेज को॥

स्त्री उवाच

दोहा

रापत[1] फौज तयारजे, जानत बडो फिरंग।
जग जुरत जुलमीन सों जब जीतन जुरि जंग।

कवित्त

बरम्मन लागै, तऊ टूटत न न्याय, परो
परत उठाय करि देत हाय तंगी को।
हिंदउस्तानी[2] रिसपत पाइ जात ऊंची,
नीचो करि दवे, परवायौ करै चगा को[3]।
कर जरीमानों और बहरी रसूम लै,
पजारै सटामटि[4] मूडै पैसे दाम दगी को।
रापत न संगी, खानसामा करैं भंगी, याते
सब में कुढंगी यह काम है फिरंगी को।

रह्यो करै यामें बडो कपिनी को डर, अंत,
कौमन, विगरि काम सरत न जंगी कौं।
'सुकवि गुलाल' समझें न राग-रंगो गुन-
मानन के काजे सदा हाय रापें तंगी को।

---

१. मु. रागे २. म. हिंदुस्तानी ३. मु. एहन लौ एव करवायो करै दगी का। ४. मु. सटामटि

जियन बिनासैं, अेक ठौर न प्रकासैं जाय,
　　लरि न सकत बारैं मांस कहू चगी कौ।
रापत न संगी पानसांमा करैं भंगी याते
　　सब में कुरगो यह काम है फिरगो कौ॥

[1]पहरत टोपी, टोपी धरि कैं मिलत, पासी
　　पिलति न रापै, लाज आवति न सगी कौ।
बीबी सग लेले, सदां डोलत अकेले, कहूँ
　　रहत न भेले, सदां लेले फौज दंगी कौ।
'सुकवि गुपाल' होनि आतस अधिक, मुप
　　मौंछ नहीं रापै, पांगें धरि सिर रंगी कौ।
रापत न संगी पानसांमा करैं भंगी, याते
　　सब में कुढंगी यह कांम हैं फिरंगी कौं॥

फिरंगीराज : पुरुष उवाच

डाड़त न काहू, कबौ मारत न काहू, प्रान
　　करै जाई देई डंड, रहै न बिराज मैं।
नाहर औ गाय घाट अेक पानो प्यावै नित
　　धरम की जानें जंग जोरत अवाज मैं।
'सुकवि गुपाल' चंदा, रोजी, नांजमीन कहूं
　　काहू की दई की न लगावैं पन्याज मैं।
करें न अकाज, डर गये सब भाजि, भये
　　राम के से राज, अँगरेजन के राज मैं।

१- यह कवित्त मु॰ में नहीं है। २: यह प्रसंग मु॰ प्र॰ में नहीं है।

स्त्री उवाच

दोहा

घर घर फूट औ' फरेब झूठ सांच, बरकनि
    नहिं नेंक, यामे सासे रहें नाज के।
चोर निरभय, अरु साहु घिर फिरें, यल–
    जाम लगें यामें, नेंक निकरें अवाज के।
'सुकवि गुपाल' भली बुरी भेद भाव, काहू
    गुन की न बूझ, रुजिगारन लिहाज के।
पिचें महाराज प्रजा दुखित निलाज वह
    जात न अवाज अंगरेजन के रजा के॥

सदर सदूलो[1] : पुरुष उवाच

रहु आपदि की फूल, दरजा पाय बड़ो मदा।
बोझू करन अतूल, सदर सदूनी करन में॥

कवित्त

कुरसी मिलनि अंगरेजन की लागी, जामें
    अंन अंगरेजी, न्याव करन अदूली कों।
'सुकवि गुपाल' करि मामले हजारन के,
    मार्यो करें माल करि कायन–मकूली कों।
बैठि करि मेज, पै मजेजई सों रहें बैर
    जासों परिजात, ताय करि देत धूनी कों।
आवत सहूसी, सोम रहत हजूली, सदा
    याते यह काम भलो सदर सदूलो कों॥

---

१. यह शब्द मु. है में नहीं है।

स्त्री उवाच

दोहा

सूली को चढ़िवो रहै, हूली हिय के मांहि।
हाल अदूली होत है, सदरसदूली पाइ॥

कवित्त

जाननें परत है अनेक अँगरेजी अंन,
जात दिन रैंनि वर्त्त कायल-मकूली कों।
'सुकवि गुपाल' जोपै जानें फरेब तौ फरेबी
के, करैयन ते पाइ जात धूली कों।
न्याव निबटैबौ, पून स्यावति कौ कैबौं, बहु
रिसवति लैबौ इह कांमह अदूली कौ।
रहनौं हजूली कौ, चढ़िबौ है सूली कौ, सुयाते
नहिं कीजे कांम सदरसदूली कौं।

नाजर : पुरुष उवाच

हाजर करिकें जानि कू नाजर बनिहूँ जाइ।
फाजर धन लाऊं घनौं, यौं कमाय कें आइ॥

कवित्त

मान्यौ करैं लोग सब[1] जान्यौ करें अंनन को,
मेज के अगारी जवाव करि कैं छड़े रहैं।
साहब कौं अरजी सुनाय समझाय कें,
दरोगन ते मिलि माल मारत घने[2] रहैं।

---

१. है सब २. है. बड़े

झूठन कौं साचौं, साचौ-झूठौ करि-क   परे[1]
परचा कौं लै करि जितैवे कौं अरे[2] रहैं ।
'सुकवि गुपाल' सदा नाजर भये पै, लोग
हाजरी की दैर, आगैं हाजरि परे रहैं ॥

स्त्री उवाच

सोरठा

झगरन में दिन जाय, राति-दिना धरा रहै ।
रहियै गाजर पाय नाजर कबहु न हूजियै ॥

कवित्त

लागत सराप पाप[3] करत फरेबी जब,
झूठी साचौ[4] करि जावौ-तावौ बुरौ करियै ।
नाजर कहावैं, निरधन कौ सतावैं, परलोक
दुख पावैं, औ' अकारथ ही अरियै ।
'सुकवि गुपाल' बहु हाजरी कै होत सदा
साहब सौं[5] अरजी सुनावन मैं डरियै ।
रज चाटि मरियै, कि और कछु करियै, पै
अँगरेजी लोगन की नाजरी न करियै ।

थानेदारी : पुरुष उवाच

बैठि अदालति नाम की बनिहौं थानेदार ।
करहु जोर तुरमीन कौं जारि जुलम दरबार ॥

कवित्त

रैयति पै हुकम जमैयति रहति, पास
पैयत अनेक सुप, सदा पाने-दाने में।
कांपत मुगल-चोर, डरत फरेबी-ठग,
करत सलामी आय बैठे ही ठिकाने में।
'सुकवि गुपाल' सांचे झूंठे कौ करत न्याव,
लेत मुंहमागे दाम, मामले जिताने में।
रहै बीरबाने, सब गाम होफमानें, याते
येते सुप होत थानेदारी पाइ थाने में।

स्त्री उवाच

सोरठा

माटी रहति अजीज, निसदिन थानेदार की।
बवत पाप के बीज, रैयति दीन दुपाइ के॥

कवित्त

गाम परवस्त, जबरदस्तन पै दस्त दिन
अस्त तें फिस्त गस्त समस्त दगागी में।
नालसि कौ डर, रहै बिददनि कौ भर, सदां
बिगरै जुबान, बुरौ बोलै देत गारी में।
होइ गैरि हल, हाज लिपै न हवाल जीवै,
आवै¹ चोट-फेट, कहूं होत चोरी-चारी में।
'सुकवि गुपाल' यामें रहै मार मारी, याते
येते दुप भारी, सदां होत थानेदारी में॥

---

१. है. मु. फेंट

चपरासी : पुरुष उवाच

चपरासी–सिरकार की जब बाँधत चपरास।
हुकम उदूल करै न कोइ, भूप जात है त्रास॥

कवित्त

हुकम अदूल करि सकतु न कोऊ, कहू
ताकौ काम परै गिरदारन[1] के पासी कौं।
मार्‌यौ करै माल, धमकाय कै हजारन ते,
जाकौ नाम सुनै भूप सूपत मवासी कौं।
'सुकवि गुपाल' तकसीरवार जते, जिन्हें
भार–बाँध करि, सूधे करै मकलासी[3] कौं।
नात बनै पासी, कर्‌यौ करत तलासी, याते
बडौ सुपरासो, रुजिगार चपरासी कौं॥

कवित्त

दोहा

रुवाब, तेज, कूरनि त्रिना, जो बाँधत चपरास।
काम होत नहिं ऐंथ हू, दरस नहीं मोजू तास॥

कवित्त

टटे औ' फिसाद कै विवादन मैं जात छिन,
ताके[4] सुन बैन निकरैं न मकलासी कौं।
'सुकवि गुपाल जू' दिवानी–फौजदारी बीच,
आवत औ' जात होत भोगिबौ सुरागी कौं।

---

१ सुवाद २ [illegible] दरकी कौं निकारत ३ सु [illegible] ४ सु[illegible]
[illegible] ५ है बो

मारत मे मार, तकसीरवार मर्गे, जीपै—
तोपै ताही बार, यह पावनु है फाँसी कौ ।
होत अधरामी, सिरकार की पवासी, करि
याते दुपरामी, रुजिगार चपरामी कौ ॥

परमट पुरुष उवाच

तेज जोम मन में रहै परमट कामहि नेत ।
माल मिलै महसूल को, ब्योपारिन सों हेत ॥

कवित्त

जाके हाथ हैकें जागी होत है रमन्ना
सब करिकै नलामी रोकि रार्ये जोमवारे कौं ।
परयों करे आव कें बिपारिन तें काम, तासौं
हुक्म चलायो करें पीकरि तिजारे कौं ।
कहत 'गुपाल' तईनात चपरासी घर,
बैठे ही हजारन के करें वारे-न्यारे कौं ।
काम सरै सारे, दबै महसूल वारे, याते
होत सुप भारे सदा परमटवारे कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा :

नितप्रति रहनि अपराधि बहु, देत लेत महसूल ।
याते कीजे काम नहि, या परमट की भूलि ॥

१. हैं. ने २. नु हैं. नेत मे ३ मु. हैं. को ४. है. ताते मु. जोर्दै ५. है- गादी

अरनों परत मग मांझ-दिन राति नित,
प्रात ही ते यामें काम परें गरमट[१] कों।
लिपत पढत अरु माल की तलासी देत,
लेत में सिथिल करि देत[१] परमट कों।
निरदय है कें, बुरें बोलनों परत, जारी
करत रमन्ना, परें काम झुरमट कों।
'सुकवि गुपाल' लोग देत रहे गालि, [याते
भूलि कें न कीजें कबौ काम परमट कौ॥

मीरबहारी : पुरुष उवाच

सब सहरी जासों दवत, अरु लहरी बहु होत।
मीर बहरि के बैठते, गहरी आमदि होति॥

कवित्त

घाट-घाट बीच बड़ ठाठ सों रहत. दूने
दाम लेत तासों, सोई बोलतु अमेंठ सें।
'सुकवि गुपाल' रोकि राखें राअु राजन कौ,
काहू ते न सकें, माल मारें घुस-पैठ तें।
दवत रहत [illegible]र-पार के जवैया लोग,
भोग [illegible] करें काम सरें सब मेटतें।
सबही सों पैंठ, नफा मिलति इकठ, बडी
[illegible] मीर बहरी के बैठतें॥

---

१ मु [illegible] होत १ यह प्रसंग मु-
मे नहीं है।

स्त्री उवाच

दोहा

दुरमति तेज अरु' हौफ बल, धन बहु घर में होइ।
मीर वहरि के कांम कौं लेय यजारौ सोइ ॥

कवित्त

मारनो परत है मिदाग्नि सौं मूड, बुरें,
वोलत में यामें, कछु जाइ जस लीजै ना।
'सुकवि गुपाल' जोनों लालों रह्यौ करें, तौ लौं
गोनक के दांम नें यजारे मांझ दीजें नां।
विद्दति रहति है, सितानो औ' तुफानिन की,
श्राप लगें जाकौं, ताकौ अुतरन दीजें ना।
निसदिन ही जे, वदवार देपि पीजें, याते
मूलिकें यजारौ मीर वहरी कौ लीजें ना ॥

जमादारी : पुरुष उवाच

मांनत सकल सिपाह, हित, नांम रहत अुद्दौत।
हुकम इलाके[1] वीच बहु, जमादार कौ होत ॥

कवित्त

सदां दरवाजे दरवाजन की चौकी पर
करत अवाजें औ' नवाजें लोग भारी कौं।
'सुकवि गुपाल' सदां गहरे मिलत माल
मिलकि मकांनन[2] के इनरत बारी कौं।

---

१. मु. इलाके २. है. मु. मौरासित

हुकम रहै भारी,[1] सुनें सबते अगारी बात,
पामें मुपत्यारी, सब काम की तयारी कौं[2]।
राज दरबारी, बडो होत तेज धारी, याते
बडौ सुपकारी, यह काम[3] जमादारी कौ ॥

स्त्रीवाच

दोहा

यतने[4] दुख नित होत हं, जम्मादारी मांझ।
बिद्दति ही में होति नित, सदा भोर ते साँझ ॥

कवित्त

करत सिपाह सिर याके परें आय, नित
रापनी[5] निगाह परें, नजे नरनारी में।
गाम के हवाल-हाल सुनने परत नित[6]
कहने परत पुनि जाइ दरबारी[7] में।
'सुकवि गुपालजू' यलापे बीच चोरी होन
आवें चोट[8]-फेंट गस्त देत चोरी-चारी में।
छूटे घरबारी, रहै रानि दिन ध्वारी, याते
होत दुप भारी जमादारी जमादारी में[9] ॥

चौकीदारी[10] : पुरुष उवाच

जागो जागो कहत, गत्र जागौ[11] जाकी बूझ ॥
चौकीदारी करत होइ, चोर ठ[illegible]ग की सूझ ॥

---

१ है मु भारी २ है मासिपाइ हकारी का, मु सिपाह कौ हुश्यारी को ३ मु है [illegible] ४ मु इतने ५ मु [illegible] करना मु० करनी निगाह है परत नरनारी म। [illegible] मु [illegible] ७ है [illegible] में ८ है [illegible] ९ है रात दिन [illegible] छूटि जात घरबारी, कौ दुख रहै भारी [illegible] जमादारी म। मु छूटे घरबारी रहै राति दिन [illegible] याते दुख होत [illegible] जमादारी म। १० यह शब्द मु में नहीं है। ११ [illegible] शब्द है।

कवित्त

मारयो करै माल, ठग चोर औ' डकैतन तैं,
राख्यो करै राजी नित हाकिम दिमांन कौं।
'सुकवि गुपाल' चुगी सब पै लगाइ, और
पराअु ते अुगाहि दांम, वतन न आंन कौं।
सेल चमकाय, चपरास कौ झुकाइ, आय
आपने थलापन, मैं आछौ मिलै पांन कौं।
देति बस्ती मांन, दयौ करै हस्ती मांन, यातें
बड़ौ मस्तीमांन, यह कांम गस्तीमांन कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

दिल होइ मस्ती मांन पुनि, रह न दुरस्ती मांन।
मन में तस्तीमांनि कैं, होइ न गस्ती मांन॥

कवित्त

चोरी-डाके परैं, मारे परिहौ गुहाल, मार-
बांध भयैं भारी, रोब कारी मांझ दहिहौ।
गस्त देत गली औ' गर यारन के मांझ आधी-
राति पिछराति कौं पुकारत ही रहिहौ।
देसौं-परदेसिन कौं करत हुस्यारी, बैल-
तेली के लौं बहि, सुघ सेज कौ न गहिहौ।
'सुकवि गुपाल' मेरी बात कौं न गहिहौ, तै
बड़ो दुख भारी, चौकीदारी मांझ सहिहौ॥

गवाह: पुरुष उवाच

बनि गवाह गुजारि हौं, अबहिं गवाई जाइ।
कवि 'गुपाल' धन लाइ हौं, तेरे पास कमाइ॥

कवित्त

लीयें रहै मन, जन घने रहैं साथ, मिलें
पान-पान आछो[1] मामले के सम्हरत में।
होइ सावधानी औ' जबानी साफ होति, यामें
आवति फरेबी, झगरे के झगरत में।
'सुकवि गुपाल' जाय बूझत अनेक आय,
मानन दवाय सदा चीवन मरत में।
जीतत अरत, सरकार जे करत, हाथ
दौलति परति, या गवाई के भरत में॥

स्त्री उवाच

दोहा

होइ[2] चैन पानों जहां तनक फरेबी माहिं।
याते जाइ गुजारियें, कहू[3] गवाई[4] नाहिं॥

कवित्त

बोलि झूंठ सांन, गगा धरनी परनि हाथ,
रहै धक-धक देह काप्यो करै ताई को[5]।
अरनी दीजे[6] पै कहूं निकरैं फरेबी जगी—
मानौं जेलखानौ,[7] चैनमारि होन चाई कौ।

---

१ है मु, आछौ २ है होत ३ है मु कवहु ४ गवाही ५. मु गाईं को। ६ मु दवे ७ मु जेलखानो

सुकवि गुपाल' मुद्दईते वैर वधैं. औ' सदां
को दाग लगै, यह कांम वुरवाई को।
वेंपे चतुराई. छल–वल अधिकाई याते
सवते कठिनि है. गुजारिवो गवाई को।

फौजदारी : पुरुष उवाच

करिकें स्यावति[1] पूंनकी. गवाहन कौ गुजराइ।
मुद्दईन कौ देतु है. जेलपांन[2] डरवाइ॥

कवित्त

देपत ही होइ वेगि फैसला मुकद्दमा को;
जात सुनी जाति वात अरजी कों लीये ते।
नायव[3] औ' मुनसी ते[4] मिलें पूंस–पन्चरते[5]
जीतें चंग स्यावति, पक्षारन के जीअेते।
पून करि स्यावति, गवांह गुजराय, नाम
पावै जेलपांनें. मुद्दई कों डारि दीअे ते।
'सुकवि गुपाल' होत जेते सुप हीयें, सदां
फौजदारी मांहि, जाइ नालसि के कीअेतें॥

स्त्री उवाच

दोहा

नालसि कीअे पैं, कहूं पून जु स्यावनि[6] होइ।
होइ जरीमानौ परै, जेलपान में सोइ॥

---

१. मु. स्यवत २. मु. जेइलखान ३. मु. नाजर ४. मु. दों ५. दै
६. पून सुं सावुत होइ।

कवित्त

घूंस लोग पाइ, झूठे परचा सिवाय, हाल
हुरमति जाय, यामें चलति न यारी की।
तलबी भएपें, जात मुसक बँधति, हवाला-
यति में रहें सहै आच दरबारी की।
गवाहन[1] सहिति पून स्याबति[2] भऐ, हाल
जेलपानी होत, वान सुनत यझारी की।
'सुकवि गुपाल' यामें होनि मारमारी,[3] यान
नालसि न कीजे कबी भूलि फौजदारी की॥

दीमांनी : पुरुष उवाच

दीमानी में जायकें, जब कोऊ अरजी देत।
स्याबनि[4] गवाह गुजारि कें, जोनि मामलो लेत॥

कवित्त

परचि के पाच परवावन पचास पर्चे,
करि कें अपील, जिंचि[5] करत हिंगानी में।
आप सुपचार, दापलावनि करत, भुगतायो
करें काम, घर बैठेही जवानी में।
'सुकवि गुपाल' मुकदम्मा में मुद्दई सों
जीतें जग स्याबनि गवाह गुजरानी में।
ऐन कों न जानी, जानें[6] फरेब की बानी, करें[7]
आपनी-बिरानी, देत अरजी दिमानी[8] में॥

---

१ मु गवाहन २-४ मु साबुत ३ मारामारी ५ मु जिंच ६ मु बानि ७ मु होत ८ मु दिमानी

स्त्री उवाच

सोरठा

कछू न आवै हाथ, सांचो न्याय[1] न होइ कहुं।
पांय[10] पाल लुड़ि जाति, या दीमांनी के गये ॥

कवित्त

महु[1] नहि देपे, जाके[2] चाटने परत पांय,
घूस—परचा के दाम, बहि जात पांनी में।
पायन की पाल लुडि जाति जात—आवत
मुकद्दमा कौं हारें ज्वाब दई की जबानी[3] में।
'सुकवि गुपालजू' मुकद्दमा में मुद्दई सौं
जीतें जंग स्यावति गवाह गुजरानी में।
औणन कौ जानी जानें फरेब की बानी, करें।
आपनी विरानी देत अरजी दिमांनी मैं ॥

अपील : पुरुष उवाच

नाम होइ जग में, न कोऊ जिदि सकै बहू
आमें दाय धाइ, घर भर्यौ होइ रीते तें।
परचा समेत ताको दाम मिलें परे, होइ
मुद्दई पराव, सब डरें जाकी भीते तें।
'सुकवि गुपाल' अमला के लोग राषें हित,
नित्र घुस रहें, होइ काम चित चीते तें।
वैंघरि मन्दीन्द, मोटो फूलि होत डील, होत
पोन को सो चढ़िबो, अपीलहि के जीते में।

१. न्याव २. मु. पाउ ३. मु. नहें ४. मु. ताको ५. वृ. मलामी
६. यह प्रमम है मु. मे नही है।

स्त्री उवाच

कवित्त

भील सौ कुचील चील सग मडरानौं परै,
घर में न कील, रहै दुग में पगतु है।
सगै वहु ढील, हारे पील न मिलति, परो
करनी सफील, हारैं भूक्तु जगतु है।
'सुकवि गुपाल' हील–हुज्जति के होत, लागै
सील कौ सो टीको, दिनरातिहि भगतु है।
जात सब सील, दुप पावै निज डील, याते
पील को सौं परच, अपील कौ लगतु है॥

तिलगा[१] पुरुष उवाच

पात तत्व नित माल कौ, रहि पलटनि के सग।
तिलगान के हुकम कौं, कोउ न करि सकै भग॥

कवित्त

बांधत सगीन सो सगीन रहै रण बीच,
लरत सगीन सग रापे फौज रगा की।
'सुकवि गुपाल' लैके लापन की भूंजि डारै,
गढै फोरि डारै, मारैं फंड़ बोलि जगा की।
डरत कबीन, ज्वाब देत है फिरगीन कौं,
माफी होति, किती तकसीर वर्त्त दगा की।
करैं राग रगा, तत्व होति नहि भगा, यावे
सबही में भली यह चाकरी तिलगा की॥

---

१. यह प्रसंग मु. १ में नहीं है।

स्त्री उवाच

कवित्त

सीप मिलें कबौ न अुमरि बीति जाय, करनी
परति कवाज अँगरेजन के संगा कौ।
बढ़ि के 'गुवाल' ठाठ लै करि संगीन, वारि,
जोरि मुज्यौ करै फंड़ बोलत में जंगा कौ।
बुरे दुप पामैं, अेक ठौर न रहन पामैं,
देसन भ्रमावैं अेरा जानत न रंगा कौ।
कसि करि अगा, नरनो परै जोरि जंगा, यातैं
बड़ेई अडगा की सु चाकरी तिलंगा कौ॥

वंदीखाने[1] : पुरुष उवाच

मारि माल सुख सौं रहै, दै जुवाव सो नांहि।
मुद्दई को भारे परै, दो आना नित दांहि॥[2]

कवित्त

भलौ बुरौ[3] करैं होति दादि न फिरादि, जाकी
चाहै ताहि लूटैं, डर रहत न थाने कौं।
'सुकवि गुवाल' तन हृष्ट[4] पुष्ट होत, पाने–
दाने पुग रहै, नित लेकैं दोइ आने कौं।
बोहरे रु गद्दई कौं करिकैं हिराने सो
निलाने[5] बैठ्यौ रहै नित लेकैं दोइ आने कौं।[6]
होत हे अमाने, माल मारि कैं बिराने, ढीठ
होवह निदानैं, सुप पाइ वंदीषाने कौ॥

---

1. मु. जेलखाने को इस्तिगार २. यह दोहा वृ. में नहीं है ३. मु. बुरो भलो ४. वृ. हप्ट ५. मु. निराने ६. मु. में यह द्वितीय चरण है।

स्त्री उवाच

कवित्त

धूरि परै जनम, करम-क्रिया बने नही
आवति सरम पेट भरत न आने में[१]।
जाकी[२] 'सो गुपाल' हया हुरमति जाति तहा
गरत है गात वहु गैरति कमाने में।
पोदत सरक, बेधरक न रहत, औ'
नजरिबद हैकैं[३] रैनौं परे फंदपाने मे।
मार परें जानें बैरी परै पाइ याने, अकिलि,
ग्रावति ठिकानें बहुआ की बदीपाने में ॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये राजप्रबंध वर्णन
नाम सप्तदशो अध्याय ॥ १७ ॥

१ मु आवत सरम भर भरे नहीं आनें म। २ मु तारी
३ ह्वै के

अष्टादश विलास

वनज प्रबन्ध[1] : बनजप :

वैश्य रुजिगार[2] : पुरुष उवाच

धन संचय करिके बहुत, राखत बीच बजार।
याते सबही में भलो वैश्यन को रुजिगार।

संमत–कुसमत में राखिलेत लाज, राउ–
राजन की बाटैं बंद करत निसाको है।
या ही ते जगत मांझ मेवा को कहत वृक्ष,
ताते सदा होत प्रतिपाल दुनिया को है।
'मुरलिद गुपाल' काम परैं सबही सो सदा,
घर भर्‌यो रहत कुबेर को सो ताको है।
वणिज को पाको, धन जोरन मजा को, काज–
करनी को बांको मो बनाया बनिया को है।

स्त्री उवाच

दोहा :

पहिले नरम, पाछे नरम, काम भये कररात।
याते यह बनियान की, शिश्न तुल्य है जात॥

कवित्त

जानिके निकस, चाहे सोई [illegible] लेइ,
मानत न नेक कानि–कानि कोऊ ताकी है।
साहु बन्यो रहै अरु चोरी को करत काम,
दिन ही में काट्यो करै गांठि दुनिया की है।

---

१. मु. अथ वैश्य रुजिगार २. यह प्रसंग वृ. में नहीं है। मु. से यहाँ दिया गया है।

'सुकवि गुपाल' वहु जानते को मारे कौन,
काम भये पाछे फिरि जाति आँखि जाकी है।
लार गिरै जाकी, जानि सिडिविडिन ताकी दर'—
—पोकनी सदा की, यह जाति वनिया की है।

वनिज : पुरुष उवाच

दोहा

अबै वनिज कौं जायकैं, उद्यम करिहौ नाम।
सब जग जाके करैते पात नियत निज धाम[1]॥

कवित्त

वेद यों कहत, सदां लक्षमी रहति वडे
सुपन लहत, वात वनी रहै धज की।
सारत गरज, परजा के दुखी दीनन की
समन-कुसमत, म रापै लाज [illegible] की।
वडे धनमानन की, कमेरे[2] किसानन की
विगरि ईमान नफा लेतहू अपज की।
भरे रहैं माल, रिन माँग्यौ मिलै हाल, यातें
कहत 'गुपाल' बड़ी वानह[3] वनज की॥

स्त्री उवाच

दोहा

वनिज-वनिज सब कोऊ कहै, वनिज करो मनि कोइ।
जाकी हानी मार की, वनज करैगो गाइ॥

---

१ है मु जाम वाते मुर मदा न म करत यहान॥
२ है म सुकवि गुपाल पर बैठे हीं—।
३ मू वात है।

कवित्त

उटि जाय[1] माल तौ रकम रुकि जाय पुनि
घुनि सरि जाइ[2] बहु दिनके भरत[3] मैं ।
होइ जोप्यौ ज्यांन, चैंयै टाटरु[4] पत्नांन, धनी
देर न लगति, व्याज भारें के चढ़त मैं ।
आगि पाणी डीम मूसे ससे फौज–फाई डर
चोरन कौ रहत दुकान के भरत[5] मैं[6] ।
कहत 'गुपाल' कछु हाथ न परत बहु
पचि पचि मरत या वनिज करत मैं ।

बहुवनिज[7] : पुरुष उवाच

व्यापारन के बीच मैं, वनिज समान न कोइ ।
जो कछु होत किसान के, सो घर याके होइ ।।

कवित्त

रुई के वनिज नफा मिलि जात हाल, नाज–
वनिज अकालन में खोलि देत कोठो है ।
धातु के वनिज में न घुने–सरै माल कोऊ,
पट के वनिज में बिचारत न खोटो है ।
वनिज किराने में ब्यौसत अनेक जीव,
तेल–घृत वनिज में धन्यो रहै मोटो है ।
'सुकवि गुपाल' कोऊ कहत न खोटो बहु,
वनिज के करिबे में आवत न टोटो है ।

---

१. मु. हे. वूडि जात २. मु. हे. सरिजात ३. हे. धरत ४. हे. मु.— हे. मु. औ' ५. हे. धरन ६. मु आगि, पानी, दीम, मूसे, ससे, फोजफाई डर चोरन को रहन दुकान के धरत मे ७. यह विषय केवल मु. में है ।

स्त्रीउवाच

दोहा

१ई, नाज, घृत, तेल पट, धातु किरानन लेत।
ब्याज' र भारे वे चढे, यामें टोटौ देत॥

कवित्त

१ई के बनिज पानी–आगि को रहत डर,
नाज के बनिज में नरक वास लेते हैं।
तेली से रहत तेल–घृत के बनिज गाढ़,
बनिज किराने में प्रदेश डरा देते हैं।
धातु के बनिज मांझ जिय को रहत ज्यान,
पट के बनिज में कपट–झूठ वेते हैं।
'सुकवि गुपालजू' कहे न जात जेते बहु,
बनिज के करिबे में होत दुख तेते हैं।

नाज वनज[1] : पुरुष उवाच

यौं पत्ता[2] भरि नाज कौं, करत बनिज जो कोइ॥
ता ब्यौपारी कौं सदा वतने गुग'नित होइ॥[3]

कवित्त

व्यौमें जीव–जन्तु, औ' अनेक जीव जीवंया सौं
दूनी होति नफा कोठे–पास के भरैया की।
बौहरे–किसान, औं' बिपारी–धनमान जाके
दुवार ठाडे रहें, यौ पुमामदि करैया की।

१. मु मडी का रजिस्टार। २ मु धाला। ३ मु नाडा गरी मुन
४, इतन मुग निन होइ।

रहत 'गुपाल' यह अन्न में अनेक धन
संमत–कुसंमत में बात न टरैया की।
पंज को परैया, दीन दुःषको हरैया, याते
सबही में सिरें वात, नाज के भरैया को ॥[१]

कवित्त

देसन में आढ़ति बिसाहत जिनसि सब,
कोठा पास–पत्ती भरि लेत भाव झंडी के।
अन्न–गुर–चामर–किराने आदि सौंज बहु,
महँगे भजे पर निकासैं राह डंडी के।
जोरि–जोरि धन करें परच, बधाई–व्याह
ब्रह्म–भोज, नाम, हनुमान–हरि–चंडी के।
'सुकवि गुपाल' प्रजा पालत हैं हाल, याते
दया–धर्म–धारी अुपकारी[२] होत मंडी के ॥

स्त्री उवाच

दोहा

वेचन काजैं नाज कौं, वनिज न कीजे कंत।
जीवत देत धिक्कार नर, नरक जातु है अंत ॥

कवित्त

भूषौ-प्यासौ देषत में दया नहीं आवैं सम–
पेंज में रहत, बेचि सकत नही फुरती।
'सुकवि गुपाल' सो अकाल ही कौं देष्यौ करें,
माल घुनें–सरे जब रोयो करें भरती[४]।

---

१. यह पूरा छंद मु. और है. मे नहीं है। यह वृ. मे एक अतिरिक्त छन्द ही है। २. मु. उपकार ३. मु. धरती

चरपा न होइ, भूपे[1] गामन के लोग पों–
उपारि पाय जाय, जब पोंचौ करें घरनी ।
मरनी कपत में नरक जाय, मखनी सों,
यान नहिं कीजै कबौ नाजन की भरनी ॥

घी–तेल वनज : पुरुष उवाच

वनिज करत घृत तेल को इनते सुष नित होत ।
'कवि गुपाल' नितने गुनौ, हममों बुद्धि अुदोत ॥

कवित्त

सबके सरस नफा लीयौ करें नित प्रति
करि के मिलाजु वेच्यौ करें भड़मागी कों ।[3]
'सुकवि गुपाल' जिम्नि कटअू कों[4] लेन–देत,
मार्यौ करें[5] मजा सों विमानन की नारी कों ।
दादत में माल, लान बने रहैं गाल, पान–
पान[6] की मरम सुष होत घरवारी कों ।
देह होनि भारी, रुप रापत विपारी, याते
होत सुप भारी, घृत तेल के विपारी[7] कों ॥

स्त्री उवाच

दोहा

तेल[8] घृत के वनज में रहत सुचीतें गात ।
लेन देन कटअू जिनमि, निसदिन होजन जात ॥

---

१ मु मिति २ मु घृत
३ मु छाँटि कों मिलाय बेच्यौ करें नर–नारी को । ४ मु क
५ मु लोटो करें ६ मु पकवान ७ मु बापारी को । ८ मु [illegible]

कवित्त

तेली के से पट जामें चीकने बनेई रहे,
मैली[1] होत गात सो करत यह पेल कौं ।
'सुकवि गुपाल' पैलें देत परै दाम, पाछे
जिनसि के देन में, लगावत अबेल[2] कौं ।
गिरे पैर पाछे, कछू हाथ नहिं आवै, नप
फाँस लगि रहै घेरा साझ लों सबेल कौ ।[3]
लगन झमेल, मन रहै उरझेल, यातें[4]
कबहू न कीजिये बनिज घृत-तेल कौं ॥

नौन बनज[5] : पुरुष उवाच

बिगरै न कबी, सुधरे,—सुधरैं मन होइ रहै सुअधी नहिकौं ।
बहु पाय सकै नहिं कोऊ कहू, परौ पर्न रहै नहिं गौनहि कौं ।
सु उजागर है सर आगर मैं, नफा नीयो करै भरि भौनहि कौं ।
कह 'रायगुपालजू' यातें सदा रुजिगार भलौ यह नौनहि कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

छीजि छीजि कै रहत है, मन कौ जबै अधीन ।
बैठि रहै जब मौन गहि, नौन बनज करै तौन ॥

---

१. सु. मैले २ सु. झमेल को । सम्भवतः यह झमेल है ।
३. सु. लग्यो रहै घाम सदा सांझ लौं सबेल को ४. वृ. उरझेल ।
५. यह प्रसग सु. मे नहीं है ।

कवित्त

नीम पै न बिक, परै पौनिनने काम महसूल,
लगै घनो, ताप बावै बहा बीन कौ।
दैनी परै तोलि कै अधीन कौ पचीस सेर,
पानी होत हाल, पुरवाई लगै पौन कौ
'सुकवि गुपाल' बुरी मौन की रहत नीन
बेचाही कहावै नेम रहनि न गौनकौ।
गरे गान गौन, बुरो रहै हाट भौन, याते
सब पै नहीन को बनिज यह नीन कौ॥

गुरखाण्ड बज[1] : पुरुष उवाच

मीठो मुख सबको रहै मीठो रहै न कोइ।
भरि दुकान, गुरखांड को, बनिज करनु है मोइ॥

सवैया

सदा ब्योम्पो करै निनगो, गगहो, मुख मीठो रहै मुहमारन कौ।
बढ़ै आढ़नि देत बिदेसन में, बोरे थैला बचै घरवारन कौं।
हलवायन सौं रहै प्यार घनो, नफा होनि उठै बिचवारन कौं।
यह 'गपगुपालजू' बजन में सदा बज भलौ गुरखाड़हू कौ॥

कवित्त

हाथ-पाँव बगन बिदकनै रहत, माखी
भिनिरि-भिनिरि करि पाजे जात ख़ुर कौ।
धरन अठावन मे, पाजे जात रोग जाह,
बानिगेन हौं में सीपो जात लोग मुर कौ।

---

1 यह भी मूल में नहीं है।

'सुकवि गुपालजू' दिसावर कों लेत प्रान,
सासन ही जात भाऊ ताऊ लेत धुर कों।
वढ़ो रहै डर, जाय सकै नहि घर, यातें
भूलि के न कीजियें, बनिज पाडगुर को ॥

रुई वंज : पुरुष उवाच

सकल किसानन वजई,[1] आवत कबहुँ न लंज।
करत रुई के वज मे, दामन के हौंइ गंज ॥

सवैया

व्यौसत है जासौं ओटा अनेकन,[2] *होइ कवी पटकौ न रुई कौं।*
काटि कपास किसानन तेऽहि, डाटिके लेत नफा सवही कौं।[3]
(कवी)लादिचढ़ावैं दिसावरकौं,तब[4] बेचत बज लगै न कोई कौं।
'राय गुपालजू' वजन मैं[5] सवही मे भलौ यह वंज[6] रुई कौ ॥

स्त्री उवाच

दोहा

याके वदलत भाव में, टोटो आवत हाल ॥
याते भूलि न कीजिए रुई बनिज त्रिय हाल ॥[7]

कवित्त

व्यौपारी अुटैयन कौ रापनौ परत रूप
आगि–पानी–डर नेक नहीं कहुं ग्रिज मैं।
'सुकवि गुपाल' पय जोवनी कहत, भाव
बदल्यौ करत, नफा मिलै नहीं रिज मैं।

---

१. मु. बचई २. मु. जीवत जात है ओटा अनेकन ३. मु काडि किसाननतें सौं कपास, डेढायकें लेन नफा सवई कौ। ४. मु. तहाँ ५ मु, राव गुपाल है याते मदा ६. मु. रजिगार ७. यह दोहा वृ. मे नही है।

चैयें ठौर धनी, डाटैं जौपैं होइ धनी, भाव
जब बढि जाइ लोग आय आइ विजमें।
जमा जाय छिजि जूती देत भिजि भिजि, दुख,
होन हियें निज, जेते हुई के बनिज मैं॥

फिराने : पुरुष उवाच

दसन में आढनि रहनि[1] वाढन है बहु दाम।
जीव-जतु ज्यौसें बहुत, भरत किरानें धाम॥

कवित्त

आढति के लोग मान भेजिवौ करत, मिलै
भरनै मरस नफा,[2] माल के किराने कौ।
सुकवि गुपाल' जीव ब्यौसन अनेक नित
जामें दज्यौ करै लोग सकल रखाने कौ
अेक की नफा लें, टोटे ओर पै में देत, हानि
आवति न बहू,[3] सदा आछे मिलें पाने कौं।
आपने-पिरानें, दाम रहत घराने, वो
अघाने-पाने होन, वन करत किराने कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

देस विदेसन जाइ कैं भरत किराने सोइ।
मंदवारे के विरत में टोटौ यामें होइ।

---

[1] मु रहै २ मु दाम ३ मु म। ४ मु कर्मू

कवित्त

आढति बिगरि, कांम सरत न धेक, भाअु
    रापनी परत, यादि सकल मकाने कौं।
'सुकवि गुपाल' जानौ परे परदेस, माल
    भलौ बुरौ दीयें, धूरि परत जमाने कौं।
भेजत में भाल, माल मागत गुमास्ते ही,
    आस्ते ही पटै दाम सकल रकाने कौं।
रहत मलाने, बस परत बिराने, बड़े
    होत हे हिराने काम करत किराने[1] कौं॥

वस्त्र बनज[2] : पुरुष उवाच

नअे पुराणे ते सरस, जामें मिलि बिकि जात।
बडे बस्त्र के बनिज कौ, याते मन में बात॥

कवित्त

बकुचा लगाइ, बटी सज कौं बनाइ, रहै
    सीतल सुभाय, कबी रापै न मिजाजी कौं।
'सुकबि गुपाल' सदां संमत कौं चाहै, ड्योढ़ि
    धरम के नैकै सदां सारें परकाजी कौं।
छीपी रँगरेज रुप रापत रहत, त्योंमें
    दरजी–रजक रापें कोरिया की वाजी कौं।
होति वृद्धि झांझी, जाने मन रहै राजी, याने
    बड़े सुप मांजी को गुबनज बजाजी कौं॥

---

१. वृ किरांणे
२. यह प्रसग मु. मे नही है।

स्त्री उवाच

दोहा

आप लाभनी परतु है, देस बिदेसन जाइ।
ताते पट के बनिज कौ, ऐसौ है दुखदाइ॥

कवित्त

गरि-सरि जात, कहु धरें भइभरि जात
काटि जात मूसे, मसे देखि पट ताजी कौं।
'सुकवि गुपालजू' बजाजन कौं देत कछु,
मिलनि न नफा राखें गाहक की राजी कौं।
मोगँद कौं पाय नफा धरधम ते लेनी परै,
दैनी परै जमा, पाछैं आधी गनि साझी कौं।
नैन राजी-राजी, पाछैं देत नाराजी, करै
यातें बुरौ पाजी, यह बनज बजाजी कौं।

धातुबज[1] : पुरुष उवाच

रांग, जस्त, पीतरि, कसौ ताम्र, लोह के गज।
चाँदी, सोनौ रहत घर, बरन धात कौ बज॥

कवित्त

होत बड़ौ धनी, चहियें न ठौर घनी, कैंडू
चीज मिलै बनी, भलो भेस रहै गात कौं।
'सुकवि गुपाल' माल नगद सौ रहै, कोऊ
मागत न आइ सदा सानो रहै हाथ कौं।

---

१ यह प्रसंग मूल में नहीं है।

रारे सरे टरें, धरे, जरें, बिगरें न, नफा
मिलति इकट्ठौ सो दिसावर के जात कौ।
होत बड़ी घात, सोनी कमेरे व्यौसान, बड़े
होतइ विष्यात, सो बनज किये धात कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

आप लामनों परतु है देस-विदेसन जाय।
ताते धातु के बनिज कौ, पेसो है दुपदाय॥

कवित्त

देत-लेत, धरन-अुठावत, गहावत में
डर रह्यौ करें, टूटिबे कौ पांय-हाथ कौं।
'सुकवि गुपालजू' दिसावर के लावत में,
भरत भरावत में, करें प्राण-घात कौ।
कसेरे-लुहारन, रापने परत रप, छाति
डिगि जाति है, अुठाअे बोझ राति कौं।
कोअू न व्यौसात, कारे रहें वस्त्र गात, याते
बड़े अुतपात को बनज यह धात कौं॥

चूनावंज[1] : पुरुष उवाच

राज, कुम्हार, दलाल, पुनि कौकर-लामन-हार।
व्यौसत बहु जन करत में, चूने कौ विवहार॥

---

१. मु. मे यह प्रसंग नहीं है।

कवित्त

प्रीति बढ़ि जाति, यामें राउ अुमराअुन सों,
      चाअुन सौं मिले दाम, करै यह हट्टी कौं।
'सुकवि गुपाल' लोग चलन अनेक, याकी
      बिक्री लगै पै, हाल सोनो होत मट्टी कौ।
लैवै-दैवै काज को, दिसावरन जानो परै
      चौरें पार्यो रहै, याकी बिगरै न गट्टी कौ।
होत झटपट्टी, नफा मिलत इकट्ठी आमें
      दाअु-घाअु घट्टी, बज करतहि भट्टी कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

हट्टी घर की छोड़ि मन, रह भट्टी क माँहि।
जमा यकट्टी चाहियें, या भट्टी के दाइ।

कवित्त

बच्चे रहैं जौपै, तौपै मारे जाइ दाम,
      असवारी है सवै न, रज चढ़नि मगज कौं।
'सुकवि गुवालजू' न पावत भरावन मैं
      पेय पायो करै, वस्त्र रहत न गज कौं।
हानि-हानि रहै, हत्या हजारन जीवन की
      कौम नीच जानिन सौं रहै जिय झझकौ।
जानि रहै धज, हौंनो परै निरलज यातें
      मवहीं में बज को वनिज तुव पज को।

---

१. मु में यह प्रयोग नहीं है।

लीलवज : पुरुष उवाच

बीज गादि कों काटि कें, नफा घनेरी लेत।
कम्न लील कौ वज, होइ अँगरेजन सौं हेत ॥

सवैया

कवी ढील लगैं नहि बेचन मे, सदां देस-बिदेसन जात चल्यौ है।
अँगरेजन सी रहै प्यार घनौ, करे कोठी ते दीसें प्रताप बन्यौ है।
काढि कें गादि, दिसावर ते, भरि बीज में लेन नफा ससरो है।
'राय गुपालजू' याते सदा सबमें, यह लील कौ बज भलौ है ॥

स्त्री उवाच

दोहा

देत-लेन छूवत-छुअन, पाप लगन तन मंजु।
वेद पुराणन में कह्यौ, अधम लील कौ बंज ॥

कवित्त

स्वपच, गमार, जिमींदारन ते काम परै,
बड़ौ पाप लागै पेत हेकें जो निकरियै।
'सुकवि गुपाल' रुपै पैले-पाय बैठें लोग,
बाकी रहै जिनसि किसानन ते डरियै।
कूबा-यह बच्चा, कोठी करिबे कौं चाहै दांम,
नफा मिलै जबही, दिसावर कौं भरियै।
कारे कर करियै, औ' बामन ते मरिए, न-
याते भूलि लील कौ बनिज कहूं करियै ॥

१. म. मे यह नहीं है।

बौहराके[1] : अठवरिया : पुरुष उवाच

जुर्यो रहतु है जोहरा, सारि सोहरा काम।
ब्याज चौहरा आवही बौहरान के धाम ॥

कवित्त

पान खाय माल, नित देह राखे लाल, बने
लाल ए गुलाल, रहै राखि आनि-कानिया।
'सुकवि गुपाल' बहु जानि की ज चाहै दाम
उठतन न देइ ब्याज चौगुनी के पानिया।
हिये दया, दान, सदा रहत अमान, जैसे
बौहरे दलेल अठवारी नदवानिया ॥[2]

स्त्री उवाच

सोरठा

लेन आपने दाम, तिरिया बपत न देहुगी ॥
पारिन पानी राम, कबही अठवरियान सौं।

कवित्त

दया नहिं जाई, सो कमाई करि लेन दाम,
डोलै गाम-गाम, दरि रहै बड़ी मोटी है।
'सुकवि गुपाल' नित कुटन के संग बैठि
तिरिया-बपन, पाय सपनु न रोटी है।
बोलै-बुलराये डरै पटन है दाम तऊ,
सिर को पसीना आवै येड़ी नख चोटी है।
सब कहैं खोटी, दुरि होसु किनि रोटी, सदा
याते यह जाति अठवारिया की छोटी है॥

---

१ यह प्रसंग मूल में नहीं है। २ यह छंद अधिक है।

बौहरे° : पुरुष उवाच

मनै करे तैं वनिज ते, करै वहुरगति नारि ।
ताकौं अब बरनन करूं, सुनि प्यारी सुकमारि ॥

कवित्त

जोनि सुप होति, विन कर्मेई कमाई होति,
जग में अुदोत होत भरम अपार है ।
आनिकानि मानैं, सब जन सनमानैं, धन—
मानै रहै याते, सुप पनि कौ सदां रहै ।
कहत 'गुपाल' बूझ[१] होइ सब जागे पाछै,
लोग बहु लागें, घेरें रहै घरबार है ।
रापे सब प्यार, कबो आवति न हार, याते
सबमे अगार, बौहरे कौ रुजिगार है[२] ॥

स्त्रीवाच

सोरठा

पहले घर धन देअु, पुनि[३] घर घर मांगत फिरौ ।
सोते दुष सुनि लेउ[४] कबहूँ न कीजे बहुरगति ॥

कवित्त

भारी करैं बैर[५] जाइ देइ न अुधारी, जाइ
मरम ते मार्यो चोर भै ते तन छीजियै ।
चित में न चैनौ होत, पर हाथ दैनौ होत,
नैनौ होत मन—धन देपि देपि जीजियै ।

०—मु. वहुरगति को रुजिगार
१. है. मु होत/होति
२. है. मु. यह पंक्ति इस प्रकार है
"आवत न हार धन बढ़त अपार याते
सब ते अगार बौहरे को रुजगार है ।"
३. है फिरि ४. मु. चोर

बोलनो परत बुरै, डोलनो परत घरै,[1]
कहत 'गुपाल' याते काहू कौं न धीजियै ।
दीजै न उधार, होत मागत में ख्वार, याते
भूलि रुजिगार बोहरे कौं नहिं कीजियै ।

ग्रामबोहरे[2] : पुरुष उवाच

आसामिन की बजई, भरिकैं निज घर नाज ।
गई गाम के बोहरे, करत रहत हैं राज ॥

कवित्त

नये औ पुराने[3] नाज भरे रहैं जाकैं,[4] औ
हजारन असामी आय परे रहैं पास में ।
लेन-देन जिनसि में, परत सवायो, परे
धरम के दूने, दाम भयो करै धाम में ।
'सुकवि गुपाल' कबो खामी न परनि,[5] सदा
नाम बरहैरैं बैठ्यो रहत अराम में ।
आय निज धाम, लोग करैं रामराम, होत
ऐसे सुख-धाम, बोहरे कौ गई गाम में ॥

स्त्री उवाच

दोहा

छाती पै चढ़ि लेतु है, दाम मरेन कों[6] मारि ।
ऐसे नौ बौहरेन[7] कौं, जीवो है धिरकार ॥

---

१. मू. परै २. मू. गामन की बुहरगति । ३. मू. पुराने ४. मू. नाते
५. मू. सुकवि गुपाल कबों खामी न परनि कभूं । ६. मू. नामीनर
७. मू. छाती पर चढ़ि लेत है, दाम नरन को मार । ८. मू.
बुहरन का ।

कवित्त

हाअु हाअु करि लाअु-लाअु में लगेई रहे
पाइन-पवामें, गहे परच की पाछो है।
सादी औ' वधाई में निपट रापें नेंनो मन
पुन्य के वपत को भगर भेप काछो है।[1]
कहत गुपाल जोरि-जोरि धन धरे, अेक
कौडी काज मरे. मरें परें जव वाछो है।
पात गर्‌यौ-सर्‌यौ, पर्‌यो पौन[2] के तरे को नाज,
अैसे वोहरेन ते कँगालपनो आछो है॥

आसामी[3] : पुरुष उवाच

पोता के परे पे, पटे सवते पहल रुपे,
परच औ' पादि, पामो परति न कामी को।
देवे औ' कमायवे की, लाली अेक रहे, और
रहत न डर, काम चलत हरामी को।
'सुकवि गुपाल' बोझ याही के रहत सिर,
सादी औ' वधाई वर वाहर औ' गामी को।
होत वड़ो नामी, कवि परति न पांमी, अेते
सुप होत मामी वोहरेन की असांमी को।

स्त्री उवाच

दोहा

देत में सवाअे, व्याज लेत में सवाअे, जिसि
पेत में सवाअे, सो सवाअे पादि गनियें।
और को 'गुपाल' लेन देत नहि माल, दूजो
लेवे को उधार, हौन देत नहिं धनियै॥

---

१. सु में यह पंक्ति इस प्रकार है—'बड़ो धन जोरि के जगत में अमर रहे, जिकिर फिकिर बीच मन जाय काछो है।' यह पंक्ति सु में तीसरी है। २. बृ. बीज। ३. यह प्रसंग सु में नहीं है।

कवित्त

भूमि मे शयन, निशि-रयनि खराब होति,
बोलनो परत झूंठ-सांच लैने दैने में।
चिंता नित रहति, जिनमि घटि बढ़िवे की,
जिय जोख्यो ज्यान को रहत डर टैने में।
देश-परदेशन में डोलनों परत, मैले
भेस ही सों सहनो परत नैव धेने में।[1]
कहत 'गुपाल' कवि आढ़ति बिना तो होत,
दिन-दिन दूनो दुख दुसह लदैने में।

काठकौवंज[2] : पुरुष उवाच

लगी रहै बिकरी सदां, होत दांम के गंज।
सब वजन के बीच में, भलौ काठ कौ बंज॥

कवित्त

लट्ठा-सोठि-पठा नये आवत दिसावर तें,
मिलें जमां भारी कारषांने ते अरज में।
'सुकवि गुपाल' जामों ब्यौसे वेरे बारे, वहु
बढ़ई-मजूर, कांम करत भरज में।
जग के किमांमी, रुप रापत रहत, होत
सवही कौ सुप जाकी सहज जरज में।
मिलत करज, जाते सरत गरज, कहीं
होति न हरज, कवी काठ के बनिज में॥

---

१. वृ. टैने में
२ यह प्रसंग मु. है. मे नहीं है।

स्त्री उवाच

दोहा

दामन में पानी परै, घुनें–सरै जो माल ।
रहत सदा बेहाल ते, करत काठ की टाल ॥

कवित्त

हाथ नहे दाम को निपारिन ते काम परै
घुनें–सरै धरें जमा याम हाल छीजियै
रातिदिन यामें कर्णी परै रखवारो धर–
धावन–अुठावन में नित तन छीजियै
तोलत–तुलावन में, गिनत–गिनावत में,
व्यापारी मजूरन तें मन न पतीजियै ।
बुरो रहे हाल, ओ' पुमीसी रहे पाल,
याते टाल को 'गुपाल' रुजिगार नहीं कीजियै ।

पत्थर वज[1] : पुरुष उवाच

गरै, सरै, न घरै, बहै, डर न चोर को होइ ।
याते वजन में भलो, यह पत्थर को जोइ ॥

कवित्त

राखे हित भारे पानवारे गाडवारे होन.
कारखाने कारन सो बूझ भोर–गज में ।
'सुकवि गुपाल' रचो बिगरै न माल, हान
होतु है निहाल, राअु राजन के रज में ।

---

१ यह ग्रन्थ मु है म न गे है ।

चाहो तहाँ रहो, माल कहूँ परयो रहो कछु
नालो न रहत, मज रहै तन मंजु में।
मिटै सनपज, कबी आवति न नज, होत
दामन के गज, नदा पत्थर के वंज में॥

स्त्रीउवाच

दोहा

इनअुन इनन होन निन मदा भो मंज।
याही ते सबमें बुरो यह पत्थर को बज॥

कविन

पानि, गटमोंन, कारपांनन पै जांनो परै,
होन जिय ज्यान, याके देत नेन छोजे तें।
राजसो 'गुपाल' कारपाने बहु चनै तब,
पावै नफ यामें, घूम अुस्तन के दीजे ते।
इरयो रहै मन, माल भरयो रहै जहां, मूड़
मारनों परन मोल तोल माझ बीये ते।
नगरि के मिन्दे पै बहत्तरि को पर्च मन
पत्थर सो होत वंज पत्थर को कीजे ते॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये वनज प्रबंध वर्णन नाम
षष्ठादश विलास:

ऊनविंशति विलास

दुकान प्रबंध

दुकानदारी : पुरुष उवाच

दोहा

करि दुकानदारी अबै बैठूं जाइ बजार ।
धन कमाइ सुख पाइहौं प्यारी या संसार ॥

कवित्त

राखन कमान यामें, घटनि जमा न, करै
सबही जबान साची जानि न जबान की ।
आवन न हानि, भनौ पात पान पान, करि
सिवजू को ध्यान, सुनें हरि चरचान की ।
कहत 'गुपाल,' जानै[1] मान अभिमान बहु
पावकै नफान, काम करत जिहान[2] की ।
भिक्षुक दान, बहु आवत मयान यामें
होत धनमान ऐसी करत दुकान की ॥

स्त्री उवाच

दोहा

सब दुकानदारी नफा, जाको[3] यामें जानि ।
करत दुःख भारी रहै, बैठत घरि दिन रानि ॥

---

१ यह पूरा प्रबंध मु. में नहीं है। इसमें से कुछ दुकानों का उल्लेख 'वणिक प्रबंध' के अन्तर्गत है। २ है मु. आदर्श ३ मु. [illegible] ४ है [illegible] ५ है मु. [illegible]

कवित्त

मारी[1] मार करें दिननानि सिरकारी लोग,
सौगुनो भरम धरें आमदि की बारी में[2] ।
मारी जाय रकम, बिना लियें सुधारी देन
बाकी रहि जातु है, नवारी नरनारी को ।
कहत गुपाल चौकीदारी, जिमीदारी लौं
भिषारी लोग लाइ प्यारी करत लिवारी कौं ।
आवत अखारी, पैंडी देवैं घरवारी, सो
कह्यौ न जाइ[3] भारी दुष या दुकानदारी कौं ॥

सेठ की दुकान : पुरुष उवाच

दुज दीनन दीबो करें, देनि दसना दान ॥
सेठन के धामें गुनी, साधु संत सनमान ॥

कवित्त

देसन में नाम, जीव जीमें धांम–धांम, गांम–
गांमन में कोठी राखें राजा रहे दब ते ।
मंदिर–मकांन, कुआ–बावरी बनाईं लाल,
मंत्र–सदावर्त्त, पुन्य दांन होन दबते ।
'सुकवि गुपाल' रापें राजन के न्यौर, गादी–
तकिया लगाय, बैठे रहे सदा छवि ते ।
वनजें करोर, आई–गई कौ न छोर, सदा
पाते सरवोर, बान सेठन की सब ते ॥

---

१. हे. मार २. हे. सु. आय धनवानें नाही बर बिपारी (सु. व्यापारी) कौं । ३. हे. सु. जात

स्त्री उवाच

दोहा

कवि-कोविद, द्रुज दीनजन, जाचिक लोग अनंत।
सेठनि कौं घेरें रहें, मित्रपुत्र मत-महंत ॥

कवित्त

नारी-डाके परिबे कौ डर रह्यौ करै, निन
चढ़ते भरम चिति पावत न चिनहीं।
सेठि कौं बिगारि, बनि जात हैं गुमासते
अनेक रोग लगें, भावै भोजन न छिनहीं।
'मुकवि गुपालजू' दिवाने निकरें पै, कोठि
होति बरबाद धन जात जित-तितहीं।
चितहीन भयें, कोऊ कितही न बूझें, ऐती
बिद्‌दनि रहनि, सेठ-साहन कौ निन ही ॥

गुमास्तगीरी : पुरुष उवाच

मारयौ माल करै सदा, सब सौं करि धुमपेंट।
सेठिन के सुगुमास्ते, होत सेठि के सेठ ॥

कवित्त

मनके चढ़ै पैं बनिजात हात यामें, आप
हुकम चलाइ काम करयौ करैं ओसनै।
जेती जमा जाके, सब हाथ में रहनि, काम
निकरें अनेक, सदा रहत हुनाम नें।

'सुकवि गुपाल' रहै धन की न कमी कहूँ
जाकों सदा धनी दर माहू यों मिले पास तें।
रहे बिसवास तें, 'औ' टरै नहिं पास तें,
सु याते भोगें सेठ साहून के गुमासतें॥

स्त्री उवाच

दोहा :

रचि-पचि सेठि' र साहू कौं, कितो करो किनिहित्त।
तऊ गुमास्तन कें रहति, सिर बदनांमी नित्त॥

कवित्त

आढती अनेकन कों लिपने जवाव परें,
होतहू पराव धन देत लेत चाहू कौं।
'सुकवि गुपाल' रजनामे अरु पातन मैं
करि जमां पर्चे समझाये होत दाहू क।
पैठ पर पैठ वहु हुंडिन सिकारत मैं,
जात दिनरैनि लेपे में सब जाहू कौ।
सेठि अरु साहू, केती करो क्यों न चाहू, याते
भूनि कें न हूजियें गुमास्तें सुकाहू कौ॥

जौहरी पुरुष उवाच

सोरठा :

जौहरीन कौ कांम, सेठ बने बैठे रहैं।
भरे रहे धन-धाम, बहुत[१] भरम यामें धनों॥

---

१. है. वढ़े; मु. भरम बड़ग यामे घनों।

कवित्त

पन्ना, पुषराज, मोती, मूगा, मनि नाना भाँति,
हीरा, लाल, चुनी[१] नगर बान मुघाट के ।
सौने अरु चादी के गराअु जरे जेवरन
जगर-मगर जोति[२] जहा होनि बाट के ।
जौहरी चहाय, अुमगाय बनि बैठ रहे,
अैम करि सदा, मुप लीयो करै पाट के ।
'मुकवि गुपाल' रहे सपति के ठाठ, याते
कहे नहिं जात, मुप जौहरी की हाट के ॥

स्त्री उवाच

सोरठा

जौहरीन की हाट, बातन ते नहिं होनि है ।
करे और की काट,[३] तब पावै यामें नफा ॥

कवित्त

देषिकै मुकम्मा का पाय जात हाल, पर-
पत जवारायति मे नजरि के मामहे ।
गरज न मरै, नित विकरी न परै, घनी
गाहकी न करै,[४] पटे ज्यों के त्यों न दाम है ।
मोन लेत-देत यामे जोख्यो रहै बडो मदा,
'मुकवि गुपाल' वहु चहियत नाम है ।
रहनि न माम, मुस्तो रहै आठो जाम, याते
मत्र में निकाम, यह जौहरी को काम है ॥

१ मु चुन्नी २ मु द्युति ३ मु करि औरन की काट ४ मु है परै

कलावत्तू : पुरुष उवाच

बने ठने[1] बैठे घने, लेत दाम निज धाम।
कलावतू के बटन कौं, है अुमराई काम॥

कवित्त

बड़ो तौल–मोल, अुमराई रायें डोल मोल,
नेत–देत माल घरि देत हाल हत्तू कौं।
'सुकवि गुपाल' यहु करत कमाई, नफा
मिलत सवाई. जमि बैठें अगर-धत्तू कौं।
आपने[2] अधीन बने रहत अमीन बीन
होई[3] के नुखीन, खायो करें भात सत्तू कौं[3]।
होत मदमत्तू औरें करि देत अुत्तू, आप
होत बड़े वत्तू, कांम करि कलावत्तू कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

देह सकल रहि जाति है, सदां आठहू जांम[4]।
याते कठिन 'गुपाल कवि' कलावत्तू कौं कांम॥

कवित्त

जाति जिय सत्त, याको महनति अति, देह
लटति घटति भाव माल के डटत में।
इत–अुत चलत में हारि जात हाल हाथ,
होत नहि आछो कांम चित के बटत में।

---

१. मु. बने २. मु. अपने ३. मु. [किवी कर्मी न रहनि, जमि बैठें अगर घन् कौं। ४. मु. याम

सुकवि गुपाल' चलि चूनर औ' रंग जानि
नारि रहि जाति, ऊँचे नीच के उठन में।
रोम थुपटत, दाम हाल न पटत, जोति
नैन की घटत, कलावन्त के वटत में॥

हुंडीभारौ : पुरुष उवाच

हुंडामनि लै हौं बहुत करि हुंडी की हाट।
आढ़ति देस विदेस करि, धन के करि देउं ठाट॥

कवित्त

नगरों करें आढ़, देस देस की पकरि, औ'
भंडार भर्यो रहत कुबेर के समाने कौं।
बाढ़त भरम जमा डारत अनेक' दाम,
सिकारत हुंडी दाम पटत जवान कौ।
'सुकवि गुपाल'³ दाम दाम लेइ हुंडामनि,
ब्याज पाइ दाम गनि देय मजा धान कौ।
होत' धनमान, सुप पावत निदान कह्यौ
जान नहिं आन, सुप हुंडी की दुकान कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

रातिदिना यामें घनों, रहत परच की बाट।
हुंडामनि की हाट में, धन होइ बारह बाट॥

०—यह प्रसंग मु में नहीं है।
१ है अनेक २ है जवान ३ है सुकवि ४ है [illegible] ५ [illegible] है
म मातृका में [illegible] है।

कवित्त

चाहियै गुमास्ते' रु आढनि अनेक ठौर,
दैनी परै चिट्ठी लिपि रगडे जिहांन के।
करिकें फरेबी. झूठी हुंडी लिपि लावै, तब
मारे जात दाम, बिन दीजे ते जमान के।
'सुकवि गुपाल' देस देसन में फैले दाम,
बडी कठिनाई ते, यकट्ठे होत आनि कें।
रहै न यमांन तो दिवाली कढे हानि, कहे
जात नहिं आन दुप हुंडी की दुकान के ॥

हुडाभारौ° : पुरुष उवाच

आढ़ति देस-विदेस मैं, धन के रहतहु ठाठ[1]।
भरम धरम बाढ़त घनौं, करि हुंडामनि हाट ॥

कवित्त

देसन में आढ़ति औ' बाढ़त है दांम नांम,
होइ गांम गांम कांम करत इमांन मैं
'सुकवि गुपाल' बहु बेचत में बीमा, सो
बिपारिन तें माल, मारयौ करत अवान मैं।
आवत सयांन, देइ दैव मनमांन, होइ
हियै हरि ध्यांन, मति रहै दया दांन मैं।
चाहियै जमांन दब्यौ करति रकानि[2] सुप
येते मिलै आनि, हुंडा-भारे की दुकान मैं।

°- मु. हुडाभारे की दुकान
१. है. मु. रहत मुठाठ २. है. मु. ग्कान

स्त्री उवाच

दोहा

बहु बीमन के बीच ते, धन होइ बारह बाट[1]।
हुंडा-भारे की कबहुँ, करो न याते हाट[2] ॥

कवित्त

ठौर ठौर कर बहु रापने परत नर,
बिद्दति को भर है तलामी जोमवारे[3] कौं।
बीमा के करत होत धक्कर-पकर[4] जिय,
चिंता रह्यौ करें, नित[5] सांझ लों सवारे कौं।
'सुकवि गुपाल' नाव डूबिबे को भय, चोर
लूटि औ' पगोटि डर अगिनि के जारे कौं।
मन जाय[6] भारे, माल पहुंचे न द्वारे, तौनों
रहै भय[7] भारे मदा हुंडाभारे वारे कौं।

दलाल : पुरुष उवाच

बातन को रुजिगार, दाम लगै नहिं गांठि को।
याते 'सुकवि गुपाल,' करहु[8] दलाली जाइकें ॥

कवित्त

नही रंग-दंग, दाम गाठि को न लगे, जाहि
जानें जगे-जगे, यामें भागि जगै भल को।
जान जित-जित, नित-तित नित प्रति हित[10]
करत रहत मेल मदा ही बजाल[11] को।

---

१. है. मन, मु. बैनमें धन ह्वां बारह बाट। २. है याते कबहुन कीजिए हुंडामन की हाट ३. मु कीजै कहूँ न हाट। ४. है. गभारे को ५ मु. धुकुर पुकुर ६ मु निज ७ मु है रहै ८ है मु दुख ९. मु. करहु १०. मु. जात नित-नित नित प्रति मान तिनहित ११. मु बजार को।

मनमानें जिनमें, मजे में मजा मारें औ'
 मुल्यामत[१] में मोल मह[२] मागूयो मिलै माल को।
सुकवि गुपाल[३]' यामे बन्यो रहे लाल, होत
 हालही निहाल, ऐसो करत दलाल को॥

स्त्री उवाच

दोहा

'राय गुपाल' दलाल की मोते सुनों हवाल।
चाल-चलै अनादली, भूम्यो करत बेहाल॥

कवित्त

रहत बिहानी, औ' जजानी में परत मन
 लागै इदजाम बिन करत हुन्यालो[४] को।
सौदा के निवाबत-दिवाबत हिरान होत,
 आदिमी कुचाली ते खराबी फेरा-फारी[५] को।
'सुकवि गुपाल' दाम देत आजकाली करें,
 गारी[७] दे, बिपालो[८] काम करें, छलछाली[९] को।
चलै चल-चाली, कबी रीतो कबी पाली, यह
 होत नहिं हाली, काम कठिन दलाली को।

आढ़ति : पुरुष उवाच

निसदिन ब्योपारीन की, आढ़ति काढ़ति काम।
माल मारि लावै घनों, लहरि अुडावै धाम[१०]॥

---

१. मु. मिल्यावन २. मुहँ ३. मु. है. 'वहत गुपाल'। ४ मु. औंर जालों मे परत मन ५. मु. हुन्यारी को ६. मु. फिराकारी को ७. मु. है. गारी ८. मु. विपारी ९. मु चलचाली को।
१०. है. कै लाल बनि रह्यो नईनिया करत निजधाम।

कवित्त

तोलन में जाकैं सब चीज आय रहै भाजु
नाजु की पवरि लाग्यो करै आठो जाम मैं।
धान को जु माल मो वलायति में विकै[1] रह्यो
मह्यो सस्तो लैकें भरि लेत निज धाम मैं।
सुकवि गुपाल[2] लेत देत में विपारिन सों[3]
मार्यो करै माल नित[4] वैठ्यो निजधाम[5] मैं।
सरै सब काम होन देसन में नाम बहु
चाटत है दाम सदा आढ़ति के काम मैं॥

स्त्री उवाच

दोहा

लेपे के ममझाब ते, मूड मारनों होइ।
आढ़ति वारे की[6] सदा, वहुत परावो जोइ॥

कवित्त

माल बिकवाइ, पटवाइ दाम देनें परें,
भरवाये माल दाम मारे परैं किननें।
भेंने औ' विपारिन को चैये ठौर घनी, लोग
पान-पान-मिश्री-भाज[7] घेरे रहैं तिननें[8]।
भलो-वुरो माल, आप रापनो परन, हाय
पाव रहि[9] जात, जिस्मि[10] तोलन है जितनें[11]।
'सुकवि गुपालजु' कहै न जान किननें
मर्दनिया की आढ़ति में होन दुख तितने॥

---

१. है वैचें २. है. कहत ३. है गुपाल ते ४ है. सदा ५. है निज
ग्राम ६ है का ७. है सेरें मु सेन ८ है जितने ९. है. टूटे
१०. मु है. माल ११ है मु दाने

तमोली : पुरुष उवाच

पाइ–पाँन परिधान सजि, बैठूं[1] पान–दुकान ।
करि मयांन, धन माँन बनि, सबकौ रापौं[2] माँन ॥

कवित्त

राच्यौ रहै मुप, बहु पावै जामें सुप, बड़े
लोग रापें रुप, वात बनी रहै तोली की ।
आदर ते आवै, जामें आमदि अधिक, व्याह
सादी औ' बधाइ, वरपोत्सव औ' होली की ।
'सुकवि गुपाल' बनि ठनि मेला[3] ठेलन में,
देप्यौ करैं सैल कौं, लगाइ आड़ रोली की ।
पोलि आगें ढोली, वानि वोलि कें अमोली, नफा
लेत महुँ वोली, हाट बैठि कें तमोली की ॥

स्त्री उवाच

दोहा

'कवि गुपाल' याते अबै, करि न तमोली हाट ।
रहिहौ जोवत राति–दिन, गाहक ही की ब ट ।।

कवित्त

देपे विन, पान गरि जात, सरि जात, जामें
जात जमा जोपे न समार[4] करैं ढोली कौं ।
डूबि जात इस्क में, सुहात नहीं घर जाकौं,
लागि जाति द्रष्टि, कहूं काहू मिठबोली की ।

---

१. है. बैठों २. है. रापन ३. है. मु मेले ४. मु. मुहँ ५. मु. संभार

'सुकवि गुपाल' वाकी पटति न हाल जाकी,
मानें न बजार में उधार नेंक तानी की।
मगन की टोनी,¹डारयौ करें बालौ-ठोली याते,
करियै न हाट पिय कबहू तमोली की॥

गधी : पुरुष उवाच

गधी कौ रुजिगार यह, आछो है जग मांझ।
सबहू सुगंधित करतु है निसदिन भोर'रु सांझ॥

कवित्त

राजु-अमराजुन सौं, बडे सेठ साहुन सौं,
होत¹पहचानि, घर ज्वाब मलमधी कौ।
गनी औ' गरयारें, हाट-बाट, पुरद्वार, हरि-
मंदिर वहारें करें, करिकें सुगंधी कौं।
'सुकवि गुपाल' दाँम थेंथू गुने हाल होत,
माल के बिके पै, नफा लेत बहु-धधी कौं।
वाहू के न बधी, नित रहत प्रसधी, याते
सबही में'भलौ रुजिगार यह गधी कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

गधी के रुजिगार की, मदी बिकरी होनि।
फरफंदी होइ जो बचहूँ.⁵करें धनहि⁶ अुट्टोन॥

---

१ हानी २ मु सूनि ३ मु रहै ४ है नें ५ मु तौ कद्
६ मु गुपन

सवैया

हालहिं जाके परै नहिं दाम औ' काम परे न उधार को धींज ।
काहू के हाथ बिकाइ नहीं औ,' अकाल-दुकान जमी सब छीजै ।
'राव गुपाल' बड़ी कठिनाईं ते, यामे कछूक नफा जब लीजै ।
होत नहीं बिकरी वहु धधी की, गंधी की याते दुकानन कीजै ।

अतार[१] : पुरुष उवाच

बैदन सों रिलि-मिलि, मार्यो करै मांगि आप,
होति है हकीम, जानें बैदक को सार कों ।
चूरन-मुरब्बा, रस-औषधि, अनेक भांति
नीज मचि-रुचि धर रापत बहार कों ।
हाल ही 'गुपाल' रुपा कौड़ी को करत, तन
रहे रुष्ट-पुष्ट प्यार रहे नरनार कों ।
सारहिं सँभारि लेत, नुपन को सार, चैत
क्वारहिं में तार भलो लगत अतार कों ।।

स्त्री उवाच

सवैया

बिकरी नित जाकी न होवि घनी, पर दुःप्यहिं में मन पागतु है ।
गम पांनीं परै, वहु बैदन ते, दिनराति नुयाहीं में लागतु हैं ।
यह कांम रसायन को 'गुगुपाल' उधार को कोजु न आंगतु है ।
दिनराति कुतार-कुतारहिं को, कबी तार अतार को लागतु है ।

वदनी : पुरुष उवाच

वैठहिं लेत घनी नफा, बनी रहति तन जोति ।
करि बदनी के बंज में, निधनी धनी सु होत ।।

---

१. है. और ने २. यह प्रसंग मु. है. मे नहीं है ।

सवैया

दैनौं' रु लैनौ परै नहिं मान, सु ज्यौंसै दलाल अनेकन जो मैं।
देस-विदेसन जानौं परै, कवि जोग्यौं' रु मिलपुक आवै न सीमैं।
चौठी सगाइ बिनाही जमा, नफा बैठ ही लेत जबान की ता मैं।
नीमैं जमैं सब बजन कौ, इतने सुप होत सदा बदनी मैं॥

स्त्री उवाच

दोहा

दैनौं लैनी करत मे, चैन रहै नहिं जौन।
धनी होत निघनी तियं, बदना की बदनीन॥

कवित्त

नित-प्रति यामैं धर होतु है दलालन कौं,
घटि-बढ़ि सुनत ही तन धन छीजियै।
भाजुन की धबरि, लगावत लिगावर त,
लिपत लिपावत ही चौठि । सौं हीजियै।
देत मजरानौं, हलबाजन के सग बैठि,
नफा जानि सब, टोटौ आवै जब पीजियै।
'सुकवि गुपाल' यामैं बदनीनि हानि, यातें
भूलि बहू मालन की बदनी न कीजियै॥

तोला : पुरुष उवाच

बोलन सबही प्रीति सौं, अति सनमानत जाइ।
तोलत मैं तोलान की, खोज मिसै सब आइ॥

कवित्त

जाके त्रिन तोलें, सब रुकी रहै रासि, बहु,
मिलिकै बिपारिनतें मार्‌यो करै दाम हैं।
'सुकवि गुपाल' माल सस्तो परि जात हाय
काम परें सब कौं, मुराय साय गाम हैं।
दोऊ साह बीच, जिस्सि लेत-देत साहन कौं,
महत बढ़ायो करै, निज निज धाम है।
बन्यो रहै तोल, जिस्सि आवति अतोल, याते
सब में अमोल, यह तोलन को काम है॥

स्त्री उवाच

दोहा

बिना माल के होन कहुँ, कोंऊ न बूझत बात।
डांड़ी झोला देत में बोला गारो पात॥

कवित्त

घटि बढ़ि दीये, दोऊ ओर कौ रहत बुरो
कंजुन कौं लेत-देत, रहै डर मोला कौं।
'सुकवि गुपाल' तन रहै घूरिघाना, हाय—
पाऊ थकिजात मुप बोलत में बोला कौं।
भोर ते लै सांझ लग, मिनै छुटकारो नहीं,
लागतु है पाप घनों गारै डांडी, झोला कौं।
कहै बुरबोला, तन सूपि होन कोला, दुग
होतहू अतोला, जिस्सि तोलत में तोला कौं॥

इतिश्री दपतिवाक्य विलास नाम काव्ये बनज प्रबंध वर्णन नाम
ऊनाविंशति विलास:

सवैया

चोर सदां नरमें, घरमै नित जोर्यो ते देह छिनों छिन[1]छीजै।
देत'रु लेत बड़ी न नफा, दमरी पर टोटो रुपैया कौ दीजै।
ब्यौसे न जीव' रु जंतु 'गुपाल,'मिले विधि जो नपरो तन छीजै[2]।
देषत ही कौं लिफाफो रहै, पिय फाको भलो पै सराफो न कीजै।

बजाजी : पुरुष उवाच

बनिज सराफी कौ तिया, करन न दीनौ मोहि।
करहु बजाजी, तास सुप, बरनि सुनाऊं तोहि॥

कवित्त

बसन हजारन के रापत दुकांनन में,
तरहु तरहु रंग सूत पट साज अे।
दुसमन जाड़े के, गरीबन उधारे देत,
हौले-हौले लेत दांम, रापत हूं लाज बे।
भिक्षुक कौ उपकार, करत उगाहि रास-
लीला करवाय, बहु जोरस समाज अें।
जगके जिहाज, बड़े बड़े करें काज, अति
हिंमिति दराज, सब जग में बजाज अें।

स्त्री उवाच

दोहा

आनी आजी करत दिन, हांनी ह्रांजी जांहि।
या बजाज के बजाज सों मेरी राजी नांहि[3]।

---

१. मु. दिनों दिन २. है. तहां कहा नाम पवाद को बीजे; मु. छीजे
३. है. मु. परम्यो बनिज बजाज को सो सुनि लीनो कान।
कवि 'गुपाल' ताके सुनी औगुन मोते जानि॥

कवित्त

जीव को न पान, सनमान काहू दीन को न,
धन के अधीन काम यामें दगाबाजी को।
मानत न सांच, वाकी थकं लगै लांच, सौदा
लेके तीनि पाच, नोग करे यतराजी को।
'सुकवि गुपाल' नित आगे लाय-लाय वहु,
हारने परत थान गाहक की राजी को।
आवत में आजी, घर गये लाजी-माजी करे
याते यहु पाजी, रुजिगार है बजाजी को॥

परचूनी : पुरुष उवाच

वरन्यौ वनज बजाज को बहुत बात करि ख्याल।
परचूनी की हाट को, वरिहैं 'सुकवि गुपाल'।

कवित्त

अन्न, गुड़, तेल, बूरो, चामर, घिरत, नोपे
लै लै वहु जिनसि, दुकान में भरत है[२]।
चून गिसवामें जाधी[३] आमें रद्द आम, धरे
दाम लै कें देत, पूरे बाट न धरत हैं।
यनते चहुत मोमा पावत बजार, दया-
धर्म-उपकार, भूप गवरी[१] हरत हैं।
आवनि न क्लों,' मादो करत है दूनों, ऐ
'गुपालजू' दुकान परचूनी की करत हैं॥

---

१. है. बहु
२ मु. धरत
३ मु धारी

स्त्री उवाच

दोहा

परचूनी की हाट के, कहे बहुत तुम ठाठ।
ये याके[1] दुख होत हैं, तिनके बरनूं पाट।

कवित्त

तोलें दिन राति धूरि-धूसर रहत गात,
दूपे दिनराति चिढ़ रहै सौज सूंनी[2] की।
फौज के परें पै, सौदा नांही के करे पैं, जहां
सहनी परति बात, बहुत कपूंनी की।
'सुकवि गुपाल' वहु माल भरिवे में दीन,
दुप कौं न देखें, लगें बरषा न धूनी की।
पांत धूनी चूनी, करि महनति दूंनी, याते
सबही[3] में ऊनी है दुकांन परचूंनी की।

पसरट्टौ : पुरुष उवाच

परचूंनी करन न दई, करहुं पसारट जाइ।
जामें जे सुख होत हैं, सुनि प्यारी चित लाइ।

कवित्त

सौंज बहु रापें सरय भाषें मोल गाहक सों,
मांगें सोई देइ, रापें सब की संभारी है।
रोगी, भोगी, सोगी, जोगी, सबको परत कांम,
महंगी जिनसि कौडी कारन निकारी है।

---

१. दु.जे जाके २. है नु दरि दगे हाट दान कहे नव चूनी गी
३. है. सबहूं ते

कवित्त

नाना पकवांन, सांक, पाकन, तयार करैं
स्वाद नित नयो लेन मेवा औ' मिठाई कौ।
सिरका मुरब्बा बहु सौंजन बनाइ, चाइ–
दूध–दही–पोवा, चोपी खड़ी[1]मलाई कौ।
देसिन ते धरो, नृप देत परदेसिन कौं,
: रापत चहुल सोभा करिकें[2]कमाई कौं।
'सुकवि गुपाल' करै देह मैं मुट्याई, याते
बड़ी सुपदाई यह काम हलवाई कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

हलवाई की हाट मैं, घटत द्रगन की जोति।
छेरकांन के बीच मैं, बहु दुप यामैं रांनि॥

स्त्री उवाच

गातु होति छीन, यामैं रहे बलहीन, नित
देषत मलीन, भेग दीसै तेलियाई कौ।
भीर धपते मैं, लैन–दैन की रहै न सुधि,
रैनिहू न चैन, डर अगिनि घुआही[3]कौ।

---

१. मु. दापरी
१. मु. करत
३. मु. है. घुआई

गरज परे पै हाल बिका न माल, पिय !
'सुकवि गुपाल' ऐसी करत कमाई कों।
नैंन हीनताई, करै बस्त्र चिकनाई, याते
बड़ी दुषदाई यह कामहलवाई[1] कों।

कसेरे[2] : पुरुष उवाच

हलवाई की छोडि कैं, करहु कसेरट जाइ।
जामें जे सुष होत हैं, सुनि प्यारी चित लाइ॥

कवित्त

राषत अनेक चीज, षोरी सब धातन की,
थारी, बेला, लोटा, भरे भौन बासनन के।
पूरौ तौलि देत, मांगि लेत दाम बाजिबी
गामन ते आवत परीदिबे कौं जिनके।
बदलिहू लेत, बदलाई लेत बाजिबी ही,
कहत 'गुपाल' ते भरे धाम धन के।
संपति समाज, बडे [illegible] [illegible] [illegible],
याते भले छबरा ते, पेसे कसेरन के॥

स्त्री उवाच

सोरठा

जहां पान नहिं पान, जनाकु कौं कहा दीजिबै।
याते 'सुकवि गुपाल,' करहुं न कीजै कसेरट॥

---

१. है मु. कलवार
१. मु. कसेरट को कलवार
२. मु. बार बैठि दुकान

कवित्त

सहर अनेकन में आढ़ति को कांम परै[1]
  दाम बिन बात तामें रहति है अटकी।
मोल-तोल बीच, नीच चातुरी करत कोऊ,
  टटकी न जानें, बात करत कपट की।
होइ जो अमाल, बेगि बिकै जो न माल, नफा
  पाय जात हाल, भुसी मिलै नांहि बटकी।
'सुकवि गुपाल' झटपट की न बात, यातें
  भूलि कें न कीजियै दुकांन कसेरट की।

इतिश्री दंपति वाक्य विलास नाम ग्रन्थे दुकान प्रबंध वर्णन नाम
त्रितो विलास:

1. मु. वहु

एकविंशो विलास

अथ जाति प्रबध

कायस्थ : पुरुष उवाच

सवैया

अर्व रु वर्ष के लपन कों, अमरावन को समझावतो को तो !
कौन छुटावतो वंदिन कों, पुनि दान दै दीनन को दुप पोतो !
चित्रगुपित्र कों बस वढाय' गुपाल,'यों जातिको पोपतो थोतो !
धर्म्म की नीम जमावतो को, कहूँ जो जगमें नहि कायथ होतो !

कवित्त

होफ कों नरेस, अलाधि को विधेस, प्रजा–
पाल नर भेस, पुनि ओध को अमस सो ।
विभो को सुरेस, रनभूमि मे नगेस, भारी
बल को पगस, सन पानिप जलेस सो ।
'सुकवि गुपाल' राजे रिपु को फनेस, धर्मधारी
धरमेस, पुनि तेज को दिनेस सो ।
[illegible] धनेस वहू [illegible] सेस, राजे
कायथ हमेस बुधि कै को गनेस सो ॥

---

१. मुद्रित प्रति मे यह प्रसग नही है।

कवित्त

लेत बुग्वाई वजै कलम कसाई मुप छाई
　　रहै स्याही जाको देपत दरस है।
जहां कर डारै व्हा करोग्न को मारै टोटौ
　　हाल ही निकारै नहिं आवत तरस है।
वेश्वन सौं यारी मांन मदरा अहारी नीच
　　सवही में भारी आंखैं रापत परस हैं।
दया नहि रापे मीठौ कवही में भाषे याते
　　कायथ की जाति पोटी सवने सरस है॥

सुनार : पुरुष उवाच

सव रुजिगारन मैं भलौ यह सुनार कौ कांम[1]।
दांम रहै निज हाथ में जगर-मगर होइ धांम॥

कवित्त

काम परयौ करै सदां जाको पागिमांनर तैं
　　रह्यो करै हाथ धन याके विवहार कौ।
नित नई नारिन सौं निवह्यो करत नेह
　　निलैं घरे दांम गढ़ि गहने सुढार कौ।
मुकदि गुगल सौनौ सुमेर कहाइ कैं
　　सुजगार[3] है माल मार्यो करैं नरनारि कौं।
रतन सनाग्नि जानैं[4] किन्मित वपार याते
　　सवमैं अगार रुजिगारह सुनार कौ॥

---

१. है. सुजन की मह २. है. गाढ़ै
३. है. मु. उज्जगार ४. मु. जानैं

स्त्री उवाच

दोहा

बनें नहीं बहु बपत पै जब सुनार को काम।
दामन में पामी परै नाम होन बदनाम।

कवित्त

जुरत न स्वास, हफ–हफी आइ जात[1] औ
कपोल बढ़ि जात टटो रहें नरनार को।
महावत चोर, जात आगिन की त्यौर, जोर
बरनो परत, डर रहे चोर–चार को।
'सुकवि गुपाल' गोप्यों रहति पराई, पर
धन के अधीन काम याके विवहार को।
देह परै हारि, रहै अगिनि अगार, याते
सबमें उवार, रुजिगारहु सुनार को।

दरजी : पुरुष उवाच

मरजी सबकी राखिहू, करि दरजी को काम।
गरजी अपनी मारि कै, लहरि अडाम्र धाम॥

कवित्त

[२]रहे निज धाम बहु जोर को पर न काम,
ताते आठों जाम यों न परें नरहीन को।
भेस भलो धारें, माल ब्योसन में मारें, नाना
भाँतिन सँभारें, काम सूत पतमीर को।

---

१. है. बनै न जो बहु बपन में। २. ह. ग्रंथ ३..मु. है पट

'मुकवि गुपाल' कछु गांठि को न लगै, महूँ
मंगि सोई लगै, हाथ करि दरजीन कों।
राखै मरजीन, पट ब्योंतत नवीन, याते
सबमें अमीन, यह काम[1] दरजीन को॥

स्त्री उवाच

दोहा

सीमत पोअत होत निन, सदा भोर ते संज।
दरजी के रुजिगार[2] में, देह होति है लुंज[2]।

कवित्त

काम पर्यो करै सिरकार की बिगारिन को,
सदा नरनारि को तगादो रहै जीको है[3]।
कहै पट[4]चोर, जात आपिन को त्यौर,[5] जोर
तोर के लगावन जंजार रहै जीको[6] है।
'मुकवि गुपाल' जब पटन न काम, तब
परतन्न[7] काम, कछू बिना मरजी को है।
सीमत में हीको, डर रहत सुई को, सदा
याते बड़ी भीको[8] यह काम दरजी को है॥

छीपी[10] : पुरुष उवाच

भजनानंद सुसील सत, नामदेव के अंस।
याते यह छीपीन को, जग में वंस प्रसंस।

---

१. है. रुजगार
२. मु. है. . सीमत पोवत जात दिन सदा आठहू जांम।
याते यह दरजीन को बड़ो कठिन को काम॥
३. मु. जाको ४. है. मु. कहावत ५. है. जैं जोंनिन पै जोर ६. है. टीको ७. मु. है. हाथ परत ८. मु. है. जो पै बने ९. है. अति भी को
१०. मु. करी भोको

सवैया

अपने घर आठहू जाम रहे, मुप दीनो करैं सो समीपन को।
हित सापि बढाय बजाजनते, सो करयो करैं काम महीपन को।
पठ नांना प्रकार के छाप्यो करैं ठगि सौदा मे लेत हरीफन को।
कह 'राय गुपालजू' या जग में रुजिगार भलौ यह छीपन को।

स्त्रीउवाच

दोहा

कूरो घर बाहर रहै करत धाम में वास।
याते यह छीपीन को सब ते काम उदास॥

कवित्त

चूतर-हायन मे, छेक परि जाति पुनि,
देह दहि जाति, माम रहनि न चाम मैं।
रँगत रँगावन में, धोवत मुपावत मैं,
रहनो परत ठाढ़ो, जाइ सीत घाम मैं।
पहले 'गुपालजू' लगावत है जमा ताको,
दरवयो करत जाको छानी देत दाम मैं।
रहति विराम, बास आयौ करै धाम, दुप
होत आठौ जाम, सदा छीपन के काम मैं।

रँगरेज : पुरुष उवाच

रगरेजन को जाट के, बनू भलो रँगरेज।
देगू मैन बजार को मन मे गाधि मजेज॥

कवित्त

होति पहचानि जानि राव सिरदारन सौं,
लेत दांम चौगुने, मुरँगि रँगिरेज कौ[1] ।
बैठि कैं बजार मं, हजारन ठिनारिन मैं,
करि-करि[2] प्यारन कौ लेन मुष फैज[3] कौं ।
'सुकवि गुपाल' भाग जगत बिसाल हाल[4]
अजरौ रहत बेस वकसत[5] फैज कौं ।
बड़े तन तेज, सब कर्‌यौ करे हेज, याते
सब में अमेज रुजिगार रँगरेज कौ[6] ॥

स्त्री उवाच

दोहा

लगे आइ जब साहलग, अरु आवत त्यौहार ।
भीर परे, जब आइ कें, रँगरेजन कें द्‌वार ॥

सवैया

बुरे लील में कारे रह्‌यौ करे हाथ,
सो हारि परें रँगिरेजन कौं ।
बिगरें कहु रैनी चढ़ावत में, जब
ज्यौं कढ़ि जाय करेजन कौं ।
बिनत दांम के काजे फिर्‌योई करे,
मुजरा नहिं पावें मजेजिन कौं ।
यह 'राय' 'गुपालजू' यातें सदां
रुजिगार बुरो रँगरेजन कौं ।

---

१. है. दिरब मांघ तेज को मु. रँगरेजो को। आगे की तुरो में भी फैजौ को आदि है। २. है. मु. मी ३. है. मु. लौरि जौरि ४. है. मु. मैज ५. है. माल ६. है. महां ७. मु. स्नत
८. है. मु. रहत मजेज गम्यो करें सब हेजत याते
सबमें बिशेष रुजगार रँगरेजो कौ ॥

मालिन : पुरुष उवाच

अंकुर नव[1]फल फूल दल, सब की लेत बहार।
याते यह सब में भलो, मालिन को रुजिगार॥

कवित्त

देप्यौ करैं बाग फुलवारी की बहारन कौं,
पायो करैं फल-फूल मूल[2]जो बहाली[3]कौ।
बैठि देई-देवन के देहुरे पै सदा, कथा
कीरतन सुन्यौ करे बेचि फूल पाली कौ।
'सुकवि गुपाल' सिन्दारन दिपाय माल,
लेत महुँ माग्यौ फल फूलन की डाली कौ।
रापत[4]बहाली, राजी रहै घरवाली, याते
सबमें पुस्याली को सु पेसो यह माली कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

फूल फलन के बेचते, जोर होनि छिनारि।
पर्यौ रहत नित[5]बाग में, सदा छोड़ि घरबार॥

कवित्त

कलम करत पेड, लागत मराप-पाप,
जोर परै सदा,[6]रौसपट्टी की सँभारो कौ।
'सुकवि गुपाल' मापौ उठि न सकत मात,
बेंचनो परत हाल फिरत पाली कौ।

---

१ मु जब २ है मानों ३ है मु सदा फल फूल ४ है मु
रगानो वा ५ मु देखा ६ है है ७ है बडो

फूल–फल फलैं, छोटे पौवन के हनै [1]पसु–
पछी दलमलै, डर रहै रखवाली कौं ।
कबहीं न टाली, [2]देह परि जानि काली, याते
बडौही [3]बिहाली [4]कौ सुपेसौ यह माली कौ ॥

मालन : पुरुष उवाच

सजिकैं सिंगार, रापैं चटक मटक, हरि–
मंदिर भवन द्वार, बैठी अै घनी रहैं ।
राजु–सुमराजु, सिरदार–बड़ी प्रीति करैं
बिसई अनेक बस जिनकै घनी रहैं ।
'सुकवि गुपाल' फल–फूल–मूल बेचि करि,
मैनन कौं देपैं, सदा सुप मैं सनी रहैं ।
धारि फूलमालन कौं, राजी रापि मालिन कौं,
पाय नवमालन कौं, मालिन बनी रहैं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

बैठनौ परतु है निलज्ज हैं बजार बीच,
बेचै साग–पात, फूल–फल–मूल संग में ।
रहत 'गुपाल' संग छिनला–छिनालि, कुल–
धरम न सधै, रह्यौ आवै रोग भग में ।

---

१. है. मु. पौधा हनै चनं २. मु. डाली ३. है. दुखाली
४. है. मु मबमें

रहत विहाल, मो मुचाल न चलन, सदा
जापै मत्र बाली-छोटी डार्यौ करें मग मे।
पात वुरे मालन, बटार्यौ करें गालन
मु याने धरकार, जन्म मालिन को जग मैं।

कुजर : पुरुष उवाच

बिकरी को करि कैं सदा, लेत चौगुने दाम।
याने यह सब मे'भलौ, कूजरेन कौ काम ॥

कवित्त

चचन लगाय डाली, मालिन के पास जाइ,
बोलि कें गलीन में, जगामें नगरे कौ हूं।
कम तोलि देत, हान राजी करि दत, पुनि[3]
करि अंल-फैल, मोल लेन झगरे कौं है।
'भुवनि गुपाल' हाल नगद पटाइ दाम
करि निज धाम मजा मारत दरे को हूं।
बेचत हरे को, नहिं जात मुजरे कौ, याते
सब में परे को, '[१]जगार कुंजरे को है ॥

स्त्री उवाच

दोहा

साक-पात लै कैं सदा, बैठत बीच बजार।
याही ते'कम तोल की, कुजरन की रुजगार ॥

---

१ है मु ने २ है बैठत ३ है मु फिर ४ है पर्दे बा
५ मु गरष्ट ६ है यात यह। मु यात सबहीं म बुरी, कु जरन
की रुजगार।

कवित्त

गनी औ' गर्‌यारन कौं ,गाहृत रहृत नित,
बोझ उतरैं न जाके सिर तें धरेन कौ।
'सुकवि गुपाल' हाल सरि–गरि जात माल
चाँदी लगे कौड़ी होति, बिकरी परेन कौ।
डाँडी–झोला मारत में, पायौ करै मारि–गारि,
बड़े डर रहै पेत क्यार के करेन कौं।
रहें अुजरेन, आछी होइ गुजरेन, याते
बडो दुप दुप देन, रुजिगार कुंजरेन कौ।

भटयारे : पुरुष उवाच

आय मुसाफिर नित नये, अुतरत जाके द्वार।
भलौ भट्यारन कौ सदा, याते यह रुजिगार॥

सवैया

नित रापन राजी मुसाफर कौं, घरबार सँभारि हजारन कौं।
दिनराति तँदूर चढ़्यौई रहै, सुप लीयौ करैं हैं बजारन कौं।
बहुते हँडियान के स्वाद कौं लै, मजा मारैं यजार[5]निजारन कौं।
यह 'राय गुपाल' सराहि के बीच, भलौ रुजिगार भट्यारन कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

होइ मुसाफिर और कौ, दूजी लेइ बुलाइ।
तबहृ भट्यारन बीच में, परहु लराई आइ॥

---

१. है. लेन २. है. मु. भारी दुप ३. है. रम ४. है मु. मार्‌यौ कोरे है ५. मु. परे

कवित्त

भिनिरि भिनिरि माषी करयौई करत, फैन्यौ
रहत भट्यारपनौं, माझ¹लौंमवारे कौ ।
परोयन पीटैं, नित आपुस में होंडें, करयौ-
करत तमासौ,²देत लेत घर भारे कौं ।
मुकवि गुपाल' मिरदार में निपाजे विन,
लगै यलजाम मुसाफर के अुतारे कौ ।
वम्त रहै कार, लगै डरारे, याते
सदही नै मारे दुप होनह भट्यारे कौं ।।

कडेरे : पुरुष उवाच

डर में बैठे रहै, लेत घनेरे दाम ।
याते भलौ 'गुपाल कवि,' कडेरेन कौ काम ।।

कवित्त

जानौं न परन हनिगार कौं पराजे द्वार,
मार्यौ करै मजा, नित³साझ लौं मबेरे कौं ।
जायकें 'गुपाल' मजा देप्यौ करै पैठन कौ,
दाम घनें⁴लेकें, लिप्यौ पुग्यौ रापैं डरे कौं ।
धुनन रई कौं, जाडे-पाले कौ रहत सुप,
छैल बन्यौ बैठ्यौ रहै, दाति निज बेरे कौं ।
अुटन,मबेरे मान मारत वडेरे, वडे
होनह कमेरे, काम,परत कडेरे कौं ।।

---

१ है गति २ है लगाई ३ है लगित म मजा मत्र ४ है मु गर
५ है म्ना ६ है दमा ७ है उठर

स्त्री उवाच

दोहा

ताय ताय करिबौ करैं, कान दई न सुनाय[1]।
दुषी कड़ेरन कौ सदा, रुई धुनत दिन जाय ॥

सवैया

मुप स्वास रुकै, बढ़ै–पांसीपरई, सदा मारत जोर बड़ेरन कों।
डिग कान दईहू सुनी न परै, न बरक्कति होति कमेरन कों।
सब देह पै रुम जमेई रहै, लगैं टूटत वांसि अरेरन कों।
यह 'राय गुपालजू' याते बुरौ सब में रुजिगार कड़ेरन कों ॥

कोरियाकौ : पुरुष उवाच

करत कमाई कांम की, करि कोरी कौ कांम।
गांम गांम की पैठ करि, लहरि उड़ाऊं दांम ॥

कवित्त

देष्यौ करैं सैल, गांम गांमन की पैठन की,
लीयौ करैं लहरि सुकत्तिन की ढोरी की।
बिरहन गाइ कैं, मृदंगन बजाइ, नैन
करि हाव चाव,[2] गावै झूमरि दै मोरी की।
'सुकवि गुपाल' करैं देवी की भगति, चाल[3]
चलत में मांत करि देत घोरा घोरी की[4]।
रहै यकठौरी, बहु होत[5] छोरा–छोरी, याते[6]
सबही में भोरी, यह जाति भलो कोरी की ॥

---

१. बू. सुहाय २. मु. हाव चाव ३. है. रावै ४. है. कौरिन नदौन चाल चल्यौ करे घोरी कौं। ५. है. होय मु. करै ६. मु. मदा

स्त्री उवाच

दोहा

नफा नहीं यामे कछू, भूख मरत दिनरानि ।
याते यह मतमें निमक, कोरियान की जानि ।।

कवित्त

गज धमकायो करैं, जानि के निमक जानि
पान है सराफ, औ' बजाज नफा जोरी को ।
सुकवि गुपाल' बुरो बैठक रहति, सदा,
पूरत म तानौं, काम परैं दौरा दौरी को ।
रहन अँगान, इतराय चलै हाल, जाकौ
रहत जंजाल दिन रानि जोरा तोरी कौं ।
होत है अघोरी करि सूतन की चोरी, बुरो
मगही में ओरी को मुकाम यह कोरी को[7] ।।

बढ़इयाः पुरुष उवाच

ताकौं[1] काठ-क्वार गौकाम परत दिन[5] राति[6] ।
बढ़इन के कजिगार को, यातें बड़ी मुवान[7] ।।

कवित्त

बडी-बडी ठौरन वनामैं नाना भाति काम,
महल मकान औ' मकान मढई रो है ।
'सुकवि गुपाल' जौन रहनिहु बडी याते,
नित प्रति परैं काम घडा घडई को है ।

---

१ है बडी २ है देगन
३ है पान सबन्ते म बुरो ग्जगार यह कोरी को ।
मु दान बड़ा निरजोगी को मुकाम यह कोरी को ।
४ है जान मु जाना ५ है कौं ६ है दिन आर ७ है यह दान
है मुगदाद

रहैं परवस्त, औ' किसानेन पै दस्त, बड़े
मस्त है के बातन के दावे[1] गढ़ई को है।
रहैं ब्रढ़ही को, माल मारि गठई[2] को,
सबही में बढ़िही को यह काम[3] बढ़ई को है॥

स्त्री उवाच

दोहा

छोलत सबदिन छोपटो, रहत पराये दुवार।
याते यह बढ़ईन को, पराधीन रुजिगार॥

कवित्त

पेड़न के काटत में, लागत सराप-पाप,
दबैं-पिचैं हाल, प्राण जातु है गढ़ैया को।
रहै पर दुवार, चाहे[4] 'काठ' रु[5] कवार, नित
रहे मार-मार. कमजोर[6] के करैया को।
'सुकवि गुपाल' यह करत में काम बड़ो[7]
भूप बढ़ि जाति तोरि जातुह बढ़ैया को।
दूषत करैया, कहैं लबार-कसैया, याते
बड़ो दुष दैया, यह करम[8] बढ़ैया को।

लुहार : पुरुष उवाच

परे दाम लैकें सदा, रहत आपने द्वार।
याते बड़ो बहार को, लुहार को रुजिगार॥

---

१. मु. धावै २. है. मु. गढ़ही ३. है. मु. रुजगार मु. होत दू को,
सबही में बढ़िही को याते, सबमें सुखारी रुजिगारी बड़ई को है।
४. है. मु. चैयें ५. है. मु. औ ६. मु. काम और ७. है. यह
८. है. मु. रुजगार

सवैया

जिन हाथन होत हैं काज घने,[1]सब विश्व के कारज सारन कों ।
कुस औ' पुरषा पितिहारन कों, रिपु मारन देत हथ्यारन कं[2]
निस-वासर ही सजते जिनकों, सदा काम परै है उदारन कों ।
यह 'राय गुपालजू' याते भलो, सब में रजिगार लुहारन कों ।

स्त्री उवाच

दोहा

हाथ-पाम भारो रहै महूं कारो परि जात[3] ।
या लुहार के काम ते,[4]निस दिन छीजत जात[5] ॥

कवित्त

महनति भारी, देह नयै जनते कारी होत
याकों काम जारी, घेरा[6]साझ लौ सवार कौ ।
धौकनी के धौंकत मैं, धूपत रहत औ'
भुरसिबे को रहै डर, अगिन अगार कौ ।
'मुकवि गुपाल' सदा लोह ते परत काम,
रंग छूटि जाति है अठाओं बाज भार कौ ।
देह परै हारि, बुरो रहै घरबार, याते
बडो दुषकार, रजिगार है लुहार को ॥

सकतरास : पुरुष उवाच

महल मवास तराम करि, नाम करहु परकास ।
बनि कैं सकतरास बहु, घन मांगूं तो पास ॥

१ है मु कामधना २ है नृप ३ है जिनगो मु जिन। ४ है मुहका माल रहाद। ५ है मु म ६ है धूपत जाद। ७ है परो मु पेर ८ मु करा दरकाम

कवित्त

वह मंदिर और मवासन कौ, सो उतार्यौ करैहै तरासन कौं।
घरे दामलै 'राय गुपाल' सदा, सो कर्यौ करै काम करामन कौं।
मजालै करि गैल गार यारनकौ, मुगद्यौं करै लै कैं लरामन कौं।
[1]यह 'राय गुपालजू' याते भलौ रुजिगार सो मंकतरामन कौं।

स्त्री उवाच

दोहा

मेलमिलापी आय कें, बैठि सकत नहिं पास।
याते कबहुँ न जाइ कें, हूजै मकतराम॥

कवित्त

पत्थर ते परै मारतौ मूड सदां [2]तन बस्तर ते लगि छीजै।
कान दर्इऊ सुनी न परै ढिग बैठन-वारौ नहीं तहां धीजै।
जोरत जोर जँजार रहे, दबि जात में प्राण अकारथ दीजै।
राय गु न पवासी भलौ, परि भूलिकै मंकतरासी न कीजै।

राज: पुरुष उवाच

सबही ते ऊँचे रहैं, मंदिर महल सँभार।
याते भलौ 'गुपाल कवि,' राजन को रुजिगार॥

कवित्त

[3]होत बड़ौ नाम घनौ मिलति धनांम, औ
बनामत में धाम, कांम परै राज-काज कौं।
रहत 'गुपाल' कारखाने पै हुकम, सदां
मुखिया कहावतु है, मद्दति के साज कौं[4]।

१. है. नित यांतें भलौ रुजगार सदा नदमें भलौ मकतरामन कौं।
२ है. परी ३. है. मू. होत ४. है. म. धनौ पावत

माल गड्यो–दन्यो हाथ जब परि जाय,¹तब
होतु है निहाल सो बनाइ कें लिहाज को।
कहैं राज राज मिलें रहु मुग माज यात
सब में दराज रुजिगार यह राज को।

स्त्री उवाच

दोहा

चारि पहर बैठक रहति छुट्टी पावत साँझ।
रगर-झगर रहत वहु या रजई के माँझ॥

कवित्त

फटि जात हाथ धूरि धूसर रहात गात,
दूर्षे दिन राति, महै टटन की भीरी की।
सुकवि गुपाल सदा रहनो हजूर औ'
कहावत मजूर, पाय सकत न बीरी कौं'।
कान-चत्र तासे सिर पर फिरयो करे, कोऊ
गिरे परे मरे पै धरैया नहिं धीरी कौं।
देह परे पीरी कोऊ जानत न पीरी यात
बडो निर्ममीरी को मुकाम राजगीरी कौं'॥

चित्रकार : पुरुष उवाच

चित्रकार कौं चित्र के, निपुन गुण्य सरसात।
प्सो सुनि लीजै चित्त दै प्यारी गुण अरदान॥

---

१ है मजूर क समाज का मु मुद्दति मु गमान का २ है यह जब मिन जाय ३ है म गिन्न मु पग्न बढ़ ४ फर र ५ है औ कहावन मजूर जिन रहन हजूर पार सकत न बीरी है। ६ है सबहीं म बडो मजगार राजगीरी को ६ है मु न

कवित्त

निसदिन हरि के चरित्रन में रहै चित,
होत है पवित्र चित्र–चित्रत विचार कौं।
'सुकवि गुपाल' सो [1]निहाल होत हाल, सो
हजारन हो लेत है रिझाय रिझवार कौं।
चतुराई आवै, विश्व करमा कहावै, देस
देस नाम पावै सो सँभारि घरवार कौं।
रापत बहार, लट्टु होत नरनारि, याते
बड़ौ सुपकार, गजिगार चित्रकार कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

धन ठहरै नहिं पास बहु जाति नैन की जोति।
पावत कितने दुःप नित, चित्र चितेरे होत[2]॥

कवित्त

लापन कमाइ, तऊ पापन रहाइ, यामें
सीता कौ स्त्राप–पाप लागत अुकेरे कौ।
'सुकवि गुपाल' देई देव कौ लिपत चित्र,
पावै कष्ट भारी सदाँ सांझ लौ सवारे कौं।
त्यौरी फटि जाति, औ' कमरि रहि जाति, मरि
जात, अूंचे नीचे गिरे लगें ढके ढेरे कौं।
परे चित्त फेरे, कोअू सुहातु न नेरे, दुप
होत है कितेरे, चित्र चित्रित चितेरे कौं॥

१- है- मु. ज. २. है. सोरठा के रूप में है।

भरभूजा[1] : पुरुष उवाच

बहुत जमा चहियै न कछु, लैनो परै न मोल ।
याते भर-भूंजान कौ, गब में नाम अमोल ।

कवित्त

आयत औ' पायत में नाज पर्यौ रहै, न
अकाल औ' दुकाल रुप व्यापै या विपार तें
'सुकवि गुपाल' धनी लोयौ करै नफा, सदा
भूजिकै नवैनी कारपाने सपत्यार तें ।
जानौ न परत, पानपान कौ रहत सुप,
ब्योमें जीव-जतु, हित रहै जिमीदार तें ।
बैठत बजार थाय रहै सब द्वार, सुप
होनह अपार, भरभूजन कौ भार तें ।

स्त्रीवाच

दोहा

जीव करोरन की सदा, निसदिन हत्या लेइ ।
भरभूजा-भूजत, भुजत भार द्वार कौ भेइ ।

कवित्त

रोजन रहत, दिनराति फूस-पात, भार
सेवत रहत जानें मगनि न पूजा कौं ।
घर अरु बाहर में, कूरो परयौ रहै, देह
भूजत भुजै, अैसो दुप-नहिं दूजा कौं ।

---

१. यह प्रसग मू में नहीं है ।

धूरि–धूमसे सौं. किचि पिचि रहै देह, वस्त्र–
हाथ रहै कारे, नृप रहत न सूजा कौं।
'सुकवि गुपाल' कोऊ दुप कौ न बूझा, सदां
याते यह बुरौ रुजिगार भरभूजा कौं ॥

कहार[1] :पुरुष उवाच

निकट रहै सिरदार के, प्यार करें सिरदार।
दूनौं मिलत कहार कौं दरमाह्यौ र' अहार ॥

कवित्त

अंग में अुमंग, दस–पांचन कौं संग, कर्‌यौ
करै रागरंग, देप्यौ करत बहार कौं।
'सुकवि गुपाल' रहैं राजन के द्वार, कीयौ
करत जुहार, राजी रापि सिरदार कौं ।
बैठ्यौ घर रहै, कांम कबी आय परै, सदां
जान्यौ करें सब असवारिन की सार कौं।
रहै अपत्यार, दूनौ मिलत अहार, याते
बड़ौ सुपकार, रुजिगारह कहार कौं ।

स्त्री उवाच

दोहा

मोई सब कोई कहै, दुप बूझै नहिं कोइ ।
ढोवत बोझ कहार कौ, राति दिनां दुप होइ ॥

---

१. यह प्रसग है. मु. मे नही है।

कवित्त

भारी परै देह, नेह घटै सबही सों सदा,
    गाह चल्यो करै, दुप देषत न नारि कै ।
'सुकवि गुपाल' मग भजनों परत, चल,
    नों परत अगार कों अुठायबो झमार कों ।
न्होहू जमि जान, पग कटि–छिदि जात,
    दिनराति पपकी को डर रहै सिरदार को ।
देह जानि हारि, दूनो चाहियै अहार, याते
    बडो दुपकार रुजिगार है कहार को ।

तेली : पुरुष उवाच

घर घर बेंचू तेल को, करौं हवेली त्यार ।
तेली को रुजिगार करि,.दौलति करूं अपार ॥

कवित्त

जिनकी रहति घर घर में प्रकास जोति,
    बेचि परि[5]–तेल रुपा करत अधेली को ।
तोलि तोलि रामिन, किसानन के पास, नफा
    नीको करैं बहु, स्याम बसि कैं गमेली को ।
सुकवि गुपाल,' नित बन्यो रहै लाल, अेक
    रापत हैं आगरो सदा हो पुदा–बेनी को ।
भरी रहै मेली, ऊँची रहति हवेली, जोनि
    रहति नवेली, काम करतिह तेली कौं ।

१. है मं २. है पेजरा म नेन ३. है. पाम ४. है. मु. सुरो
५. है. मु. या र मचड़ी मे भयो रुजगार पर तेली को ।

स्त्रीउवाच

दोहा

मैली भेस रहै सदा, रहत कुचीले[1] गात ।
फिरत चक्र सौं रातिदिन, काल-चक्र मँडरात[2] ॥

सवैया

पट चीकने धारे मलीन रहै, बुरो रंग रहै सु हवेलिन को ।
बहुआवतिआँधि फिरयो करैं जी, लगि कोल्हूनकेचक फेलन को ।
डर लाठिके टूटिवेहू को रहै, नदा[3] बेच्यो करें परि डेलिन को ।
यह 'राय गुपालजू' याते सदा रुजिगार बुरो इन तेलिन को ।

सेक्का : पुरुष उवाच

पक्का ह्वैकें पीठि कौ[4] लेइ नक्का मुष जाइ ।
याते यह सक्कान कौ, पेसौ है सुषदाइ ॥

कवित्त

देष्यौ करैं मैल, पनघट पनिहारिन की,
गली औ गरयारन मैं, मारयौ[5] करैं मस्ती कौं ।
'सुकवि गुपाल' पितिहार[6] जिमनदारन के,
भरिकैं पषाल, काम करत दुरस्ती कौ ।
घर-घर जायकें, कमाय पाय पाय,[7] माल
हस्ती सुष रहै, सो चढ़ाय करि अस्ती कौं ।
दबत गृहस्ती, बस्ती करै परवस्ती, याते
सबमैं दुरस्ती, कौ सुपेसौ यह भिस्ती कौ[8] ॥

---

१. है. मु. होइ चीकने २. है. मु. यातें सबही में बुरो तेलिन की यह जान यह बात । ३. है. मु. नित ४. है. मु. याही तें रुजगार यह सक्का कौ सुषदाय । ५. है. मु. डार्यौ ६. है. भिरदार ७. मु. धाय माल हाल ८. सबही तें भलौ रुजगार यह भिस्ती कौ ।

स्त्री उवाच

दोहा

निसदिन ढोवत मुसक को, पीठि घाव रहि जाय।
याते यह भिस्तीन को, पेसो है दुखदाय ॥

कवित्त

घटि जाति उमरि सम्हरि पै न रह्यो जात,
बरिहाल लफन जैसें कबूतर लक्का को।
ढोवत रहत बोझ, पोवत रहत दिन
रोवत रहत, जिमिदार[१] अक्का कौं।
'सुकवि गुपालजू' बिगारि करि आमिल की
गिरे परे हाल कुआँ ताल भगि टक्का कौं।
पान ज्वारि मक्का, सहनाँन दल ढक्का, याते
मनहीं में लुक्का, रुजिगार यह सक्का को॥

बारी कौ[४] पुरुष उवाच

बारी कौ बैठें नफा, घरबारी कौं होइ।
बारिन के रुजिगार सम, और न पैसो कोइ ॥

सवैया

सदा सादी—गमी औ' बधाइन में, बड़ो काम परै पतवारन को।
हित राख्यौ करें सबही जिनसों, भलो नेग मिलै नरनारिनि कौं।
पतवारन दै, पतवारन कौं, सदा पायौ करें पतबारन कौं।
सदा 'रायगुपालजू' नेगिन में रुजिगार भलो यन बारिन को।

स्त्री उवाच

दोहा

कूरो करकट रहत बहु, जाके घर अरु द्वार।
याते यह बारीन को, महा बुरो रुजिगार ॥

---

१ मु है गहिजात कमरि २ मु है चलो ३ है मु जामदार
४ यह मु है स नहीं है।

कवित्त

टूप्यौ करैं हदै, दौना पातरिन सीमत,
बुलावत-चलावन मैं पायौ करै गारी कौं ।
सादी-गमी माझ, जब परै काहु हाथ, तब
बनि कै फर्मीन, कांन परै नरनारीं कौं ।
'सुकवि गुपालजू' विरनि रहै हाय, जमां
गाठि की लगाइ, करैं महतनि भारी कौं ।
फिरै द्वार-द्वारी, रहै राति दिन ख्वारी, यातें
बड़ौ दुषकारी, रुजिगार यह बारी कौ ।

नाऊ : पुरुष उवाच

दोहा

जिजमानन के मान तिन भले मिलत है दान ।
सब रुजिगारन में भलौ, यह नायन[1] कौ कांन ।

कवित्त

सब जिजमानन कै मालिकी करतु रहैं[2]
करिकैं टहल पुन रापै चतुराई कौं ।
बेटा-बेटी हाथ जाके बेचे बिन्नि जात, भले
भोजन न[3] पात मिलैं बिरति सदाई कौं ।
'सुकवि गुपालजू' सिरोमनि है नेगिन में
लेत महैं मांग्यौ नेग[4] व्याह' रु बधाई कौं ।
मिलैं ठकुराई, होइ जीवका सवाई, यातें
बड़ौ सुषदाई रुजिगार यह नाई कौ ॥

---

१. है. नाऊ कौ यह म. यह नाऊन कौ काम २. है. सदा ३. है. म. भले भले ४. है. मोज

स्त्री उवाच

दोहा

अग्र पाउँ बाहर रहै, अेक रहै घर माझ ।
[१]निद्रति ही में होति नित, सदा भोर ते गाझ ।।

कवित्त

फूटत रहत सिर, टूटत रहत पाँउ,
राति–दिन जातु है गईजन में जाई को ।
गाफिल सौं होतु है मसाल के लगावत मैं
आवै बडी टहल ते माल हाय याई को ।
'सुकवि गुपाल' बढती जो नेग लावै,
जिजमान दुष पावै,[२]करवावत मगाई कौं ।
मिर बुरबाई रहै, मूतक सदाई याते
बडो दुषदाई रुजिगार यह नाई को ।

कुम्हार : पुरुष उवाच

निनप्रति सादी ब्याह में, परत सबन को काम ।
याही ते जग में भलो, यह कुम्हार को काम[३] ।।

कवित्त

[४]करी सगीही रहै, बारौ मास जाको,[५]मोल,
नैनौ न परत कछु यांते कारबार को ।
'सुकवि गुपालजू' प्रजापति कहावै, घर–
घर मान पावै,[६]काज परै नरनारी कौ ।

---

१. है मु. परत हजामति २. है छूनिया बहावन मु. सुरग्न बहावत ३. मु. भमकारौ ४. है मु. ग्यान पान मेरे पनै नरहरि उडावनि धाम । ५. है. गव दिन मु. गानिदिन ६. है. मु. पुनि नित्र प्रनि पाते । धाम

जाके घर जाइ मन पूजे चाक–थास, जाय
डर न रहाय, कछु यामें चोर–चार को ।
सबते अगार, है खिलानन को प्यार, याते
सबमें बहार को, य कामहू कुम्हार को[1] ॥

स्त्री उवाच

दोहा

भिष्ट रहतु है राति दिन, गदहा बांधत द्वार ।
याते[3] बुरो कुम्हार को, पराधीन[4] रुजिगार ॥

सवैया

नितमाटी में देह सनी ही रहै, सदा[2] मारन जीव हजारन को ।
वह पोदत माटी हँदै जो कहूँ, तब कोऊ नहीं है निकारन को ।
अपवित्र अवा को चढाय रहै, औ[5] रहै डर आगि–अँगारन को ।
यह 'रायगुपालजू' याते बुरो, सबमें रुजिगार कुम्हारन को ॥

धोबी[6] : पुरुष उवाच

आप रहत नित ऊजरे, करत ऊजरो मैन ।
धोबिन को रुजिगार यह, सब में भलो विसेस[7] ॥

सवैया

सो बन्यो रहै ऊजरो भेस सदा, सी कमीन कहै इन्हीं को विन को ।
परो पाय पुरानहि रापत पाक, बनाऐ रहै तन जोवन को[8] ।
जल मांझ कलोल करयोई करै, सियोराम कहै अघ धोमन को ।
[9]यह 'राय गुपालजू' याते भलो सबमें रुजिगार सुधोबिन को ॥

---

१. मु. बड़ो सुखकार रुजिगार है कुम्हार को २. मु. सदलो सदा
३. ई. सबते ४. ई. याते यह ५. ई. पुनि ६. मु. रजक ७. मु. अगेन
८. जौदेह जो धोरे है सो उनको ९. ई. नित

स्त्री उवाच

दोहा

जीव्यो पानी परति है, नव इक गिनत छदाम ।
याते यह मग्रमें बुरो, यह धोबिन को काम ॥

सवैया

मदा सीत'¹धाममें धोयी करे, दिन पोयी करे मदा देत'²' लेते ।
सब जाति में नीच कहावतु है, घर लागे बुरो गदहान बँधेते ।
घर मैंन घुसैओ' छुवैन कोऊ, जाके³धानको लेत नही मन सेते ।
'यहते यह 'रायगुपाल' सदा नित धोबिन कों दुप होत हैं अैते ।

मलाह : पुरुष उवाच

बाहन में बल बढ़त पुनि,⁴गाहन में बढ़े गापि ।
या मलाह के काम में, हित नर रापन लापि ॥

कवित्त

अतग्न देन जय, पैलें दाम लेत, सब
कोऊ रापै हेत, यामें बड़ो रापै पाहको ।
'सुकवि गुपाल' पार आवन औ' जान जिने,
राजा अरु राना बात पूछत मलाह की ।
रजमें⁵लपेटे, जे नबारनें में बैठे, नीयो-
करन लहरि गंग-जमुन प्रवाह की ।
रहै 'वेतप्रवाह, जाके रोके रुके नाह, याते
गवमें मवाय, यह बातहू मलाह की ॥

---

१ है ताः २. है. औ ३. है. नारे ४. है गाप गुपाल विचारि कै मश । ५ मू. म; ६. म रज की

स्त्री उवाच

दोहा

जल-जलचर रुमिजाउ डर, गिरत–परत हरि पोत[1]।
या मलाह के कांम मैं, बहु दुप होत उदोत ॥

कवित्त

प्रांणन कौं सांसौं, पचै–खिचै लगै लांचो,[2] पुनि
डूबे–इटै[3] नाव, रिन बढि जात साह कौ ।
देषत ही जात दिन, थाह औ' अथाह, ल्हाव
पंचत ही जाकौं सीत पाअे जात माह कौं ।
ऐसे,' 'कौ 'गुपालजू' लगावत मे पार जोर
मारि–मारि हारि जात चढत प्रवाह कौं ।
जाअे बिन आह, पाय, आइ भौटि–गाह, मेरी
मानि के सलाह, कांम कीजे न मलाह कौ ।

गड़रिया[5] : पुरुष उवाच

दूध पिवैंवन में बसै, जानत नहि अरु बात ।
भेड़ बकरियन ते गडरियन मुनुष्य सरसात ॥

कवित्त

ब्यावरि लगीहो रहै, बारो मास जाको, सो
निरोगिन रहत, दूध पी के भेड़ छिरिया को ।
'सुकवि गुपाल' कर्‌यो करै राग–रंग, लैकै
वन की लहरि, झूल्यौ करै गहि डरिया कौं ।

---

[1] मु. गिरत परत को पोत २. मु. दिनराति लगै लाची ३. मु. बढ़ै ४. मु. खेबो ५. यह प्रसंग है. मु. मे नही है ।

मोल लेनो परत न, सबी दानो–चारो, घनी
लेत है घिराई, वास बसि कैं गमरिया को।
त्य छाडि–दरिया, बुन्यौ करत कमरिया,
सब ही में सब बरिया, भलो करम गडरिया को।

स्त्री उवाच

दोहा

सूपि पडुरिया जात वहु, स्याह हुडरिया हानि।
गडरियान की देह ज्यौं, स्याह लकरिया होति॥

कवित्त

मेंमें भयो करें, धर माँझ दिनराति सदा,
सोवरि रहति रापं, मेंड र बकरिया को।
गुपाल' बन बेहड में बास देह
कारी परि जानि डर रहे सिंघ–लरिया को।
हाकिम दिमान तसकर जिमिदार जेते,
गोम्त के पवैया करयो करें गैरि किरिया को।
ओढत कमरिया, मिलै भोजन न बिरिया,
सबही में सब विरिया, भलो करम गडरिया को।

चमार[1] : पुरुष उवाच

महतरि रहै माड़िलो गाम को, करिकैं बैठि बिगार।
गमई गामन में भलो, महतरि को रुजिगार॥

---

१ है. मु मेहतर

सवैया

भलोपेतकियारमें नाज मिलै, सिलो[1]रामिओ' पैरके झारन कौं।
परे[2]दाम सो पावौ[3]किसाननते, भलो प्यार रहै जिमींदारन कौं।
घरमें धुसिगारी जो देइ कोभू सगरे[4]मिलि जात है मारन कौं।
'यह 'राय गुपाल' गमारन में, सुभलो रुजिगार चमारन को॥

स्त्री उवाच

दोहा

टहल करत, पचिपचि मरत, पिटत रहत दिनरातिन
याते सबही में बुरी, यह चमार[6]की जाति॥

कवित्त

सिरपै[7]ते कबहों न अुतरत बोझ जाको
नित प्रति रहै ताको पेत बगार कौं[8]।
'सुकवि गुपाल' जाकी टूट्यौ करै पामू बो
बजामनुों परत है हुकम जिमींदार को।
आजे औ गअे की बड़ी बिदुदति रहति सदा
जापै[9] कांम रहै वहु बेठ रु बिगारि को।
देह परे[10]हारि पायौ करै मारि गारि, याते
सबमें अुतार, रुजिगारह चमार को॥

१. है. सदा २. है. वहु ३ मु. पाइ ४. है. सबरे ५. है मु. सदा राय गुपालजू, याते भलो सबमें भलो रुजगार चमारन को। ६. है. चमारन कौ यह ७. है. मूड़पे ८. है ताको कष्ट रहै, सदा बड़ो पेत प्यार को मु. काम रहै सदा बड पेत पान बगार को। ९ है. ताप १०. है. मु. राति दिन ११ है. रहै मार मार

चूहरे[1] : पुरुष उवाच

सोरठा

नरकि माल हलाल, लाल बन्यो नित प्रति रहै।
याते यह रुजिगार, चुरहेले[2] को अतिभलो ॥

सवैया

दरप्यो करें जाते सदा सबही यकबाल गुजारत जगिन कों।
सो मिजाज के मारे किहू न गनै घनसामा कहाय फिरगिन को।
धगकाय के लेत है माल घनो, नित सादी गमी की अुमगन को।
यह[3] रायगुपालजू[4] याते भलो, सबमे[5] रुजिगार सो भगिन को।

स्त्री उवाच

दोहा

भोगत चौरासी जहा,[6] घर घर झारि बुहार।
याते यह भगीन को, महा बुरो रुजिगार ॥

कवित्त

करनी परनि नीच टहल अनेक भांति,
बिद्दति में डोलें देषि सकत न मेले मों[7]।
सवरे महुल्लन की सदा पैरिमलना, वैनी
परनि अदालति में, सांझ औ सवेरे कों।
झूठनि को पात, दिन झारत ही[8] जात, याते
कहत गुपाल, यह काम न अवेले को।
रापत कमेले, तऊ परे रहे हैले, याते
बडे पाप पेले, को सुपेसो चुरहेले को।

---

१. है. मु भगी २ है है। ३ है नित ४ है अब तो ५ मु सदा
६. है डोल्यो करें साझ को सबेरे को। ७ है. औ समान दिन
८. है परे रहे हेने सगे रहत कमेले
मु रायन के मेते तऊ परे रहै हने

मन्यार[1] : पुरुष उवाच

होति नफा गहरो सदां, रोक नहीं किहु ठौर।
यातें यहै मन्यार कौ, कांम बड़ौ सरवोर ॥

सवैया

नित कौं परे देनहु दांम नये, बहु प्यार रहै नग्नाग्नि कौं।
सोचुरी नप बोलिके द्वारनपै, नफा लेन रिसें रिझवारन कौं।
सदां मादी-गमी' रु निहार' रु बार, बुलामें गुहुन सँभारन कौं।
रुजिगारन में 'सुगुपाल' भलौ, सबमें रुजिगार नुहारन कौ ॥

स्त्री उवाच

दोहा

भांति भांति कौ माल जब, घरमें राखे त्यार।
गर्जी होइ मन्यार कौ, देउ प्यार नरनारि ॥

कवित्त

राखनों परत बड़े जावते ते माल, गर्ज
परे पै बिकै न माल, होइ जौ हजार कौ।
'सुकवि गुपाल' जिय कट्ट-कट्ट होत, जब
मौरत में, चूरो पहरावत गमार कौं।
मारनौ परत मन जाइ कें जनानन मैं,
नर कौ परै न कांम, रहै कांम नारि कौं।
झोरी डारि नारि, फिरनौं परें द्वार द्वार, यातें
बड़ौ दुषकार रजिगारहू मन्यार कौ ॥

---

१. यह और यहां से आगे के प्रसंग मु. में नहीं है।

हीजरा : पुरुष उवाच

तागे पटकामें, सब गातहू दिपामें, नैन
  मोह मटकामें, औंन ताग, गामें तान को।
'सुकवि गुपाल' काहू को न नपें, हीन
  बड व्यावसायी, नाच नचामें जिहान को।
काहू सौं न दबें, रहें अकड सौं सबें, लाग
  लेत में न दबें, राजी गपि गाउरान कौं।
पावन है मान, आछौ पात पान पान, याते
  सब मे निदान, यह काम हीजरान को।

स्त्री उवाच

दोहा

मिलि सब जानि इकठोरी पान पान करें,
  रहें परायीन, रूप हीन तारिका को है।
यों ही दिन भरें वेसरमसई को धरें, गाम
  गाम फिरयो करें, नाम चलत न ताको है।
'सुकवि गुपाल' पीछे तारी पीट्यो कहें लोग,
  देपत सुनत वृथो जनम सु याको है।
पीट्यो मुप ताको, औं गुदावन गुदा को,
  सबही में हीजरा को, यह काम हीजरा को है॥

भांड : पुरुष उवाच

करयो करें ज्यों की त्योंनकल सब लोगन की,
  अकली के पुतरा रहत गव धाम हैं।
'सुकवि गुपाल' सबही कों जे हँसामें, राम
  राजन रिझाम, पामें गहगी यनाम हैं।

सदा रहैं मस्त, सब जातिन पै दस्त, बड़ी
होंनि परवस्त, सो गृहस्तन के सामहै।
राज-सभा भाडन कौं, गामन के डांडन कौ,
मूमन कौं डाढन कौ, भाडन कौं कांम है ॥

स्त्रीवाच

सभान में छोटे बडे सब मिलि आपुस में,
जूती औ पैजार करयौ करें आठौ जाम है।
'सुकवि गुपाल' ढीठताइ उरधारि बड़े
बेसरम ह्वैकै लेत लोगन सों दाम हैं।
बुरे-भले बोलि, सदा मूंड-गात पोलि जे
अगारी करि गोल ठाड़े रहत विराम है।
पाय कै हराम, बदनामी महि गाम, याते
सब मे निकाम, यह भांडन कौ कांम है।

नटके : पुरुष उवाच

करि डिठबंद, जे दिपावत चरित्र घने
वाजन बजाइ, माल मारत लिहाजी कौ।
करि कै 'गुपाल' निज इष्टहि कौ ध्यांन जे,
हजारन की लेत मौज जुरत समाजी कौं।
देस-परदेसन कौं, गाहत फिरत, बड़े
होत गुनमांन मांन पावत समाजी कौ।
तन रहै ताजी, पट भूषन न साजी, करें
राजन कौ राजी, करि काम नटवाजी कौ ॥

स्त्री उवाच

सोरठा

टूक टूक तन होत, तऊ न बदत कलान कौ।
दुष जिय होत अकोन, नट बाजी के करत में।

कवित्त

बांस पै चढाय कें, नचावती धरति निय,
इप्टी है कै रापनों, परत बडो पटको ।
पलन बलात्म, कान फूटिवो करत, ढेर
गिरत न लागै, होन प्रानन की चटकी ।
'सुकवि गुपाल' ऊँचे नीचे कों चढत प्राण
मुठी में रहत डर रहै गटपट कौ ।
श्रम होन लटि तन, ठहरे न पट, याते
सब में निपट, कर्म कठिन है नट कौ ॥

कजर हवूड़ा : पुरुष उवाच

श्रृंगी कौ लगाइ जानें ओपधि अनेक, बहु
तिलन सों बाढे, नाना मिश्रारन पात हैं ।
छींकें, रमोईं, ढईं औ' सिरकी, सहत, सूप,
बेचि नाचें–गामें तहि फूले गात मात हैं ।
'सुकवि गुपाल' सौं जलावत अनेक चाहें,
तहा चले जांइ, नहिं गनें दिनराति हैं ।
ऐक रायें बात, माल मारें भाति भाति, याते
कजर हवूडन की भली यह जाति है ॥

स्त्रीउवाच

दोहा

यारे श्मशान, बहुभानि दुख भोगे तन,
कटिमें न पट, पेट भरत न मूंडा कौ ।
भागे जारी करि, लूटि लेन बाटवारन कौ,
यान जीव–जन, फूल्यौ रापे सिर जूडा कौ

'सुकवि गुपाल' वन वेहड़ भ्रमत, घर
सिर पर रावें, रहटानि करि भूड़ा कौं।
परत न पूड़ा, जात जहा पात डूढा, यह
याते काम डूडा, वुरी कजर हबूड़ा कौं।

तुरक : पुरुष उवाच

चढ़ौ रहत करमांन कर, सब मिलि रहत समांन।
मुसलमान की पान की, चाखौ दीन जवान॥

कवित्त

मुवे होत पीर, धन पावे ते अमीर, पुदा
मिले ते फकीर, होत रापत समान हैं।
'सुकवि गुपाल' करे निमक-हलाल, कवौं-
व्याज नहि पात, नहि पलटैं जवान हैं।
पढ़त निवाज, रोजे ताजिये निकासि, सदां
वुज्जल रहत आछौ, पात पांन पांन है।
मानत कुरान, सदां दियौ करें दांन, नैक
सवमें निदांन, वड़े होत मुसलमांन हैं।

स्त्री उवाच

दोहा

तुरक कहामें, सदां अुलटी चलामें चाल,
राति-दिन करमौ करें, जीवन कौ घात हैं।
'सुकवि गुपाल' किया करमे न जानें, गोत-
नात नहि मांनें, व्याहे कुल ही में जात हैं।

मिलि मेष–सैयद, औ' मुगल–पठान, ऊच
    नीच सब जानि, मिलि मदमास पान है।
गुनि करें गात, चोटी राखें नहिं माथ, याते
    सबमें कुजानि, मुसलमानन की जानि है।

जाट : पुरुष उवाच

बड़े परिवार, औ' बहामें फौजदार राखें
    द्वार पैं बहार रीति जानें राज-पाट की।
सबही गुपाल' जुरें जगन के जैंतवार,
    जोर, जदुवसी, जमो पूरें आस भाट की।
राखें नहीं कबहूँ सुकाहू सों विरोध मन
    सोधि कें रहन, सील साधुता सुघाट की।
बड दरबारी, सब राखन सवारी, सबही
    में सुखकारी, भोरी भारी जानि जाट की॥

स्त्री उवाच

दोहा

कारे हैं गमार, राखें घर में चमारिन, मैंक
    जानत न मार, चतुराई के सुघाट की।
रहै हर मात, औ' महामें परमाल, पायौ
    करें मालामाल, चाल नवें गैरि घाट की।

'सुकवि गुपाल' घरी छिन न रहत घरी,
घरी छोड़ि देत, घेरि राखें राह बाट की।
नदि गय-तुरी, राज पाय करें धुरी, याते
सबही मे बुरी, यह जानो जाति जाट की ॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये जाति प्रबन्ध वर्णन नाम
एकविंशो विलास .

द्वा विंशो विलास

प्रथम प्रवन्ध

चुगली कौ : पुरुष उवाच

दोहा

[1]कलूकाल में अति भलो, चुगली को रुजिगार।
[2]मारैं माल हराम को, सदा रहत हुसियार[3]॥

कवित्त

आय आय लोग, घर बैठ ही सिरामें हाथ
टूटे औ' फिसाद के सुभुठत सुगल को।
'सुकवि गुपाल' मन–भुन में दिपाय भय,
करिके फरेबी माल मारत जुगत को।
रातिदिन बूझ सिरकार में रहत, डर–
मान्यो करैं लोग अैसी–जैसी न मुगत को।[4]
जामें छिद्र छल, कबी परत न कल, या,
सबही[5] में भल, यह कामहु चुगल को।

स्त्री उवाच

दोहा

चुगली को रुजिगार यह, खोटो है जग माहिं।
'राम गुपाल' विचारि यह, याते कीजै नाहिं॥

---

१. मु कली २. मु मेरे ३. है. तामे करपै लाग मन गहरी मन्द तयार। ४ मुगून ५ है मु- कछु ६ है मु मर ७- है म. रुजगार ८- है मु कीजत

कवित्त

सबही कौ, यामैं, पोटी, कहनी परति बांत,
कहै बुरवार, बैर बँधै तन छीजियैं ।
गारी–गरा देकै, बहु कोसत रहत लोग,
मामने में जाई कौ बिगारि काम दीजियैं ।
जाहर भअे पै, मुंह बिगरत हाल, याते
कहन गुपाल मेरी बातहू पतीजियैं ।
[1]'कहत गुपाल' कवि मेरे जान में तौ याते
भूलि रुजिगार चुगली कौ नहिं कीजियैं ।

चोरी : पुरुष उवाच

लावै गहरौ वित्त, सेंतिमेंति कौ जाइ के ।
लहरि उड़ावे नित्त, चोरी के रुजिगार में ॥

कवित्त

कम्यौई कमायौ धन, धर्नौ परै हाथ, यामैं
सदा सुमिरन मन रहै भगवान कौ ।
परतत धन याकौ, दरकौ न लागै नेक,
अैस कर्‌यौ करै लाला रहै न कमांन कौ ।
मात मिले पाछें, कैऊ सांल कौं निहाल होत,[2]
होइ पुन्य दान, देई–देव सनमांन कौ ।
कहत 'गुपाल कवि' मेरे जान में तौ आंन
दूसरौ न पैसो कोअू चोरी के समांन कौ ।

---

[1] पाठांतर र. है. मु. नृप रहि जोजियं कि दिस लायपीजियैं ।
[2] ४. मु. होइ

स्त्री उवाच

धृगधृग जीवन जास, है ठगिया ठगई कर।
यह न रहै धन पास, आवत दीसैं, जात नहिं॥

कवित्त

भरनी परति सिरकार में सदाई चौथि,
रहै डर मार्मे, चपरासिन के हक्का कौं।
'सुकवि गुपाल' थाको ठहरै न माल, निद्य
करम बिसाल, यह कांम बड़े तक्का कौ।

मानम भये पै मार परें जेल–पांनी होत,
बेरी परे पायन मे, पोदत सरक्का कौं।
होइ थुकथुक्का, नित डोले भयौ फक्का, याते
सबही में लुक्का, यह कामहुं उचक्का कौ।

लबार : पुरुष उवाच

बार न लगत लबार के करत लबरई कांम।
मान मारि नावै धर्नो, लहरि उड़ावै घांम॥

सवैया

चाहै तहां ही ते [illegible] लावै उधार, बनायके बात उतारि तरासी[1]।
मारि कै बैठि रहै घरमें, गुलछर्रे उड़ायौ करे पुनि तासौं[2]।
'राय गुपालजू' [illegible]री लगै कहुं नीलो दिखायौ करैं पुनि पासौं[3]।
जानौं परै, न [illegible]नौ परैं, सबमैं रुजिगार लबार कौ यासौं[4]॥

०हे० पु० में इस छंद की तीसरी पंक्ति दूसरी है और दूसरी पंक्ति तीसरी। १ हे० स्पष्ट २ हे० मु. रुजगार ३ हे. मु. बिरछी ४ हे. मु. [illegible] ५ मु. पाछो हे. छाछो ६ हे. मु. छाछो

स्त्री उवाच

दोहा

दरि बिगरनि सब गाम में, बात न मानें कोइ
पकरे पर मु लबार की, बड़ी पगवी होइ ॥

कवित्त

दिन के समें में न बजार में निकसि सकें
बेरि बेरि देप्यौ करें, मुह दरबार कौं ।
'सुकवि गुपाल' कर्जदारन के डर, नित
दबक्यौ रहत सदा, साह लौं सवार कौं ।

कहि बुरबार लोग, घेरे रहें दुवार, हितू
यारन में जब लाज लागे परिवार कौं ।
लावन अुधार, जाकी पात मार गार याते
सबमें अुतार, रुजिगारह लबार कौं ।

"मसपरा" : पुरुष उवाच

राज-सभा दरबार में, कहूँ मसपरी जाय ।
सब सौं जानि पिछानि करि, लाऊं धन्हु[1] कमाइ ॥

कवित्त

होइ सिरदारन में सबते पहुँच बूझ
पास जाय बैठें करि बातन सौं इसारी ।
देस-परदेसन में जाहर-जहूर होत,
म.नत न बुरी कोऊ जानी मस्परा-बरा कौ ।

---

१ मु. मानत २ ३ ते ३ ३. मरव

रापत बहुत, याते¹राजी रहैं लोग सब
कहत 'गुपाल' इह कांम पुसकरा को ।
राजन के घरा, मिलै मोती माल परा, याते–
सबही में परा, रुजिगार मसपरा को ।

स्त्री उवाच

दोहा

है मसपरा मु मसपरी, कबहू कीजै नांहि ।
अैसे काम सु होत²हे, भाट–भगतियन मांहि ।।

कवित्त

दरि न रहति, औ' अुपाधि है परनि, यामैं
नकल करत जाको सोई उगत पीजियै ।
ठठ्ठा कन्वाय, येक येकको सिपाय देत,
माथे कों झिकाय के बकाय प्राण लीजियै ।

'मुकवि गुपालजू' सदा कों परिजानि चिर³
नितप्रति यामैं गारी पात गारी दीजियै ।
जानियै न न्री, मेरी बात मानि परी, याते
है के मसपरा मसपरी नहीं कीजियै ।।

हरामजादे : पुरुष उवाच

देह रहति आराम में, सरत सजन मन कांम ।
याते बड़ो अराम को, है हराम को काम ।।

१ है. यामें २ है सुहाते ३ मु. चिड

कवित्त

लगै न छदाम, औ' कमात घने दाम नारी
पुष्ट होनि चाम, सुख रहै आठो जाम कौं।
'सुकवि गुपालजू' निकसत है नाम, सदा
बैठ्यौ निज धाम, भोग भोग्यौ करै भाम कौ।
दौलति हरति, काम सबरे सरत, भली
बुरी के करन, डर रहै नहि रामको।
करो बिसराम, देह पावनि अराम, सदा
यातें यह काम कौ सुकामह इनाम कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

फलदायक नहिं होत है, याके कबहो दाम।
यातें भूलि न कीजियै, यह हराम को काम॥

कवित्त

धरम कौं हारि, अधरम उर धारि-धारि
डारि नीची नारि, बात तजत सचाई की।
मूतत की तानो, करै मन को गुहानो, मारि
हातो तकै दौलति जे भाई औ' जमाई की।
भूपन मरत, यदु काम न सरत, तहू
उरत न मरनी करत अधमाई की।
'सुकवि गुपाल' कौजू बैनिक अपाय ऐसी
टहरति कोड़ी बीग नहुँ की कमाई की।

बेसरम : पुरुष उवाच

कहि न कछू कोऊ सकै, जानिक की होइ ओत।
बेसरमाई के घरें, धन को परचन होत॥

कवित्त

नापन ही मिलि. बुरी लाप कह्यौ करो होतो
होइ नहीं आपे कबौं भेदत मरम कौं।
बेसरमई के आप बुरषा कौं ओढ़ैं, जब
चौकने घरा लो, पानी छूवै न सरन कौं।
सुकवि गुपाल आपै ठीकरी धरे पै हाल
पैसा बचि जात मादी गमी औ' धरम कौं।
होत न नरम, घने रहत नरम, याते
सबमें परम है करम बेसरम कौं॥

स्त्री उवाच

नरम छोड़ि कै बेसरम, जीबे बुरे हवाल।
बदाबदी करिबौ करै, झूठे करि यकवाल॥

कवित्त

जानी परै निन्निति, हजार मन पानी परै,
हानी परै सकल कटुंब मून ती को है।
'सुकवि गुपालजू' चुरावन में आप दया–
दया न रहनि, लागै कुजस को टीको है।

होनहु निलज्ज सो, वनाय झूठी सजुज, झूंठी
करिकें तबज्ज, सो कठोर होन जी को है।
रहे मुष फीको, कोऊ कहतु न नीको, याते
जीवो धरकार बेसरम आदिमी को है।

सेपीषोरा : पुरुष उवाच

थोडी लगै न गाठि की, मन के लाड्डू होत।
सेपीषोरन को सदा, महूँ ही वैरी होत॥

सवैया

स्वर्गहु मैं हर जाके चलैं, अनजान तै आगै सा सपि न मारै।
सो गुनौं झूंठ वनाइ कहै, तऊ साचो सी वात वनाइ उतारै।
गाठि को मामें न लागै कछू, महुँ वैरी रहो काहे सो कहि डारै।
याते 'गुपालजू' या जगमें सदा गाल कौं जीतै औ दामकौं हारै॥

स्त्री उवाच

दोहा

औरन की निंदा करन, सेखी मारन आप।
याते सेखीखोर की, बुरी जगत में दाप॥

कवित्त

नीचो करै लोग, जाय हुक्व न मोग, व्याह–
तौ न करि सकै कोऊ जाके छोरी–छोरा को।
जायकें 'गुपाल' वट्ट मारैं जब सेपी, तब
जूती सी दै मुष कौं विगारत छिगोरा को।
सुजस की थजी, एक वात न वननि कोऊ
जाति कौं न गनैं, काज करनी या जारा को।
सदा रहैं कोरा, सब लोग कहैं रोरा वाने
बडो कुलबोरा है करम सेपीषोरा को॥

हरामजादे : पुरुष उवाच

सब रुजिगारन में भली, हरमजदी को कांम ।
थर-थर कांपें, लोग सब, करत कमाई दांम ॥

कवित्त

टेढ़ी धरि पाग, डोल्यो करत बजार बाग,
मांगत में स्वाल, पाली परै न यरादे[1]की ।
ऐस करि दाम, पाम परचं पवावे औ'
डिमांक वन्यो रहत[2]है जैसे मलजादे की ।
'सुकवि गुपाल,' चाहै ताहि[3]धमकाइ लेइ,
जाऊते[4]न डरै सो कुमर सहजादे कौ ।
रदिके[5] अवादे, मास मारत ढकादे,[6]याते
सबही में जादे, रुजिगार हरामजादे[7]की ॥

स्त्री उवाच
दोहा

याते यह सबमें[8]बुरौ, हरमजदी को कांम ।
भलमुनसायत के करें, हाथ परत नहिं दांम ॥

कवित्त

लोक कुवड़ाई,[8]परलोक टुपदाई, दाग
लागत सदाई, बापदादन की गद्दी कौं ।
'सुकवि गुपाल,' सुनि पावें जो मुसद्दी लोग,
देषिकें जुमर्दी,[9]हाल झारि डारैं मद्दी को ।

---

१ है. मु. इरादे २ है. मु. रहतु ३ है. जाय ताय ४ मु. वाऊते ५ मु. रका ६ है. हरामजादा मु. हर्मजादे ७ है. सब रुजगारनमें । मु. प्रति में दोहा है—"सब रुजगारन में बुरौ, जादे है जु हरान । परलोकहू निकरत अनत लोकहु में बदनाम ॥"
८ मु. लोक में बुराई ९ मु. जुमर्दी

राजा के अगारी छाय जाति है गरद्दी लोग,
कबहू पत्यारो न करतु है चहद्दी कौ।
होत बेदरद्दी, लोग कर्यौ करैं बद्दी,
सबही मैं बेदरद्दी यह कांम हमंजद्दी कौ ।।

पाखंडी : पुरुष उवाच

डिम्मदारी

घरिकैं वडे पखंड कौं, डिम्म धरै जो कोइ।
आजकालि के नरन में, वडी जीवका होइ ।।

कवित्त

राजा अरु राना सबही कौं परमोधि लेत,
कथा को प्रसंग कहि कहि कैं अगारी कौ।
'सुकवि गुपाल' वडी जागति है जोति, वडी
महिमा अधिक होति, ठगै धनधारी कौं।
पार नही पामैं, सब सिद्धई बतामैं, देस-
दुनी चली आवैं, तार टूटत न जारी कौ।
नवैं नरनारी, सदा पूजा होनि भारी, जे
कहावत अतारी, काम करैं डिमधारी कौ ।

स्त्री उवाच

दोहा

मेरो सिष यौं मांनि अरु, डिम्म धरो मति कोइ।
बिगरैगो परलोक अरु, नाम धराई होइ ।।

---

१ है. मु. नृप २ है. मु दबगार ३ मु है करिके। ४ मु और ५ है. मु. प्रबध ६ है. जाने ७ है. जग ८ ठगिबो अनारी को ९ है. मु. माते बडो गुरकारी मजगार डिम्मधारी को।

कवित्त

मान[1]होइ जब देख्यौ चाहै करामात, अड़ि जात
करामाति दिनराति पर्च जारी कौ।
पड़ी जानि बात, जब कहत पपड़ी, ताकों[2]
फैनि जाति भंडी, पोलि निकरै अगारी कौ।
'सुकवि गुपाल' और दौसत न ओक,[3] बिगरत
परलोक, यह बात बड़ी ख्वारी कौं।
देह परै हारी, कष्ट करत[4] में भारी, याते
बड़ी दुपकारी, जीवका है डिम्मधारी कौ।

नंगा : पुरुष उवाच

कबहुँ न कोऊ करि सकै, तासौं दगा अाय।
याते यह नंगान कौ, काम बड़ौ सुपदाय।।

कवित्त

चौरे में मवासौं, पातसाह डरें जासौं, लरि
लेइ कहा तासौं, कोई जोरि करि जंगा कौं।
'सुकवि गुपाल' सो अड़ंगा देतु सबै औ,'
लगावत पतिगा हाल बीच देकैं गंगा कौं।
भलौ-बुरौ कोऊ कहि सकतु न जाय, सदां
निडर कमाय, सेवै सबही के चगा कौं।
होइ बहु रंगा, राखै जिय में अड़ंगा, याते
रुजगार यह नंगा कौ।

१ हैः मान २ है. वारी ३ मु. ओक ४ है. सदा रहै कष्ट भारी।

स्त्री उवाच

दोहा

लाय उधार बजार को जब नगा ह्वै जाइ।
तबै सकल नगान के, ये हवाल होइ आइ॥

कवित्त

जाति के न पाति के, न कोऊ भली बात के, न
मात के, न तात के, न दीनन की भीर के।
सील के सहूर के, सरम के, न मरधा के,
भाव के भगति के भलाई के न तीर के।
मित्र के मिलाई के न, साधु हरि गायो के न,
पापी के प्रसगी नित पायक सरीर के।
कहत 'गुपाल' बाजे बाजे लोग नग देखे
गग के न रग के, न गुर के न पीर के॥

ज्वारी : पुरुष उवाच

या जुवा के खेल की, चसको जब परि जाय[1]।
ताय सुहात न और कछू, याही म दिन जाय[2]॥

कवित्त

आवनि फिरग, पेच पेचन की बात घनी,
लगी मन रहै,'जैसें मिलै नर जुवा को।
'मुरलि गुपाल' अब दाव पै 'निहार रोवै'
मार दो करै मार, भटि नवकी कर दूवा को। —

१ [illegible]

दौलति लहत, भूप प्यास न रहति, याकी
बात के कहत, बांधि देत गढ़ धूआ कौ
जागि परै मूआ,[1]आमें केते मनसूआ, याते
सबही में[2]भलौ रुजगार यह जूवा कौ ।।

स्त्री उवाच

दोहा

झुलके लागै दाव पै, धरि आवै मति मोहि[3] ।
राति दिना डरप्यौ करै. नित ज्वारी की जोइ[4] ।।

कवित्त

आवत औ' जात में न दीसत है दाम, याके
बड़ोई निकाम काम पाछै बड़ी ख्वारी कौ ।
'सुकवि गुपाल' झूल लागनि है जब, तब
हाल अड़ि देत घरबार, सुत नारी कौ ।
काहू के छुटाअे, फेरि छूटि न सकत, यहु
आवतु है लपक, झपक चोरी—चारी कौं ।
मीठी लगै हारी, झूठ बोलतु है भारी, याते
बड़ौ दुपकारा, यह पेल बुरौ ज्वारी कौ[5] ।

ग्वाल : पुरुष उवाच

मारत माल हराम के, जाइ होत मुपत्यार ।
भूर पाति गौदान में, ग्वाला गारी पात ।।

---

१ है. मूआ २ हैं ने ३ है. मोंइ ४ हैं जोहि ५ मु. है रुजगार यह ज्वारी कौ ६ हैं याते भलो गोपाल कवि ग्वालन को रुजगार । मु. याते भलो सु जगत में ग्वालन को रुजगार ।।

कवित्त

बनत बराती, कहू बनत घराती, मानि
  मानईते सरस, बनावत बहाला कौं ।
'सुकवि गुपाल' सैल करै देस-देसन की,[1]
  गाम-गाम ब्याह के गुजारै पकवाला कौं ।
कंभू बेर लेत, दाम बटत-बटावत मैं,
  रिलि-मिलि[2] पानिन में मार यौ करै माला कौं ।
बने रहैं लाला, ओढि साल औ दुसाला याते
  सबही में बाला, यह काम मलोंगवाला कौ ।

स्त्री उवाच

दोहा

द्वार अरै भूपन भरै, मार पर बहु ताइ[3] ।
याते कबहुँ गुवालपन, कीजै कबहूँ न जाइ[4] ॥

सवैया

आब रहै न हियामें कछू, मुनि गारी गरा धरकारहु लीजें ।
दूसरे लेत में मार परै यो,[5] यान दुकान गना सब छीजें[6] ।
अन्धे चढेते गिरै जो कहूँ, तब नाहक प्राण अकारथ दीजें ।
राय गुपाल'की मानि कह्यो कहुँ जायकें गुनालाल्यो नहि कीजै ।

---

१ मु है सुकवि गुपाल डोर डोरन की [illegible] २ मु हिलमिल

३ है. मु. रुजगार पर ४ मु ताहि ५ मु [illegible]

६ है ओ दाराररी दन परी तन छीजें ।

मु. दवि जात मे प्राण अकारथ दीजें ।

सगाई के बिचौलिया : पुरुष उवाच

परिकै जे वप बीच कर—वाय सगाई देत ।
जाति बिरादरी बीच में, जग में जे जस लेत[१] ॥

कवित्त

बड़ी होइ नांव, औ,' कहे सो बनें कांम, भले
माल मिलें गहरे, न कांम बनें इतने ।
मांनत यसांन' होत आदर गुमांन, पुनि
सदा मनभाई मिजमांनी मिलें नितनें ।
जाति औ' बिरादरी, कुटुंब हितू यार, हाथ
जोरि कै पुसामदि करत जितनें जितनें ।
'सुकवि गुपालजू' कहे न पर्रे जितनें सगाई
के बिचौलिया कौं होत सुष तितने ॥

स्त्री उवाच

दोहा

ब्याह सगाई बीच है, करकरावत जो कोइ ।
पांनी लावत परच कौ, परी' परावी होइ ॥

कवित्त

आछी बनें बात, बेटा—बेटी की दशामें भागि,
बिगरत बात बुरवाई देत घनि वे ।
"सुकवि गुपाल' दोऊ ओर की रहन बुरी,
भेंडुआ कहावें गारी—गरा कांन सुनिये ।

---

१ वृंदा. मे नही है ।
तु. इसकी पक्ति इस प्रकार है : पचपचायत बीचमे जस्‍ले ते यश लेत ।
२ मु. गमान ३ है- मु. नितने । ४ मु. बड़ी ।

छोडै घर धाम, दाम खर्चन परत, होन
नाम बदनाम, काम भअे पै न गनियें ।
पायनु तुरावे, कछु हाथहू न आवे, माते
भूलि कें सगाई कौ बिचौलिया न बनिये[1] ।।

गमारके : पुरुष उवाच

नित पासति जाको सुलठ्ठ दई मुक्ही निठि जाति लवारन कौ।
जिदि कोऊ सबै न रुकै सो कहू, बदि बाद में जीतैं हजारन कौं।
न भलीओ बुरीसो लगै तिहिकें, सुख सोवन गारिआ भारन कौ।
यह 'राय गुपालजू' याते भलो सब में यह काम गमारन कौ ।।

स्त्री उवाच

कवित्त

कैसौ समझावौ, अेक आवै न अकलि, सो
अुज्जडइई की कहूँ सिख दीअे हू हजार ते।
भूषन बसन तन पहरि न जानैं, आछो
लगत न नेक गयौ रहन चमार तें ।
बनि करि कुज्जा, बारें मनकौ कहावें अति
चाढि चिटें आवें धाम घरें जोमदार ते।
मानत न हारि, जिदि मरें करि रारि, पानौ
पारें अेर बारहू न भूतिकें गमारते ।।

---

१. है प्रति में दूसरी दूसरी पंक्ति तीसरी है और तीसरी दूसरी ।

रसिया : पुरुष उवाच

चौपई बनाइ, छैल बनेई रहत, ढफ
ढोलक बजाइ, रांग नाचे तिरियान के।
मेला औ' तमासे, फूल डोल औ' बरातन मैं
करि राग-रंग दल जोरें दुनियान के।
जिनपै 'गुपाल' रीझि सुंदरी अनेक देखि
चटक-मटक हँसि बोलैं सुघ भांति के।
सुदर सुजान, नैन होत जैसे बान, सदां
रस की रसान, हाय परे रसियान कैं।

स्त्री उवाच

दोहा

बपता होरे रॉझ अरु, अल्हा ढोला गाय।
करि अनेक स्वागन नचैं, रसिया ढफहिं बजाय॥

कवित्त

गारी पायौ करैं, मेला-ठेला फूल-डोलन मैं
बावरे से डोलैं, मन फसि होत आन कौ।
आवत न हाथ, छाती कूटिबौ करत, बेस-
रमई कौ धरें हाल होत घसियान कौ।
'सुकवि गुपाल' नित बुरें बक्यौ करें, घर-
नारी तक्यौ करें, कांम करें घसियान कौ।
होत जसियान, नेक रहै न सयान, घसियान
के ते बुरौ, यह काम रसियांन कौ।

त्रयोविंशो विलास

अधमाधम रुजगार प्रबन्ध

गड़िया : पुरुष उवाच

गंडे, पट्टे, चाक करि, बने रहत महबूब ।
रापत राजी सबन कौ, माल मारि कै खूब ॥

कवित्त

रापत मिजाज, संग लेकें बच्चे बाज, जपि
करत न लाज, बाँधि देत झडियांन कौ ।
भोर अरु सांझ, डोलें गलियांन माझ, करि
गरदनि मोटी, हाथ लीयें छड़ियान¹ कौं ।
'सुकवि गुपाल,' तन सजि सजि साज, मिसी
अँजत कौं आँजि, माल मारें बढ़ियान कौं ।
बैठि दड़ियान, राजी² रापें जड़ियान, यातें
बड़ौ सुषदानि रुजिगार गड़ियान कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

रहे न काहू काम कौ, झींकें जाकूं नारि ।
गयौ होइ गनिकान ते, गड़िया कौ रुजगार ॥

---

१. हे. छडियान २. है. राजा

कवित्त

जीवन नरक, देति गनिका धरक, कर्यौ
करत तरक, लोग देषि कँ[1]जवान कौं।
आंषि न जुरनि, औ' कनामर्दो रहत, परै
लाप मन पानी यामें दपत अचान कौं।
कहत 'गुपाल' कछु स्वाद न सवाद औ'
कुराह कौ चलन गुदा फाटिवे कौं म्यान कौं।
रहै जीय ज्यान, लोग गाड़ू कहै आनि, याते
बड़ो दुषदानि रुजिगार गडियान कौं।

भडवाई : पुरुष उवाच

भडवाई कैं करत में, गहरो होत मिजाज।
बडे लोग आदर करत, बहुत मिलत[2] सुष साज॥

कवित्त

भामिन अभोगि, तन भागत रहत सदा,[1]
पीयौं करै दूध, भरि भरि गडुवान कौं।
आदर ते बडी बडी ठौरन पहुँचै, कहू
कबहूँ परै न कछू काम मडुवान कौं।
'सुकवि गुपाल' मेला-समला झकामैं, बडो
बानिक बनामैं, पैरि बाजू पडुआन कौं।
पाय लडुआन, राजी रापै रंडुआन, याते
बडो सुषदान, रुजिगार भडुआन कौ॥

---

१ हे कुर वानिरै (यह प्रसग मु में नही है।)
२ है रहत ३ है मु भले

स्त्री उवाच

दोहा

[1]बड़े बड़े जे आदिमी, आमन देत न धाम ।
याते बुरो 'गुपाल कवि,' भड़वाई को काम ॥

कवित्त

लोक बिगरत, परलोक बिगरत, नित
लाजन मरत, याकी करत कमाई कों ।
'सुकवि गुपाल' मनि देखि लेई कोऊ कहूँ,
राति दिन यामें डर रह्यौ करै याई कों ।
रहत न पाक, होत गरमी सुजाक, काम
भये पै झराक, दाम पर तन ताई कों[2] ॥
[3]आवे बुरवाई, औ' अजाअ जानि जाई, याते
बड़ी दुखदाई, रुजिगार भड़वाई कों ॥

कसबी : पुरुष उवाच

बिसय मांझ छाके रहत,[4]सब सुष रहत तयार ।
[5]यार पयार करे घनो, रापे दुवार बहार ॥

कवित्त

परम प्रबीन-बीन बातन लगाय, हिय
कामहि जगाय, करि लेत बस जीन कों ।
'सुकवि गुपाल' करि चटक-मटक तन,
लटक दिपाय राजी रापत[6]धनीन कों ।

---

1. हे. मु. भले भये २. हे. मु. यारि कौ ३. हे. मु. होद ४. मु. हे. रहै ५. मु. हे. याते यह सबमें भयो कसबिन को रुजगार ।
६. मु. हे. माल मारत

मुरि मुसिकाय, हाव भावन बताय, नाचि
    तानन कौं गाय, राजी रापैं बिसईन कौं[1]।
ओढि पसमीन, बने रहत अमीन,[2] याते
    सबमें नवीन,[3] यह काम कसबीन कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

बिसय करत सबसों सदा, है करि धन आधीन।
कसबी कौ रुजिगार करि, होत पाप में लीन[4] ॥

कवित्त

बेचि तन-मन, जन-जन को हरत धन,
    रापनौं परत यामें राजी सबही कौ है।
'सुकवि गुपाल' झूंठी पातरि कहावैं, परलोक
    दुष पावैं, कोऊ कहतु न नीको है।
टकि चलि जात, भग रग छिलि जाति,[5] देह
    दलि मलि जात, न सवाद आवै ती कौ है।[6]
रोग रहै जी कौं, काम बेसरमई कौ सदा,
    याते यह फीको रुजिगार कसबी कौ है ॥

भभैया : पुरुष उवाच

पांन पान आछे मिलन,[7] बढे होन गुनमान।
जान भभैयन कौ सदा, मिलन दान सनमान ॥

---

१. हैं नाच का दिगाद मुसिकाय गान गाय पाव भावन बताव राजी रावै बिसयान कौ। २ है मु [illegible] ३ है मु अमीन ४. है सारठा के रूप में है। ५ है देह मनि जाति झावे टारे घनि जाति भारग छिन ज ति न सवाद आवै तो की है। ६. मु दुस्ट रोग भरि जात। ७ मु करत

कवित्त

भावन बतैया, नैन भौंह मटकैया, कर
कटि लचकैया, यतभुत दै घुमैया कौं।
पग ठमकैया, झिझुकैया अुझकैया, झालौ
दैके गहि बैया, लूटि लेत हरि लैया कौं।
'सुकवि गुपाल' मोहै मन मुसिकैया, तव
दैके मुरकैया, फिरि लेत फिरकैया कौं।
तन्नन गवैया, बडे होत नचकैया, याते
सुष दैया भलौ करम यह भभैया कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

गाय, बताय, रिझायकें, मुरि-मुरि तोरैं तान।
तवै भवैयन कौ कछू, मिलत दान, औ' मान॥

कवित्त

मरद है महरी के करते परत काम,
होत बदनाम जाति करत चवैया कौं।
कसबी कहामैं, निरलज्ज होइ जामैं,[१]रातिदिन
दुप पामैं, मुष जानैं न लुगैया कौं।
सदा ही 'गुपाल' परदेसन में रहै, कछू
काम कौ न रहै हिनू यार जाति भैया कौं।
टूटे जात पैया, दूपि परति करैया, याते
बड़ौ दुपदैया, यह करम भभैया कौ॥

---

१. वृ. गुदा भंग जे करावें

जनानिया : पुरुष उवाच

कवित्त

नेह नित निबहै, लगो ही नव नरिन सौं
तियन में बैठे, न कलक लगै आने मैं।
सूरत सिकिलि, औ' सिगारन सिगारि बडो,
जुलम करत नैन भौंह मटकाने मैं
'सुकवि गुपाल' राग–रग में गरक रहै,
जाको दिन जात मदा गाने औ' गवान मे।
भाव के जनानें, राजी रावत जनानें, सो
जनानिन–को होत भलो आदर जनाने म।।

स्त्री उवाच

आवे न सरम, होत बडो बेसरम, घोवनी
में हाथ डारे सौच आवत मराने को।
'सुकवि गुपाल' सदा रहत तियान बीच
नीच मन रहै, रहै काहू न ठिकाने को।
बोलनि, चलनि, चितमनि, और द्युति औ'
जनानिया कहावे बन जात मरदाने को।
निदत सयाने, न तियां को सुख जाने, याते
सबमे निराने, धृक जनम जनाने को।।

हिनरा को : पुरुष उवाच

आछो तिय कों देखि कै, जाय लगामे लाग।
भोग भोगि नित नटन सौं, गरक रहत अनुराग।।

१- मु लगावत

कवित्त

हे[1]करि सकांम, वने ठने रहें आठौ जांम,
परचत दांम, यामें भले[2]पांन-पांन कौं।
आंपिन पे आड़, मिसी नैनन पे वाड घरि[3]
मोहि लेत मन-तन करि के सयांन कौं।
'सुकवि गुपालजू' यसकही[4]में डूबि कें,
अभोगि तन सग भोग भोगत निदांन कौं।
होत गुनमांन, वड़ी रापे सौप सांनि, याते
वड़ो सुपदांन, यह कांम[5]छिनरांन कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

गांम नाम घरिवौ करें, कांम रहै रिस नित्त।
याते नहिं कीजे कबहुँ, जाइ छिनरयौ मित्त॥

कवित्त

होत वदनाम, घने चाहियत दांम, नर्क
भोगत निकांम, कांम याके मन दर्जे में।
राजा लेत डंड, मारि बैठें वर वंड, जत्र
आव न रहति, कछू याके दैनि लज्जे में।
'सुकवि गुपाल' दौरें[6]ढूंढनो परत,[7]रहै
धकर-पकर मन, लगतु[8]न कहे में।
विरह सौं[9]दहै, जीव[10]जात रोग भये, दुप
होत नित[11]नये, छिनराकी छिनरजे में॥

---

१. मु. हवि २. है. मु. भले जाय ४. है अंजन को आज के सगाय किलि आड मु. यौंहन पे वाढ मिली नैनन पे वाड़ घरि ४. है. मु. इसक ५. है. मु. रुजगार ६. मु. ठौर ७. है. ढूढत फिरत ८. मु. है. रहतु ९. है. ते १०. है. मु प्राण ११. मु. नये

छिनारि : पुरुष उवाच

राजी रापति मीत कौ, करिबे भलो सिंगार।
याते नारि छिनारि कौ, भलौ यहै रुजिगार।।

कवित्त

सौना सो सरुप, पाति सिन्निन के दौंना, भोग
भोगि कैं यकौंना सजें रहित सिंगार हैं।
'सुकवि गुपाल' आगें चातुरी अनेक, अेक–
अेक ते अनेकन रिझाय रिझवार हैं
भोजन–वसन पहुँचामें लगवार द्वार,
कैंअून अुतारे पार, मानति न हारकौं।
राजी रहै यार, लोग कर्यौ करें प्यार, याते
बड़ो सुपकार, रुजिगारहू छिनारि कौ।।

स्त्री उवाच

दोहा

सदा जाति को डर रहत, सब कोअू कहत छिनारि
याते नारि छिनारि कौं जग जीवन धरमार।।

कवित्त

देत धरमार, हितू यार नरनारि, डर
रह्यौ करें यामें जिमीदार सिरकार कौ।
पावत न यार, ढूढ्यौं करें ठौर–ठार, होत
आतस कपार, मोष नरक के द्वार कौ।

घर के 'गुपाल' दियो करे मार-मार, डर
रह्यो करे यामें जिमीदार जमांदार कौ ।
लजे परिवार, औ' जमानों हांत हार, याते
सबमें उतार, हजिगारहु छिनारि कौ ॥

परनारि : पुरुष उवाच

याते नहिं कोऊ बच्यो, कांम प्रबल जग मांहि ।
याते तिय की प्रबलता, जग में सदां सिवाइ ॥

कवित

इन्द्र-चन्द्र मंद, मुनि पतिनी के फंद परे,
मोहे चतुरानन, सुप देपि जाया में ।
लैमे हरि जिदा, हैके बिदा ते रमन कियौ
लक्ष्मी सी नारि अुर धारत हे छाया में ।
देषत ही मौंहनी को मौंहनी ते मारे, परे
सिव पारवती अरधांगी घर काया में ।
'सुकवि गुपाल' नर-जाया की कहा है बात,
बिधि-हरि-हर से भुलाने तिय माया में ॥

स्त्री उवाच

दोहा

इंद्र-चंद्र की चकवली, रामन बालि समेत ।
बड़े बड़े मारे परे, पर-नारी के हेत ॥

कवित्त

गोतम की तिय ते कलानिधि कलकी भयौ,
इंद्र कें सहस छिद्र सुने हैं अगारी ते ।
तारा काज हाल भयौ बालि कौ सुकाल, भीम
कीचक कौं द्रोपती ते मार्‌यौ क्रोध भारी ते ।

रावन अखंड ब्रह्मंड डंड जाकौ चंड
राम खंड-खंड कीनौं सीता सुकमारी ते ।
'सुकवि गुपाल' नर तुच्छ की कहा है बड़े
बड़े जोम-दार मारे परे परनारी ते ।।

कामप्रलय : पुरुष उवाच

कवित्त

सुर औ' असुर नर निसचर पच्छी पसु
कीटक पिसाच जच्छ बस मन ती के हैं ।
याते आठौ लगें भगतन कौं भगति भाव
याके बिन खगत जगत, सुख फीके हैं ।

'सुकवि गुपाल' ऐसौ बिधि के प्रपंच में कौ
जाके न हिया में मन भाऐ हौन जी के हैं ।
और हैं निकाम, काम साचौ यह काम, काम
अपति भऐ पै सब काम लगें नीके हैं ।।

स्त्री उवाच

दोहा

बाहू जुग जलज सनाल, मुष कंज फूल्यौ
सोभा जल पूरन गभीर सरसायौ है।
कटि भाग पछिम, नितंब परवत नैन
मुफरी सिवार केस स्याम दरसायौ है।

भनत 'गुपाल' जुग कुच चकवाक जोड़ा
त्रवली तरंग नाभि कूप सो सुहायो है।
कांम सर ज्वाल ते तपत जग जीवन कौ
नारि रुप विधना सरोवरि बनायौ है॥

विसैसुष : पुरुष उवाच

कवित्त

डारि गलबाहीं मीठी बतियां सुनीं न कांन
करि चतुराई हाव, भावन कौं चीन्यौं ना।
सैन के समै मैं कुच गहि कै अलिंगन दै
स्वाद अधरामृत आनंद में लीनौं ना।

'सुकवि गुपाल' सजि सेज औ' सिंगार, तरुनायन
के मांझ यार हँसि रंग भीन्यौं नां।
वृथां पछिताय, यौं ही जनम विहाय,
ऐसी नर देही पाय, जिनि तिया संग कीनौं ना।

स्त्री उवाच

दोहा

जेई सिद्ध साधक महंत सत जेई बड़े,
जेई परम हंसन, प्रसस जग लेखो है।
'सुकवि गुपाल' जेई मायक विकारन ते
भये निरलेप काम-क्रोध-लोभ रेखो है।

जप-तप-नेम-व्रत तिनही को सांचो सदा
तिनही को स्वर्ग-सुख जगमे विसेख्यो है।
नरक को छेक्यो, पुन्य बढ़त अलेख्यो, जिन
घरनी में आय कै तिया को सुख देख्यो है॥

लगनि कै : पुरुष उवाच

कवित्त

दुहून के दुहुन में लागे रहे मन, तन, प्रफुलत
होत परि दरसन आगे ते।
भोगत 'गुपाल' ब्रह्मानद की सौं भोग हिय
होंस लागी रहे उर कामहि के जागे ते।

यही प्रर्थी-सार, देह धारे को सुफल, हरि
याही ते मिलत पूरे प्रेमहि के पागे ते।
सदा सब जागे, लागे आछे राग-रंग
मेंहमाने सुख मिलें, नये नेहहि के लागे ते॥

' स्त्री उवाच

दोहा

तपत रहत काम ' चिता विरहागिनि मैं
· भागिन ते भेंटें कबौं लागत चमक के ।
रहै गुरुजन, दुरजनन ' कौ भय लोक
लाज धर्म त्यागै होत दरस रसक के ।

रापके 'गुपाल' दुनौ सदिन के मन-बन
गाहने पग्न मांन मारि कै ठसक के ।
सुनत धसक होत हिय में कसक, ऐसी
रहति ससक सदा लागत असक के ।।

विरह कौ : पुरुष उवाच

कवित्त

सुमिरन रहै दिनरैनि रूप माधुरी कौ,
ध्यानहि में सदा लाग्यौ रहै प्रिय भोग मैं ।
होतह 'गुपाल' दोऊ प्रीतम के रूप प्रेम
पूरन रहत हित बढ़त संभोग मैं ।

दुहुन कौ दुहुन के प्रेम की परीक्षा होइ,
' जोति जग जगै मन लागै हरि जोग मैं ।
मिटै सब सोग, कोऊ व्यापत न रोग, यों
· संजोग ते सरस सुख होतह वियोग मैं ।।

स्त्री उवाच

कवित्त

स्याम निसां बिता पीर बाढ़ै नित नई, अरु
बिरह परेषे बात होन है गिरह में ।
बारे-पीरे तातें-सीरे, स्रम होत गात अति
सुपद-दुपद है जरावन जिरह में ।
सुप-प्यास सुधि-बुधि निंद्रा-दुति अगन की
सुप घटि जात मन रहै न थिरह में ।
'सुकवि गुपाल' कहै गुथन में देषि देषि
दपनि के होन ऐते लछन बिरह में ॥

लौंडेबाज : पुरुष उवाच

रहै अजरे-बाजरे, पेलत पेल अनेक ।
ल्डौबाजी की यमक, यातें जग मे ऐक ॥

कवित्त

देष्यो करै रग, मदबूबन के सग, होइ
हिय में अुमग, डर रहत न काजी को ।
'सुकवि गुपाल' सदां आसिक महाइ, सौक
सायनि बनाय पेल-पेलें दगाबाजी की ।
अब के लगावन, कलक न लगत, नित
लौंडों करै मजा, राग भजन गमाजी को ।
आवै इस्कबाजी, दिन रह्यो करै राजी, यातें
बढ़ेई मिजाजी की यमक लौंडेबाजी को ॥

स्त्री उवाच

दोहा

धानु-हीन, बल-हीन तन, भोगी जाय न जोइ ।
लौंडेबाजी को यमक, याते कछू न होइ ॥

कवित्त

मारी जाय नन, जीअु परै परवस, होइ
गरमी मुजाक, बढ़ै छीनता कुकाजी को ।
'सुकवि गुपाल' बहु आसिक के साथे, तोन-
मोल न रहति, मन विगरै मिजाजी को ।
आवति गिलान, धन नैयै अप्रमान, मन
रापनौ परत महबूबन को राजी को ।
रहत न ताजी, रुपै प्रानन ते बाजी, सदा
याते यह पाजी, है यमक लौंडेबाजी को ॥

रंडीबाज : पुरुष उवाच

रहै नहीं डर राज को, भोगै राअुरु रंक ।
रंडीबाजी करत नित, रहत सदा निरसंक ॥

कवित्त

राअु अरु रंक भोगयी करत निसंक औ'
कलंक लगत दिल रहै राजी राजी मैं ।
'सुकवि गुपाल' रहै काहू को न डर, सो
अुजगुगर है राग रंग देपत समाजी मैं ।
रहै सुप पाइ कै, बजार की मिठाई पाय,
पाइ के सिवाइ, मजा डूबै इस्कबाजी मैं ।
तन रहै ताजो, आगे होनि है निलाजी,
रंडीबाजन कौं, सुप ऐते रहै रंडीबाजी मैं ॥

सवैया

नग लाल रहै छिगुनी में छला, नित संग रहै नसे-बाजन का ।
बहु पान मिठाइन खाते रहै, बहु राखे मिजाज निहाजन का ।
'मागुपानजू' पातुरी से करि भाग सुन्यो करैं राग समाजिन का ।
सब सोपन में यह सोप भलो कहते यह रंडीबाजन का ॥

स्त्री उवाच

दोहा

रहि मिजाज में नहि बनै, करनी काज निहाज ।
करि अकाज दुहूँ लोक होइ, रंडीबाज निलाज ॥

कवित्त

धन रहै जौलौं, तौलौं आदर करनि फेरि
सुपहू न बोलैं कहू मालन कौ पाइ कै ।
'सुकवि गुपालजू' सुराय परतीनि-प्रीति
निरधन करैं छिन सुपह दिपाइ कै ।
भागन भुगवाइ, जग जूठिन पवाइ, निंदा
लोक में कराइ, देनि नरक अथाइ कै ।
गननि न ताय, करैं आतस मिताइ, यातैं
कबहूँ न कीजै रंडीबाजी कहूँ जाइ कै ॥

कुटनी : पुरुष उवाच

दिन अरु रानि भर्यो रहै, नरनागिन सों धाम ।
याही तैं सबमें मनौ, यह कुटनी को काम ॥

कवित्त

छिनरा-छिनारि प्यार राखें, नरनारि, जुर्यो
रहै दरबार, ताके मुधर गुनीन कौं।
रहति न दीन, बडी होति परवीन सदा
पाय के सिनीन जे मिला में परलीन कौं।
'सुकवि गुपाल' होति मनकी हरनि, वसी-
करन कौं करि धन हरति धनीन कौ।
पहरति चीन, ठगि ठगि वमर्डन, याते
सबमें प्रमीन यह काम कुटनीन कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा :

दयौ करै धरकार सब, ताहि आठहू जांम।
याते भूलि न कीजियें, यह कुटनी कौ काम॥

कवित्त

बिगरत जाकौ इह लोक परलोक रोक-
टोक के करत दिन राति चैन लीजै ना।
'सुकवि गुपाल' जोराबरी के मिलायें सती-
सीता के हुपायें पुनि याकौ बचें बीजें ना।
होत बेसरम, जात धरम-करम, हया
हुरमति-बारे जे, परौम मांझ धीजै ना।
पड़े लोग पीजे, मार बांध तन छीजे, याते
भूलि रुजिगार कहूं कुटनी कौ कीजै ना॥

धरूका के : पुरुष उवाच

ब्याह न गौने चाले कौं, परचत परत न दाम ।
याते भलो 'गुपाल कवि' धरूकान को काम ॥

कवित्त

सदा ही निकार्यो करै सबमें कसरि-कार
जाति ते डरै न कानि रहनि न भूका की ।
आज गौन वालो, पांनो परत न पालो, जाय
छाजै सत्र बात, धान आवति बिसूवा की ।
'सुकवि गुपाल' हाल कस कढ़ि जात, बिन
दामन ही मिलै तिय सुघर सलूका की ।
रहत न भूका, मार्यो करत मचूका, सदा
याते यह सिरै बात सबमें धरूका की ॥

स्त्री उवाच

दोहा

धरूकान को धन धरत, कुल कों लगत कलंक ।
जाति-पांति के बीच में, बैठि न सकत निसंक ॥

कवित्त

बैठि न सकत कहूं जाति पांति बीच, सादी
गमी औ बधाइन में दीयो करै ढूका कों ।
'सुकवि गुपाल' धूम पायो करै लोग, बेटा
बेटी को न करै काऊ सादी सुनि धूका कों ।

बोलि नहीं सकै, लगै कुल कौं कलंक, पानी
पितर न पावै, तव मारै हिय मूका कौं।
तन जात सूका, सुनि जगत की कूका, सदां
याते धरकार जग जीवन धम्का कौं ॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये अधमाश्रम शृंगार वर्णन नाम
त्रयोविंशो विलास :

चतुर्विंशो विलास

प्रकृत प्रबन्ध

बाल अवस्था : पुरुष उवाच

सोरठा

नृप पदवी मे जोइ, कबहूँ, न सो सुख पाइये[1] ।
बालपने ते होइ, सब वैसन ते[2] अधिक सुख ॥

कवित्त

कहुँ खेलहु ग्वान की लालो रहैन, खुशी दिन मास फिरै अपने में ।
कितमें दिन आयवे, जूगे मितें, नहि जानि परै कबहूँ सपने में ।
नित भोजन भूषन आछे मिलें, मिठ बोलन और सम्पपने में[3] ।
'कवि रायगुपाल' विचारि कहै यतने सुख होतहु 'बाल-पने में ॥

स्त्री उवाच

दोहा

तुमसु कहत दुख नाहि, कवि गुपाल या वैस मैं ।
ते सुनियै मो पाहि, बालपने के जे अनूप[4] ॥

---

१. है प्राइय र है मु मे ३ मु सनी लागन बातन वे यारा म
४. है. मरने सुर है पारानें मे ५. है. मै. म दोष के स्थान है ।

कवित्त

जाकूं मचलत ताड[1] करिकै रहत होड
चंचन सुभाइ तन धूरि में सने रहैं ।
सिष की लहैं न, भूष प्यास को रहैं न, औ
गहैं न गुण, पेल[2] श्रोटपाड के ठने रहैं ।
'सुकवि गुपाल' जो लराइ लेत मोल बौ'
उराहने न लाइ ज्वान करत घने रहैं ।
मार-धार गारि-रारि और फोर-फार सदां
यतने विकार बालपन में बने रहैं ।

तरुनापन : पुरुष उवाच

बालपने में होति जे, तरुन पणे नहिं होत ।
जोबन के गुण सुनहु अब, तितने[3] बुद्धि उदोत ॥

कवित्त

कोऊ रोग सरीर सताय सकै न, सदां बड़ो जोम रहै तन में ।
तरुणीन सौं भोग विलास करै, पुनि भारी भंडार भरै धन में ।
बहु देस बढ़ाय कमाय धनौ, रुपि रारि करै रिपु सौं रन में ।
'कवि रामगुपाल' विचारि कहै, यतने गुण हैं[4] तरुनापन में ॥

स्त्री उवाच

दोहा

तरुण अवस्था पाय, यतने औगुण होत हैं ।
तिनहिं सुनहुं चित लाय, कवि प्रवीन निज कान दै ॥

---

१. है. मु. ताहि २. मु. गहत गुण खेल ओटपाइ के ठने रहैं ।
३. मु. जितने ४. है. गुण होत इते

कवित्त

भरे गरवाई, निंदा करत पराई, लगत
न चित जाई कहूँ भजन भलाई में ।
मद रहै छाई, सिष सिपै न सिपाई, बस्यो
करत सदाई तन तरुनी पराई में[1] ।
करत लराई, मार देत जाई-ताई फिरे
अंद्यो डोलै भारी जिहि जोम अधिकाई में ।
करत बुराई, निस दिवस बिहाई, ऐसी
अवगुनताई, सदा होति तरनाई में ॥

वृद्धावस्था : पुरुष उवाच

तरुनापन के गये जब, बृद्धावस्था[2] होइ ।
जग के जीवन कौं तहा, तउ यतने[3] सुष होइ ॥

कवित्त

बडो करि जानें, पुरिपतन[4] कौं मानें, मिलै
बैठे पान-पानें, ताकी सबही महत हैं ।
करत सहाय, दइ देत नहीं ताद, मन
हरि में लगाइ, सुकरम कौ गहत[5] है ।
'सुकवि गुपालजू' कुटंब सुष देवें सदा
कारे महैंदे ते सुष अजगी लहत है ।
साचकी गहन, काम क्रोध कौं दहन, याते
येते[6] सुष सदा वृद्धताई में रहत है ॥

---

१. मु. वगिनां करत सदा तर्गणि पराई मे २ मु. वृद्धावस्था ३ मु. तितनो ४. पुरपानकरि ५ चहत ६ मु एतो

स्त्री उवाच

दोहा

हाथ पाँव रहि[1]जाइ, कुटम कह्यौ मानत नहीं ।
वृद्धावस्था पाइ, बहुत भलौ नहि जीवनौ ।।

कवित्त

गात गरे जात, सब दाँत झरे जात, संग—
साथी टरे जात, बात मुहति न थापे मैं ।
हीन है निबल, जान रहै बुधि बल, बन—
अचलहि हीन, बहु भोजन के धापे मैं ।
भोग के करे पै, रोग दाबत है आय औ'
सुपेदी छाय जाय, मन रहतु न आपे मैं ।
सब सुख हापे, रूप रहतु न नापे, थर—
थर देह काप्यौ करै, आवत बुढापे मैं ।।

हुरमति : पुरुष उवाच

दुर्मति जिय की जाति पुनि, हुरमति होत अदोत ।
कुरबति जाही की बड़ी, हुरमति ताकी होत ।।

कवित्त

बड़े बड़ी साषि, जाहि जाने लोग लाष, औ'
लजीली होइ आँषि, बचि जाइ दुरमति ते ।
'सुकवि गुपालजू' कलंक न लगाइ, जस
जग मैं बढाइ कै, बढ़ाय अुरमति ते ।

---

1. है. थकि. मु. थकिजाइ

अधिक कमाय चाहै, तापै पास जाइ, पाइ
दरजा मिवाइ, जाइ बैठे कुरमति ते।
बैरी सुरमत, काज हीन कुरमत नित
नई मुरवनि, लोग रार्ये हुरमति ते ॥

स्त्री उवाच

दोहा

माँगन हुरमनि जाइ कै सदा आठहू जाम।
हुरमनिवारे की जबै, हुरमनि रार्ये राम ॥

कवित्त

आपना मरम जाइ कहि न सकत होइ
हिय ही मैं दहम, सो माँझ लोम वारे त।
मरम की मेधा, गोहा पिरनु रहन जब,
आइ कै सतावै लोग घरि करि द्वार की।
'सुकवि गुपाल' नाही परि न सकन तब
हरि ही मरम सदा रापन विचार की।
मन जात मारे पाछे जात घरवारे याते
होत दुपभारे, सदा हुरमनिवारे की ॥

जसी : पुरुष उवाच

दोऊ मोर म सुप मिनन, हात मजन मैं मन्न।
जिन के जग है जगत मैं, जीवन जिनके धन्न ॥

सवैया

घर में धनि-धन्य कहे सबही, कबहीं न तिन्हें दुख दीवत है।
सुर देह धरे, सुर लोकहि में, सुपहीं सों सुधा नित पीवत है।
भरि आनँद में यों 'गुपाल' कहै हरि के पद पंकज छीवत है।
जिनके जन फँसि रहे जग में सो मरेऊ सदा नर जीवत है॥

स्त्री उवाच

दोहा

सहस कष्ट करिकैं सदा, लहस रहै जो कोइ।
रह सब हमते जगत में, सहजहि जस नहि होइ॥

सवैया

करते इहि लोक ही में निघटै, परलोक मिलै नहि जीवन कौं।
परचे धन, कष्ट करै तेई होइ, सो पूरबलेई नर्जीवन कौं।
सहजै यह होत नहीं कबहीं, पचिके तो मरी क्यों नर्जीवन कौं।
पुरिषान के पुन्यते 'राम गुपाल,' मिलै जग में जस जीवन कौं॥

कुजसी पुरुष उवाच

ढीठ बड़ो होइ पंचन में, रारि बाद करै तो दबै न किसी ते।
कोऊ न जाचिक आइ सकै ढिग, भोजन मांगि सकै सो त्रिसी नैं।
होइ यों रे कियहूं बड़ाई बड़ी, बिगरै पै कोऊ कै नर्क न किसीनैं।
सुनि हांसीन मानौं 'गुपाल कवी' जगमैहैं सुखी कुजसी गुजसी नैं॥

स्त्री उवाच

दोहा

जिनकौं अुखयो करत सब, घरघर में नर नारि।
याते कुजसी नरन कौं, जग जीवन धरकार॥

कवित्त

जूक्यौ करें जिनकौं सबही, कोऊ जाने नहीं केंह कौन परे हैं।
भोगन नर्क न जाइ अहा, सु यहा दुष में दिन रैनि भरे हैं।
काहू के काम में आमे नहीं, जे व्रथा जग में विधना ने धरे हैं।
ग्वाय गुपालजू जे कुजमी नर, जीवत ही जग माँझ मरे हैं॥

सपूत : पुरुष उवाच

पितर नृपति पावें सकल, बदत धम्म धन मूत।
सुजस होत सब जगत मैं, जहँ घर होत सपूत॥

कवित्त

*कुल मरजादौ, भारी करें सदा सादी,
परमारथ को वादी, पाग बैठ न सपूत है।
लोकहि सँभारे, परलोकन सँभारे पूरौ
पंच-पन पारे मान बोलें भलो कूत के।
मातपितु सेवें, नित सेवें हरि देवें, जाकी
जग जस जैवें, दीनी जाचिक बहुत के।
अति हितकारी, उपकारी कविरायन को
भनत 'गुपाल' ऐसे लछन सपूत के॥

स्त्री उवाच

कवित्त

गहे पुरिषान की सो निंदा करवावें अब
कौडी नहिं छोडे धन धरत विभूती मैं।
लखत न राह, आगे पाछे न निगाह करें,
रिन करि जाय, काज करि मजबूती में।

* हि० प्र द० कविता सुत मनि के अंतिम कविता है।

'सुकवि गुपाल' बड़ो नाम नहिं पावे, सब
थोरो ही कहावे, जस करत बहूनी में।
करत कपूती, कुलके कों करे जूती, याते
येते दुख होनह सपूतहि नपूतों में ॥

भड़वाई : पुरुष उवाच

सवैया

नहि काहू सों नेक घमंड करे, नमूनाई सों थोम बितावतु है।
नित प्यारो रहै धरबारहु कों, पितु—मातहि मोद बढ़ावतु है।
कोऊ नाम धरे नहि कारज में, करे थोरे ही में जस पावतु है।
नदामरुजाम अे पोटे दोऊ बड़े, कांम में कांम गुआवतु है ॥

स्त्री उवाच

दोहा

नांम धरन सबरो जगत कुजस होत हरि पोन।
कुल कपूत के ऊपजे, कुटुम अँधेरो होन ॥

कवित्त

बढ़िके हथ्यार रन भूमि में चलाअे नांहि,
दीयो नांहि धन, दुखी दीन की कसक पै।
भनत 'गुपाल' कवी ऊंचो कर कीयो नांहि,
जाचक कों दीयो नांहि जस की चसक पै।
कविनके मुख कविता को स्वाद लीयो नांहि,
रीझे नांहि कहूं राग रंग के असक पै।
बूड़ो बने कोऊ अबदिनन दमेक ते ये
छैल बने डोलें कहो काहे की ठमक पै।

दानी : पुरुष उवाच

ऐते नृप दानीन कौं, होत देन में दान।
देस देस में जाय जस, गावत कवि गुनमान ॥

कवित्त

बड़ो धर्म-काम, औ' अमर होइ नाम, भोग
भोगै स्वर धाम, पुनि पावै राजधानी कौं।
भोरहिं 'गुपाल' उठि लेत जाको नाम आठो
जाम गुनमान, जस गावत ममानी को।
यदै बड़ो धन, लागे मुक्त में मन, करि
दया उपकार उपदेसन अगुवानी कौं।
दर्द राजा रानी जग कीरति रमानी होति
जेते नृप आनी, सदा दान देत दानी को ॥

कवित्त

जाचिक को देखि कें, व हँसि मृदु बोलें बैन
वचन सुनाइ देइ आनंद महान हैं।
श्रद्धा करि देइ, रीझ मास मन भेइ, पुनि
कवि के कवित्त की कहनि करें कान हैं।
भनत 'गुपाल' रीति दानी जे दयालय की
थोरोई मो देनों ओ' बहुत मनमान है।
प्रीति बिन देवो, अनगण धन काम को न
प्रीति करि देवो कन मन के समान है।

स्त्री उवाच

दोहा

देनों करन कबूल पै, भरनो परत कबूल।
दान देत दानीन कों, इतनें दुख के हूल ।।

कवित्त

धरम के संकट कौं सहनो परत, घर–
आए राजी होइ नहीं याचक कौ जितने।
'सुकवि गुपाल' कछू पाछे जो बनै न कहूँ
कुटुंबै कपूत कहन्यौ करैं लोग कितने।
पुन्य बीच पाप द्विज–दीन कौ सराप आप,
बड़ो परताप ताप सह्यौ करैं नित नें।
प्रभु गाबे सत बड़ी सूछम है गति तासों,
दान देत दानिन कों होत दुख इतने।

स्त्री उवाच

दोहा

देखत रूपो ही रहे, पुनि बोलें मन मारि।
अस दानिन के दान कौ, देवौ है धरकार ।।

कवित्त

आँखिन में सरम न धरम करम जानें,
सुकृत सुजस नाँहि राखत है लाज कौं।
'सुकवि गुपाल' प्रतिपाल करैं दीन, कौ न
कौन गहि रहै, न सँभारे परकाज कौ।

करनी करै न दिन भरै मरै कौडी-
काज, जोरि धन धरै न सालो करै नाज कौं।
कुजमी कुपून कुकरम के करैया कर
कायर कुवुद्धी करा देई करि राज कौं ।

सूम : पुरुष उवाच

धरे सुमता सुप सदा, येसु मन को होत।
दाम लगै नहि गाठि को, जग में होत अुदोत ॥

कवित्त

मांगि न मान, नोध जाद दरवाजे जाइ
दूयंजन दमैरा गाजी गमी की रसूम कौ।
काढत 'गुमान' नाम दाता ते गरम जेव
नांही त्यं नाग नगि राखै छाम छूम को।

जुग्यो धग्यो रहत, सपूत धौ' सपूतन की
परच न होत धन सेयो करे भूमि कौं।
जग में ससूम करै जानित न धूम, ऐते
होत गेह-गेह गुप ऐते सदा सम रो ॥

स्त्री उवाच

दोहा

मैया मो मरि जाति है धक दमरी के नाम।
याते भूनि न मांगिये, सूम गर रो नाम ॥

कवित्त

नाहक कुजस धरवावंत जगत मांझ,
नाम धरवावत कुटम पितु माता कौं।
गारी पाय लेत, कौडी देत प्रान देत, कोअू
नांम नही लेत, अुठे जाकौ परभाता कौं।
कहत 'गुपाल' मर्यो सूम सौं मखूच, कवी–
परसै-पपावै नही, मांनि गोत नाता कौं।
अस रहै गाता, पर ओपरहू पाता, तअू
अेक परिजाता, लेपो सूम अरु दाता कौं॥

मंजूच : पुरुष उवाच

सवैया

बैठिकें पञ्चपञ्चायति में सदा, बातन ही की कर्यो करे रेनें।
का[illegible] बाट में आमें नही, सदा 'गामगुवान' नफाहू में पेनें।
कामके काजें अधीन रहें भअे काम पै फेरि रहे नहिं भेलें।
सौपनें जान न देत है सांके, जे और में आइकें मूसर मेलें॥

स्त्री उवाच

कवित्त

जाके करे पै बुरौ समझ, जो प्यार करे पै बिगार करीजें।
जो अुपकार कौं मानें नहीं, दुर्दी दीन की देखि दया में न भीजें।
झूंठा करो निरदै करदी मनमोर कुरमं कौं काहु न दीजें।
आपनो चाहै भलो जो 'गुपाल' तो भूलिकें अैसे कौ संग न कीजें॥

स्त्री उवाच

दोहा :

सत्य काज नीच घर नीर भर्‌यौ हरिचंद
सत्य काज भेजे बन राम छोड़ि गद्दी कौं ।
सत्य काज करन नैं कुंडल कवच दये,
सत्य काज धर्मसुत सहे कष्ट जादी कौं ।
सत्य काज बलि दै त्रिलोकी कौं पताल गये
सत्य काज जगदेव दीयौ सिर शारदा कौं ।
कहत गुपाल जेते सबही जुगादी बड़े,
बड़े कष्ट होत सत्य मार्ग सत्यवादी कौं ॥

झूठा : पुरुष उवाच

कवित्त

जहाँ जाइ बैठे तहाँ आदर अनेक करै
पूछे घने लोग मान मान्‌यौ करैं भोले तें ।
सुकवि गुपालजू विद्वान करै दानी लोग
भोग भोग्यौं करें मतलब काढ़ि ओले तें ।
साँचौ बनि जात, ताहि यामैं केऊ ध्यान, ज्यादू
किये पाछे हाय, कहा करै कोऊ पोलें तें ।
सत्य बोलिबे तें जेते बनत न काम, अब
जेते काम बनत असत्यहि के बोले तें ॥

स्त्री उवाच

सोरठा

मिथ्यावादी धूत, कहत लोग ज्ञानी सबै ।
बोलत झूठ अकूत, ते नर नरकहि पावहीं ॥

कवित्त

धर्म यश हानि, औ' मनानि होत यार्मे, भोगें
दुष आनि प्राण जात वात बात पोले ते।
जहाँ जहाँ जाय तहाँ तहाँ जाय झूठौ होत,
होत बड़ो पाप, परताप ताप तोले ते।
मित्र नर्क जात, औ' ववासौ वैठि जात, सत–
संगनि परैया हाल मार्यौ जात भोले ते।
कहत 'गुपाल कवि' पचन मैं बीच बहु,
झूठन को होत दुष अैते झूंठ बोले ते॥

सुतसंतति : पुरुष उवाच

जागत पोरि कुटुंब की, जग जस होत विख्यात।
गृहस्थाश्रम सुत भये, यतने सुष सरसात॥

कवित्त

चलत है नांम याते पितर त्रपति होत
वंगहू बढावै परचावै जग भूजो है।
जाके याजे केते राज रिषिन तपस्या करी,
है मरि अधीन देई देव तन पूजो है।
जगत में या विन अनेक गुण होंर, तऊ
फीको लगे धाम–गांम–नांम–धाम¹ हू जो है।
मनत गुपाल याही मनिषा जनम में
पदारथ रतन धन सुत सौ न दूजो है॥

---

१. है म नहीं है। २ है. धम

स्त्री उवाच

दोहा

सुनि कुवड़ाई[1] जगत में, लक्षन देषि सपूत ॥
मात–पिता रु कुटंब कें, तब दुष होत अभूत ॥[2]

कवित्त

रहत विरान नहीं, पावत कमांन, होत
 पर्चे अप्रमान, पान पांन पुन्य दांन में[2]।
सुकवि 'गुपाल' दुष पावत है प्राण तब
 करत कपूती कहुं सुनें निज कांन में।
होत जब ज्वान बस परत विरान जाके
 पालत मैं आंनि नर्क भोगत अठ्यान में।
घटे बल ज्वान, तिग विगरे निदांन, आंनि
 होति ऐती आन, सदां सुत की संतान में।

कवित्त

पितर अभूत–भूत पूजने परत केते
 देई देव ध्यावत में, सर्से रहें आन के।
वैद–स्यानें–जोतिसी हो पाये जात घर
 वहु परच रहत जाके सदां पुन्य दांन के।
जीवग जनम जाको पारजौं कठिन सब
 छोड़ने परत स्वाद आछे पांन पांन के।
'सुकवि गुपाल' कहु होत नहि जांन तिय
 विगरे निदांन होत सुत की संतान के॥

---

१. है. हं ति बढाई
२. है. प्रति में यह नहीं है।
इसके बदले "सपूत" का दोहा है। "कुल मरजादी......(कवित्त)।

बेटी की संतानि : पुरुष उवाच

कुल कलंक छिपि जात सब, नाते घर घर होत ।
पाप कटत सब देह के, सुता जाम घर होत ॥

कवित्त

जानें घर बार, औ' सजन आवैं द्वार नर
　　नारिन के पायनि की होइ जानि हन्या है ।
विकारनि नास, औं पवित्र करें धाम, करवावे
　　पुन्य काम, धर्मरीन अनगन्या है ।
'सुकवि गुपाल' कँई ठौर होत नाते, बड़े
　　भागि होत जाने, ताने दूजौ ना धरन्या है ।
मानिवे कौं मन्या, सुरा तारन तरन्या, भागि
　　करन कौ धन्या, सो बनाई विधि कन्या है ।

स्त्री उवाच

दोहा

जाके जीवत जनम मौं, परत न कल दिन राति ।
देखन बेटी कौं सुनिन, चिंता में दिन जात ॥

कवित्त

जनमत सोग, जन्म जीवन कौ रोग, वर
　　वर चाहे जोग, सदा देनो परे बेटी कौं ।
ससुर में रुवावे, घर सूनो कीर जावे, धन
　　परायो कहावें, नित चिंता रहै बेटी कौं ।

'सुकवि गुपाल' राऊ रंक कौं नवावैं, पन-
पन नहीं पावैं, करें भर के अमेटी कौ।
परत न छेटी, नैंच दौलति इकेठी, बात
करत न हेठी सो बनावो धन वेटी कौ।

ब्याह सुख : पुरुष उवाच

चलन चलन सब गौं च न, भोगन भोग विलास।
ब्याह भये ते होत ए कनिक सुक्ख प्रकास॥

कवित्त

जग्य व्रत दांन तब याही ते सफल होत,
पावैं जस नाम, वहु वंस के बढाऐ ते।
मानन अनेक मनपत कैंधू बातन कौं,
लछमी की होत परकास याकौ पाऐ तें।
'सुकवि गुपाल' चुकें तिनन कौ रिन, क्वार-
पन अुतरत, सुप पावन बुढाऐ ते।
मगल वधाऐ, मुदित होत अप्ति पाऐ भोग
भोगत सवाऐ सो तिया कौं ब्याहि लाऐ ते।

स्त्री उवाच

दोहा

तीरथ व्रत जप तप कछू, भजन भाव नहिं होइ।
करनौ ब्याह सु नरक कौ, सांमां जग में जोइ॥

कवित्त

देह बल छीन, हित कुटम न हान, सैनी
परे सबही की पूरो [illegible] कमाओ ते ।
जाइ न सकत, पाय काठ म चगा, गरखेरो
होत जीवत लौं बस दे बढाओ ते ।
नौन-तेल-चुरी-गुमी [illegible] लानौ
रहै दिन रैनि अग लगन न पाओ ते ।
'सुकवि गुपाल [illegible] परत [illegible] सदा
ये ते दुख हात हैं तिया की ब्याहि लाओ ते ।।

सुहाग : पुरुष उवाच

बालन हित नित कुटम सौं, सूख हानि पिव-सार ।
पिय के संग सुहाग तें, सुख होत अपरंपार ।।

कवित्त

होत रहै सदा सुत—सुता के जनम जामें,
भूषन बसन भोग अवगाहियत हैं ।
'सुकवि गुपाल' पिव-प्यार ससुरे में नित
जावें पीछैं सबही के मन भाइयत हैं ।
लाड़-चाव हुलसत आदर अकर मन
मान मे गुमान मे न थाह लाइयतु हैं ।
प्रीतम के संग, अनुराग बस भये बड़े
भागिन तें जग में सुहाग पाइयतु हैं ।।

स्त्री उवाच

कवित्त

हाथ मैं न चूरी, कवी कान में न वारी, परी
　　मन की न बूझी, ब्रान भरि अनुसंग तें ।
गांठि में न गथ, रह्यो हाथ मैं न नेपो तातो
　　पायो रातो पहर्यो न वसि कै सुहाग तें ।

मनपति मानि, दीयों लीयो नहिं काहू भोग्यों,
　　जनम दरिद्र तन जारि कलहागि तें ।
सुकवि गुपाल जाके फूटि जात भागि तिय
　　ऐसे ही भली है सदा ऐसे तो सुहाग तें ।

ज्वानी मैं व्याह : पुरुष उवाच

फिरि करि ज्वानी चढ़े, सबही सों नेह बढ़ै
　　कढ़ै आछो रूप तन तरुनी को छीजे तें ।
नित नये नाते, दुहुधा ते दाति आवै, पावै
　　हृदय में चैन सास्त परत न बीजे तें ।

बढ़त गुपाल, सुसरारि सों सरस नेह,
　　देह लाल होति, घरै वरैं छत्त दीजे तें ।
जब लग जीवै, हीयें रहत अनंद, ऐते
　　सुष होत दूजा ज्वानी मांझ व्याह कीजे तें ।

स्त्री उवाच

गित भोजन भूपन चाहं भले, नहि छोडि सकें घर घेरहिं दीज।
मन रापनों भापनों मीठी परे, कतहू कल नाहि परे जब पीजे।
घर रोप बिना नहिं काम सरे, यह रापे ते सासुरे के निन होजें।
छीजें सरीर पसीजें तथू, नहिं याते न दूजिहा ब्याह को कीजें।

दूजी ब्याह पुरुष उवाच

ठसक वही मन में रहै, धमक न मारें जाइ।
ब्याह दूसरे को बहुत रहत हिये में घाइ॥

कवित्त

ताप को नसावें बूढे भये सुप पावें, फूल
अग न ममावें, वाम पूरत है चाह के।
'सुकवि गुपाल' तरुणी तरुण औं बूढापे–
नों संतानि भयो करें घर जाह के।
वन्यो–ठन्यो रहै, तन कलप लगाय, वग
धातुन कों पाइ, भोग भोगयो करें लाह के।
नित नये चाय, घन वढत छिपाय पटे
वान न अुभाह, मन दूजिहा के ब्याह के।

स्त्री उवाच

दोहा

रापत जाके मनहिं कों गदा होन दुप घोर।
दूजिहांन की जोइ को, तरपो करें सबकोइ॥

कवित्त

देखा देखी बहून कों होत दुख भारी, इन्हें
कलह कौ बीज नहीं कहें छिद्रिनु है।
सबकों पठाय हित, घर में दुरानी करै
औरन में कृनि डारै, निज सज्जिनु है।
सेज जोगी होति, जब गोरि जोगे होत, वान
बातनि में लाजनि न जबहि जियत है।
'सुकवि गुलाबजू' बुढ़ापे मांझ निज जेते
दुजिहू के ब्याहन की होनि कठिनति है॥

दूजिहा की इस्त्री : पुरुष उवाच

बरनि न काहू पै बनहुँ, भारी होत निराज।
दुजिहान की जोड़ घर बैठे सूझै राज॥

कवित्त

बेटा-बहू नातिन के हाल सुख देखे बढ़ो
नवली कहाने सदा प्यारी रहै नाह की।
तुरमें 'गुलाब' सो नचायो करै नाच जाको
चाह रहै घर में चलति वात जाह की।
रहै हृष्ट-पुष्ट अनमन ठनगन ठानि
चटक-मटक सौं रहति बड़ी चाह की।
नेहा होत भारी, नहीं बढ़ै नर नारी, सदा
दुजिहा की नारी, जैसे नारी बादशाह की॥

स्त्री उवाच

दोहा

द्वै विवाह करि कै कहूं, तनक करै जो भेद ।
ते हवाल होइ जास के, पावै अनगन खेद ॥

कवित्त

अेक अंचै पांअू, अेक चुटिया को अँचै, निम
नारि जांम राति जे हवाल रहै जाई तें ।
जाकों नहिं जाइ, सोई जती नये ठाढ़ौ रहै
फजियत चारे अैसे भयो करै लाई तें ।
'सुकवि गुपाल' बनि दुबिज को बेकारालो
कन्नह को मार्यो कहि सकत न साई तें ।
दै करि दुहाई, हत्या देनि रहै नाई, पालो
पारें नांहि काई, राम भूलि द्वै लुगाई तें ।

रँडुआ : पुरुष उवाच

बन्यौ ठन्यौ तन देहि तिः, नादति है बहु सोइ ।
सब त्यागे मिटि जात सहु, रँडुअन को सुख होइ ॥

कवित्त

बड़ो परमारथ जान्यौ कान्यौ रहनि निज
करत न कहूँ क्यों जानौ जौन बारे तें ।
'सुकवि गुपाल' निज सौंधे रहै मन, निज
भामिन मैं नसा मारयौ करत नदाने तें ।

जायवे कौं राव कौं दिपायौ करै भय जासौं
नित नई नारि हित रापति निहारे ते ।
लाले मेटै सारे, रोमें लरकान वारे, याते
होत सुपभारे रँडुआ कौ घरवारे ते ॥

स्त्री उवाच

दोहा

रोटी-पाटी वास दुप, अरु कलक लगि जात ।
राड बिना रँडुआन कौं, रहत दुप्य दिन राति ॥

कवित्त

ज्यौं निसि नित तोता सौ पढायौ करै,
नित प्रति यामे घर होत भडुआन कौ ।
'सुकवि [illegible] न' घरवारो न पत्यारो करै,
मर्‌यौ करै मान, जाके देपि घरवान कौ ।

बास बसै न्यारी, कहै पनारी हत्यारौ, टोना पार
कै [illegible] पार कौ दै भडुआन कौ ।
चनन न नाम, औ' निटायौ करै [illegible]
रहै दुप धाम नित [illegible] रँडुआन कौ ।

राड के सुप : पुरुष उवाच

वृन्दावनि [illegible] जाकी [illegible] ।
[illegible] या राड कौ, [illegible] ॥

कवित्त

होइ जो पै लाप की बढ़ावै तऊ पाप ही की
मानत न सापि डर रहत सगापे की।
भोजन न भावै दिन कुढ़त ही जावै सुप
सेज न सुहावै, न सँभारि सकै आपे की।
'सुकवि गुपाल' मन रापनौं कठिन, जाकी
रापैं लाज हरि हँसि बोलै लगैं पापे की।
पायौ करै टापैं पच्यौ जाइ नहि तापैं, कह्यौ
जात कहु कापैं, दुप अधिक रँडापे को॥

मतेई : पुरुष उवाच

दोहा

सब सौं निडर रहत सदा, कुल को करत सुघात।
सब मैं सिरैं रहै मदां मतेईन की बात॥

कवित्त

माला रहै हाथ, जाकी सैर रहै बात, छोटि
उमरि के जान हीं में देपै सुप चौगुनौ।
जाकी झूठी बात, साची माननी परत निज,
साचीहू कीं झूठी सुनि करनौं न घोवनौ।
'सुकवि गुपाल' जाकी मोधनौ रहत पुनि
करनौ परत जाकौ अदब सुनौ गुनौ।
माननो परत, औगुनो हू गुनौ सो गुनौ, सो
तेहा होत याही तें मतेइन कौ सौ गुनो॥

स्त्री उवाच

दोहा

बुरो करति पिवसारियन, बुरवाई है बौत ।
मतेईन को अंत में, याते दुष वहू होत ॥

कवित्त

हितहू करे पै जाकौ अनहित मांनें सब,
वैर-भाव ठांनें, दात घरें रहै तेई कौं ।
'मुकवि गुपाल' रहै सबते अलग, काग
बुडामनि जैसे तासौ मूत नहि केई कौं ।
पाछे की न आस, अघ काटे ज्यौं फरास, नहि
जाकौ विसवास, सुप रहत न देही कौं ।
वूझ न कतेही, ताकौं टारत हतै ही याते
सवके मतेही, बुरौ जनम मतेई कौं ॥

सौतेला : पुरुष उवाच

कवित्त

सुत ते सरस सुप दीयौ करै सदां, वहू,
दवत रहन सो सँभारै भली मौत कौं ।
मांन औ' गुमान, तापै टसक बड़ौ रहै, बड़ौ
टसक सों रापै हित करि करि बौत कौं ।
'सुकवि गुपाल' जाकौं मनपति मांनें घनी
कहै सोई होइ सब देष्यौ करैं कौतिकौ ।
मांनें जो घरोत, धन जोरत अकोत, याते
केतै सुष होत, है सोतेलन ते सोत कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

दूसरे को घर में न कवी देषि सके, मुष–
आवै सोई वकै सुष चाहत अकेला कौं।
होतु है गुपाल' सव माल को अधंत, हाथ
परे पाछे दाम, दे न सकत अधेला कौं।
करि के कलेस, जर जमन न देइ, को
अुडायो करै धूरि, कुनै काढे करि भला कौं।
पारत पटेला, औ' मचायें रहै हेला, याते
सौति ते सरस साल सालत सुतेला कौ॥

सौतिके : पुरुष उवाच

सवैया

दुष औ' सुष मैं दोअू अक रहैं, अति गुप्प लहै तन ताप गयो है।
बहु बस बढै अपने पति कौं, उर मे अुपजै अनुराग नयो है।
'रायगुपालजू' आनंद में अुर में अुपजै अनुराग नयो है।
सुम्मति सों जो रहे घर तो सुष, सोतिन को नहिं जात कह्यो है।

स्त्री उवाच

सेज बटावति आधी सदा, नित देषत ही हिय जाति जरी है।
रापै न हेत सुता सुत सों, सुष बाप कछू ताको चाहे मरी है।
प्रीतम के संग काम-कलोल की ताकौं सुहाति न नेंक ररी है
'राय गुपालजू' या जग में नित चूंनहू की होइ सौति बुरी है॥

कातनहारी : पुरुष उवाच

कट कटाक्ष कटि ग्रीव नवि, छवि सौ गतिसों लेति।
चातुर कातन-हारि कौ सबही सौं रहे हेत॥

कवित्त

दिन कटिजात मन ऊद्यम में लग्यौ रहै
मौसर मरैं न पास पैसा रहैं पूत कैं।
'सुकवि गुपाल' पौधी पलिका पै पोढ़ि, घर
परच चलावै काम करत सपूत के।
आठऊँ दिना कौ सदा पैठ करि करि तातै
अलन चलन कर्यौ करै धिय पूत के।
देह मजबूत, वस्त्र बनत बहुत सदां
सबही सौं सूत रहै कातन में सूत के॥

स्त्री उवाच

दोहा

जोरत तोरत तार कौं, त्यौर मंद परि जात।
कातन कातनहार के, टूटत हैं कटि हाथ॥-

कवित्त

मावस औ' पून्यौ, छिक ब्याह औ तिहार वार
अकतौ रहत पूजैं देवी औ' अछूत के।
'सुकवि गुपाल' पैठ करनी परति त्रिकैं
पुरिया के पुन्यन ते दीयें बड़े घूत के।-

पाय जात कोरिया पड़ेरे औ' सराफ नफा
पटै जब दाम हाथ मेजै मजबूत के।
रोमे धिय पूत, देह दूपति बहुत, दुप होनह
अकूत वट् कातत में मूत के ॥

पनिहारी : पुरुष उवाच

कवित्त

सादी गमी ब्याह औ बधाई ठिर टहुं मैं
जीवना रहति सब दिनन निहारी को।
घर में 'गुपाल' सानी जिस्मि आइ रहै वह—
मोरी लीयो करें भली स्यारी-अनहारी की।
पनघट घाट पै निजारे मार्यौ करै बोली,
ठोनी गाख्यो करै देह रादनि नयारी की।
क्यारी सधै न्यारी, देह रहनि मुपागे, बड़ी
होति मनुहारी, पानी देत पनिहारी की ॥

स्त्री उवाच

कवित्त

घर कटि जात औ कमरि रहि जानि ठेक
परति गुपाल सिर, धरै घट भारी है।
लगनि चपेट, आइ जानि चोट पैंट, डर
ठेगर रपटिबे की कीचर अँध्यारी है।
बोली-ठोली सहैं, मिन पर-पर वहैं, वस्त्र
सज की रहै न रहै रानि दिन प्यारी है।
होनि बिभचारी, देर लगे पाति मारी, तीन्यो
पनन की हारी, गोई होनि पनिहारी है ॥

पुरुष उवाच

कवित्त

जुक्ति कें भग्न की वरनि नहि आति छवि,
दवि जात रति सोभा देपि सुकमारी की।
जेचत रसी के: अुरवसी के गे भाव करै
भुज की दुलनि आंपं चलनि अन्यारी की।
'सुकवि गुपाल' नाभि त्रिवली ललित जाको,
कंचुकी में कुच अग ओढ़े नील सारी की।
वैस करि वारी, फुलवारी में निहारी मन
गयौ पनहारी, अदा देपि पनिहारी की॥

कवित्त

लांबी लटकारी सुकमारी वारी वैस जाकी
ताके कुच पीन कटि छीन ब्रजनारी की।
नैन सफरी से, बैन मधुर सुधा से, छुर
कामहि जगावै, सारी ओढ़ि कें किनारी की।
'सुकवि गुपाल' माल मोती मनि मानिक की
वानिक की सोभा, हिय हरन हमारी की।
वैस करि वारी, फुलवारी में निहारी मन
गयौ पनहारी, अदा देपि पनिहारी की।

इतिश्री दंपति वाक्य विलास नाम काव्ये प्रकृति प्रबंध वर्णन नाम
चतुर्विंशो विलास:

पंचविंशो विलास

अथ परमारथ प्रबन्ध वर्णन

दोहा

चारि वरनआश्रमन के जे पाअे रुजिगार।
प्यारी के आगे सबै बरने[1] सुकवि गुपाल॥

सुनिकैं तियपरवीन ने बुधि बल दीनी डाट।
सबमें औगुन काढि कैं ते[2] सब दीने काटि॥

अैसो या ससार में मिल्यो न आश्रम कोइ।
जामें दुख्य न ऊपजै, सुख्य सदा ही होइ॥

तब हिय हारि 'गुपाल कवि', कही सु तो सों[3] बात।
अपनी बुधि बल ते तुही, करि[4] अब कुछ विख्यात॥

तब गुपाल कवि की तिया, करि विचार मन माहि।
बरनन कीनों सुकवि सौं, तामें दूष कछु नाहि॥

स्त्री उवाच

दोहा

कृत्य कुटम के काज कौं, करत सदा सब कोइ।
जो जाकौं नीको लगै, सोई नीको होइ॥

---

१. मु. सकल वर्ण २. मु. सुगमें ते सुगम काटिके ते।
३. है. नारि सो ४. है. कही करि

सब उत्तम मध्यम सु वै सब निकृष्ट रुजिगार।
'कवि गुपाल' परवीन नर जानत मन कौ मार॥

एक स्वारथ रुजिगार यक, परमारथ की जांनि।
इक धन प्रापति दूसरौ, हरि मिलिबे कौ मानि॥

जिनमें करिबे के जित्ते 'तुम ने कह्यौ न' एक।
वृथा कर्यौ बकवाद तुम, बांधि आपनी टेक॥

जे लौकिक रुजिगार ते[२], तुमन करे विख्यात।
परमारथ के है जिते, तिन सौं[३] रहि अज्ञात॥

पुरुष उवाच

परमारथ रुजिगार जो, बरनि सुनाओ मोहि[१]।
तव तेरी सिष मानि कैं, करूं जाय मैं सोइ॥

स्त्री उवाच

जिय जोप्यौं कौ ज्ञांन नहि, जामें नफा अनेक।
प्यारे सो सुनि लीजियै, हम सौं सहत विवेक॥

परमारथ : पुरुष उवाच

कवित्त

पूजा, पुन्य, पाठ, परि पूरन प्रगट प्रेम
पैजपन पारि[६]कै प्रभू के पद परनौं।
ज्ञांन, ध्यांन, दया, दान,[४]दीन–सनमांन कथा
कीरतन–व्रत–नेम तिया[५] संग टरनौ।

१– है: यह दोहा है :–परमारथ रुजगार जो बरनि सुनाओ मोहि।
तव तेरी सिष मानि कै करूं जाय मैं सोहि॥
२. है. मु. ते ३. मु. न ४ मु. है ५. मु. ते ६. मु. मोइ ७. मु. मरि
८. मु. कटिकै ६. है. मु. नहीं है

नवमों सरल, सात सीतलता संतोष साधि[१]
साधु–सन–सग–सतसग अनुसरनो ।
गुरनकों ध्याइ, 'श्रीगुपाल' गुण गाइ, भाव
भगति बढाइ,[२] रजिगार पाछें करनों ॥

नवधा भक्ति

कही सिरी भागोति में निज मुख आपु गुपाल ।
सो तुम सों बरनन करूँ नवधा भगति बिसाल ।।

भगवत वाक्य

प्रथम भगति सतसग करै मनन की,
दूजे कथा सुनै 'श्रीगुपाल' गुन गान की ।
तीजें गुर ध्यावें, चौथें मोह कों छडावें, पांचें
मंत्र जपि करें वेद बचन प्रेमान की ।
छठें दम सील बइराग धर्म साधें, सातें
मोहमय जगत दास मति अधिकान की ।
आठ में संतोष, नवें सरलता आवें जब
पावें नर नवधा भगति भगवान की ॥

दोहा

श्रवन कीरतन सिमृन पद, सेवन अरचन जानि ।
वंदन दास्य' रुसरूप निज, आत्म निवेदन मानि ॥

---

१ मू. सोइ २ मू. माटि ३ मू. कहिये ४ है मू. में नहीं है ।
५. है मू. येर ६ मू. साबि ७ है मू. इदाह ।

ब्रह्मज्ञान

उद्धव प्रति श्री कृष्ण जो कही ज्ञान की गाथ ।
सो निर्गुन परब्रह्म को सुनिये चित दै नाथ ॥

कवित्त

अकल अनीह जो अमन्न अविनाशी अज
अनभव-गम्य हृदयेस को सुमिरियै ।
अगुन-अद्वैत, जो अनामय अखंड निरबोध
सुपरासी छिन रंचक न बिसरियै ।
'सुकवि गुपाल' वारि-बीचि में न भेद, सदा
सोनें नाद-तोइ में न भेद डर करियै ।
मन गो अतीत जो अनूपम अरूप-रूप
ऐसे परब्रह्म को सदाई ध्यान धरियै ॥

सगुन

गुंजन की माल, पीरि चंदन की भाल,
मोरपक्षन के जाल, कर कमल मनाल है ।
नासिका सुढार, तीखे नैन रतनाल, बंक
भृकुटि बिसाल, अलकावलि सुढाल है ।
मंद-गज-चाल, मुख बाँसुरी रसाल, ब्रजबालन
कों ख्याल, करि करत निहाल है ।
प्रेम प्रतिपाल, संग सो है ग्वालवाल, को न
देखत निहाल होत प्यारे श्रीगुपाल है ॥

इतिहास

दोहा

श्रुति समृति मत्र सास्त्र मथि बहुत अेक यतिहास।
ताके श्रवनहि मात्र ते कलि–मल होतह नास॥

दवापुरान भुअ भार हरि, भली भाति निरवारि।
प्रगट असुर मारे बहुरि, छत्री रूप सुधारि॥

असुर मनुज बधु धारि निज, बल बढावने हेत॥
करन लगे भप चाहरन, सुरन जीतिबे मेत॥

सुर रक्षन मोहन असुर नें हरि बौधवनार।
सास्त्र बनायौ रिपुन की मोह करामन हार॥

मोहित है ता सास्त्र ते, तजि भय गअे पताल।
जगय करन वारे दनुज सास्त्र गह्यौ ततकाल॥

दनजन सास्त्र पाषड की युक्तिन सौ जग मोहि।
जन अधार की हेत चो दयौ वेद मत पोहि॥

भगवत वाक्य

बढत अधर्म जब, जब धर्म हानि होनि
 पारथ मैं आपे कौ प्रगट करू चाह कें।
साधन अुबारें, सब दुष्टन कौं मारें, रक्षा
 धरम की धाम्, जुग जुग माझ जाइ कें।

अपनी प्रतिज्ञा यह सुमिरन करि मन
संकर कों जानि निज रूप मम भाय कैं।
ऐसे 'श्रीगुपालजू' की आज्ञा लैकें जब, तब
मकर ह्वै मकर अचार्ज भयौ आइ कें ॥

श्रनी

चारि हजार बारि में वर्ष, गऊ अगि होतन होनन कीजियै ना।
बड़े ब्राह्मनओ बुधमानन कौं, मनें जानि सन्यास में नीजियै ना।
असुमेध गवाचय मानस पिंड औ, देवर सौं सुत कीजियै ना।
कलि में सुनि पाचौ विवर्जित ऐ यहिते सुनन्यासकौं नीजियैना॥

दोहा

बुद्धि : मांन ब्राह्मनन ह्वी, करै वेद मत मांनि।
तिन दिन कछु सन्यास के, कालहि बाकी मांनि॥

ह्वै अदुधि : त संन्यास श्रुति मार्ग चलावन हेत।
गौराचारज सिष्य सुक, सुम्थित बदरि निकेत॥

बालपनहि अपवीत लै लयौ भरन गुर जाइ।
तिन सिषि गोविंदचार्य सौं सन्यासाश्रम पाइ॥

जीति बौध दिगविजै करि, जथा जोगि श्रुति धारि।
ब्रह्म बोध कौं लोक में प्रगट करत भये आप॥

अधिकारी तद् बोधनें, भये बोध आकार ।
तौऊ दुरलभ जग नरन ब्रह्म योग अधिकार ।।

भगति मार्ग की प्रवृति हित, करि किरपा भगवान ।
सैनादिक निज पार्षदन, धर आज्ञा दई आनि ।।

करी भगति की प्रवृति जिनि पूजन क्रिया दिखाय ।
ग्यानधिकारी अन्यकलपि, दीनों ज्ञान अड़ाय ।।

योग तीनि में नेक है, ग्यान कर्म भक्तयोग ।
जीवन के कल्यान हित इन सम और न जोग ।।

कवित्त

कहै करि विरक्त जिन त्यागि दीने कर्म
मन तिनकी गुपाल ज्ञान जोग होन पावो है ।
करमन ते छिन को विरक्त नहिं मन होन,
कामना करत ते कर्म जोग तावो है ।
भागिन ते, मेरी कथा माझ रति भई न विरक्त
नहिं बहु न विषय मांझ छाको है ।
भागवनि मांझ भगवान यह कही सदा
सिद्धि होन मेरी भक्ति जोग जग जावो है ।

दोहा

श्रुमत माहि जा जोग कौ, जाकौ है अधिकार ।
होउ प्रवृति जामें सोई, कह भगवान विचारि ।।

त्रय कांडन में सिमृत कौ, वह कल्यान कौ मूल ।
ज्ञान मार्ग जिनि लोप किय, करि हरि बात अटूल ।।

क्रिया महत पूजान के, अधिकारी कम जांनि ।
जीवन कौ अुद्धार असुमर्थ होत है मान ।।

सदा सप्रदाअे कही, वेद न कही विचारि ।
ताकौ तव तिन नें करी प्रथक प्रथक नैं चारि ।।

यद्यप दोप कछू न तँहु, प्रगट करी हरि भक्ति ।
तअु जग में करनी कठिन, पूजा क्रियन सजुक्त ।

ध्यान किये सतजुग विर्षे, त्रेता मपते जोइ ।
द्वापुर पूजे फल मुकति, हरि कीर्तन ते होइ ।।

दोप भरे कलजुग विषै, लपियत वड़ गुण अेक ।
कृष्ण कीरतन करि मुकति, प्रप्ति होति सविवेक ।।

कृष्ण कीरतन नाम ते, कलि म जो फल होइ ।
कहि अधिकारिन भागवत, द्वापुर पूजे सोइ ।।

पूजा की परधानता, द्वापुर युग में जानि ।
कृष्ण कीरतन नाम ही कलजुग मे परधान ॥

सिमृत के अनुसार निज योग सिद्धि के हीन ।
नाम कीर्तन ही अवसि, निरनौ कियै सर्वीन ॥

यदपि श्रवन अरु कीरतन, कहे यहा तौ दोइ ।
निन जोगन की ठौर करें, नाम कीरतन जोइ ॥

बडे बडे साधनन ते, लहत चारि फल सोइ ।
नारायन आश्रत नरन, बिन श्रम लहतह सोइ ॥

विधि नारद सवाद यह, कह्यौ वेद के मांझ ।
वेद पाठ साक्षात सो, लिखियत तिनके काज ॥

विधि नारद सवाद

द्वापुरात में देव रिषि, ब्रह्मा ढिग भयौ जात ।
कहि भगवन विचरत जगत, किमि जग तरिहू तात ॥

कहत भयौ ब्रह्मा तबै 'भलौ प्रस्न तैं कीन ।
सब वेदन कौ रहसि सो, मुनि यह गोप्य नवीन ॥

जाकरि कैं कलि कू तरह, सोहै जग में नाम ।
हरिनारायण आदि दै, श्रीभगवन सुप धाम" ॥

फिरि नारद पूछत भयौ "भगवन नांम सु कौन" ।
कहन भयौ ब्रह्मा तबै "मुनि सुत बरनूं जौन ॥

मंत्र

हरे राम हरे हाम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरें हरे ॥

नाममाहात्म

ऐसे इस हरि नाम है, पाप हरन जग मांहि ।
इनते परे सुगम कोऊ, वेदनहू में नांहि ॥

कवित

षोडस जे नाम होई षोडस कला को लिगि,
है रहयो ज आवृत सो नास भयौ तिन कौ ।
नासिकैं लवर्णहि, प्रकास्यौ परब्रह्म ऐसैं
मेघन के हटेते प्रकासें रवि रस कौं ।

नारद के पूछैं मंत्र विधि कही ब्रह्मा सदा
सुचि दा असुचि विधि चहिये न जिन कौ ।
सालोका, समीपा, अरु सायोज्या, सरूपा पाय
नाम जपे ब्रह्म लोक प्राप्ति होत तिस कौं ।

सवैया

नाममहात्म

यहही निरनें कियौ वेदहू में, सब और जे नांम निकांम ही हैं ।
इतिहास पुरानओं संघिता सिमृत, तंत्र जिते कहयौ तामही हैं ।
सुप काहू प्रकार न जीवन कौ, 'सुगुपालजू' जीवन याम ही हैं ।
गति और नही है नही है नही, हरि नांम ही है हरि नांम ही हैं ॥

नामदृढ़ता

कर्म भक्ति ज्ञान तीनि कांड के सम्प सदा
नाम ही को थाप्यो तिन कहि तिमि काम के।
तिन के विधान तीनि बार कहने में भिन्न,
गति कहने में कहो कोऊ नहि काम के।
जप–तप–व्रत–नेम–दया–दान–सौच–सील
सरधादि साच सुभ कर्म जे अराम के।
वेद औ' पुरान, सिमिरत माझ कह्यौ सब,
जतन विरथ बिन लीये हरि नाम के ॥

कवित्त

करत करत जग्य करत में चूकें, जाके
सुमिरन कीयें सब पूरे होत काम है।
जप–तप–जग्य–क्रिया आदि कों में घटती जो,
पूरन तूरन होत सुमिरन नाम है।
'सुकवि गुपाल' ताको पावन न पार–वार
नेति नेति करि वेद गावें गुन–ग्राम है।
सदा सुख–धाम, सर्व व्यापी निमकाम, अज
ऐसे हरि अच्युत को करत प्रनाम है ॥

दोहा

सब बातन कौं सुमिरि कें, जासें जपियें नाम।
भगति मुकति पावें सुनर, लेत नाम निसकाम ॥

कवित्त

होइ न विराग जब लग करै कर्म, तथा
कथा श्रवनादि श्रद्धा जब लौं न मन है।
देवता सरव भूत नर-रिषि-पित्र पंचजग्य
के जे पूज्य जग मांझ जेते जन मैं।

तिनको किंकर औ' रिनिया न होत कबौ
राज तजे मेरे मुनि मानि लै वचन है।
सब परकार लषि, सरन की जोगि सब,
कर्मन को छांड़ि मैं मुकुंद की सरन् हैं॥

सवैया

त्यागि के आपने कर्मन को, हरि के पद पंकज को भजे जो है।
भक्ति में जो परपक्व न होइ, मरै कहूँ जन्म लै जाइ कै सोहै।
हनुमान-विभीषन आदिक जेते, कह्यौ तिनकौका बुरो कछु ओहै।
आपने कर्मन को करे जे, हरि को न भजे तिनको कहा होहै॥

गीतक

गीताहि को सुनि वचन मम या जग्यको जगृयासिजो।
कर्म कांडरु वेद को उल्लंघि करि वर्त है सो।
वर्तमान जु त्रगुण में नर कर्म-कॉंडह करत वो।
यह ज्ञान कांडरु कर्म ते अर्जुन तू त्रगुणातीत हो॥

कवित्त

बिरक्त भक्ति ज्ञान जोग अधिकारीन
आदि साम्प्र ग्रंथ मुनि कर्मन करामनो ।
कर्मन के त्यागे रति भई हरि माझ, ब्रह्म
ज्ञान उपदेसि तिने ब्रह्म दरसामनो ।

नहीं जे दृजानी जैं पै बिरक्त है के लगे,
कर्म ज्ञान मार्ग तिन भक्ति में लगामनो ।
ममें ममें मात्र तिन गुर का प्रनाम करि,
नाम कीरतन हरि गुनन को गामनो ।।

अरिल्ल

मेरी भगति ते विमुख है के साम्प्र कों जो पढ़त है ।
न्याम साम्यादिकन में सो डूबिके क्या करतु है ।।
तिन कों न जानग मुकति होहै सहग जन्म प्रजन में ।
जे राम हृदय के राम सजन समझि लै जिय अन में ।।

सवैया

करि पूरब भूमिका में जो उपासना, ऊपर भूमिका पामनों है ।
मर्यादिक ग्रंथन भक्ति-हीं नहिं, भक्तिए जानन आमनो ।
यह भक्ति महात्मर्मे ज्ञानहिकी कहीं भूमिकाकी जो बढामनो है ।
गुरकी, हरि की, करि भक्ति 'गुपाल' समेंपै हरिगुन गामनों है ।।

ब्रह्मविचार

जाकी साक्षात बुद्धि बरनति तत्व छूटै,
पापन तें जीव दृष्टि परे ब्रह्म ठार में ।
कीनो है सनान सब तीरथन माझ, जो'
सहस दस कीनें मानो जग्य तहबार में ।

पूजे देव सकल प्रथी को दान दीनों सब
जानें निज पितर उधारे हैं संसार में ।
पूजिवे के जोगि जोई जाको थिर व्है कै श्रेक
छिनहूं लगन मन ब्रह्म के विचार में ।।

कवित्त

स्वपच प्रजंत याही बात ते बड़ो तेरो नाम
बरतत अग्र जिव्हा के ठिकाने में ।
करे है गुपाल जिनहीं नें तप होम सब
तीरथ सनांन जेते प्रथी में बपाने है ।।

तृतिया कंद सिरी भागवत मांझ्यो कविल-
देव प्रति कही देवहूति माने है ।
सबही ते बड़ी जिन पढि लीने सब वेद
तेरो नाम जग में गृहन कर्यो जाने है ।।

कवित्त

पाप करि भारी ध्यान अच्युत कौ धरै, ऐक
    छिनही में तुरत तपस्वि होत पीन है।
पापिन की पगनि की परस पवित्र पुनि
    गंगादिक तीरथ पवित्र करै जीन है।

कुलहू पवित्र जाकी जननी कृतार्थ औ'
    वसुधरा हू भागवती भई जगजीन है।
ज्ञान जाको पूरन औ' सुपको समुद्र सोई
    ताको चित भयो परब्रह्म माझ लीन है।।

कवित्त

कुलहू पवित्र जाकी जननी कृतार्थ यह
    प्रथी पुन्यवन्त भई जाके अनुराग ते।
सुरग में सुस्थित प्रपित भअे जाके धन्य
    जा कुल में यैदप्पार भयो सुत भाग ते।

यज्ञ आदि सकल श्रुती के वेत मुनि कवी
    कीजिरै न समय गुजार यह जाग ते।
ज्ञान जोग भक्ति जोग में है प्रीति जाकी दृढ़
    दोष होत बाट भानि कर्म के न त्याग ते।।

कवित्त

देपिवे कैं जोगि यह आनम गवन याते
कीजियै वेदांन कौ श्रवण दिनराति है।
भक्ति ज्ञान जोग कौ कहौ जो नेम विधि जाग-
वलक मईत्रेई सी कही यह वात है।

पक्ष मे जो प्राप्ति भावादिक करिवोध जे
छुटावन है तिन के न आवै कछु हाथ है।
'सुकवि गुपाल' जे कहत अैसे लोग सदा
जिनकौ कहनि जानि लीजे पक्षपात है।

सवैया

सव कौ नहि वेदरु तंत्रन कौ, अधिकार कह्यौ सु कहूं जियै है।
तिहिते सवके उपकारथ कौ नाम, मंत्रहि भाषा मैं कूजियै है।
सुनि संमृत कौ कहनौं न कयौ, यह भाषाते सिद्धि न हूजियै है।
निसंकटक मारग है सो वही, सु सदां हरि कौ तहां पूजियै है॥

नामभाव

किसके तहि कौ करिकै जो कहै, अथवा परिहास कौ जोवत है।
पद पूरन अर्थ के काज कहै कि, कहै कहुँ जागत सोवत है।
अवना करिकै कवहूं कि कहै, कि कहै रिस मैं जव भोवतु है।
कहु जैसेहूं तैमैं लियै हरि नांम, सु पापन ते सदां पोवतु है॥

कवित्त

चक्रायुध हरि जा है ताके नित नामन कौ
सदा सरवैत्र कहै दिन औ रयनि कौं ।
कीर्तन जिनके में होनि न असुचि आप
होनुह पवित्र करनेवालो सवयत कौ ।

हैके अपवित्र, वा पवित्र सर्वस सदा होतु है
अवस्थ औ कौं प्राप्ति मा कथन कौ ।
बाहर औ भीतर सौं होतुह पवित्र सोई
सुमिरन करे हरि कमल-नयन कौं ॥

कवित्त

मरतौ बपत अजामेल अधमी जो नाम
पुत्र मिस लैकैं गयौ भगवत धाम है ।
कहनौं कहा है ताको श्रद्धा करि कहै मान
भागवत नाम कहै सौ निज मुख स्याम है ।

कोऊ यमलेछ काहू सूकर के मारें कही,
मरतौ बपन मोहि मार्‌यौ या हराम है ।
बैठि कैं विमान पर बैकुंठ धामहि सो है–
क नत्रभुन नयौ गयौ हरि नाम है ॥

कवित्त

दसन दिसा में सर्व लोकन के मांहि, यह
  है रह्यौ है विदित कथा सो सरवत्र है।
नाम के महात्मे भाषादिक करि कुछ, हीन
  नहिं घाटौ यह सुनतहिं चरित्र है।

कानह र कन्हैया कान्ह कान्हुआ कन्हरहु
  आदि नाम सीधे पोढ़ देत अपवित्र है।
भाषा मांझ विगर्यौ, हुओ भी 'श्रीगुपाल' नांम
  सब जग जीवन कौं करत पवित्र है॥

कवित्त

जौपै देववानी कों बनाइ करि कहै तोपै
  भाषा करि कहनो परत पुन पुन है।
अरथ करत सब जनन कौं बोध याते
  दुहरौ परश्रम सुहीन जाके सुनहैं।

वेद कौ अरथ जौ पै भाषा करि कहै तातै
  येक बार सुनै होत श्रवन सवन है।
कहत गुपाल सबै समुझत हाल यातें
  यह भाषा मांझ बड़ौ हीत गुन है॥

सवैया

भाषा की न हीं प्रमानता है, सतवृत्तिहि को जो पै मारक है।
ऐसे होइ तौ जानौ औ बोधके साधन, प्रमानो कहैया विचारक है।
याते वेद हो उत्तम सब्बाहै साम्प्र सुनाही को सबं सुधारक है।
सो 'गुपाल कवी' करि भाषा कह्यौ सगरे जगकोनोई तारक है॥

कवित्त

साक्षात निज रूप यही श्रीगुपालजू में
सास्त्रन के मांझ निज सहित समाज है।
सदा प्रीति करि सालिग्राम द्विज साधन को,
वेद विधिवत पूजो त्यागि लोक लाज है।

रामनाम जप करे तुलसी की माला धारि
जपो दिन रैनि तब पूर होत काज है।
समुद्र संसारहि के पार करिबे को और
आसरो नहि है राम नाम ही जिहाज है॥

शिक्षा

सब जीवन पै सु दया करनी नहिं ते प्रभु को रिझावनो है।
करनै सह देश को पालन ना यह ऊपर को बरसावनो है।
यह मे वृथा जन्म बितावत क्यों कबहूँ कछु काम न आवनो है।
गिरती भई भारत भीतिहि को, सु सबा यह चैनो लगावनो है।

चतुश्लोकीभागवत

सवैया

चतुश्लोकी श्रीभागौतिमैं सो कही, भगवानने ब्रह्मासौं निजबातें।
मेरी यहे पर्म्म गुह्यज्ञान, विरागहि के मु समन्वता तें।
रहस्य जो भक्तिहु ताके सुसजुत, ताही तें तू मनदै सुनि यातें।
ताही के अंग जे साधन है, सब मेरी कह्यो मुनि कै गहि मातें।

सरवांग में व्यापक हौं जित तो, तित सच्चिदानन्द हौ निगृह तें।
स्याम सुंदर रूप औ सचिदानन्दहि, हैं गुन रूप सम गृह तें।
तू यकागृह ते मन दै मह में, सुनि व्है हैं कल्यान सु निगृह तें
सदा तैसोई तो कौं य तत्व विज्ञान, सुहोइगौ मेरे अनुगृहतें।

सुतपत्तिहि के पहले ते सदा, सब आगे ते मो ि की सत्य वहैं हौं।
कछु मेरे ते अन्य सथूल औ' सूक्षम, कारणहीन भये सब जेहौं।
जग नासह बाद भये पर में, जग में जोहै सत्य सो औरन केहौं।
सब के सुनि मुद्ध के कारनकौं, अधिष्ठान सदा यक सत्यहौंमैंहौ।।

जो नही है तिहुँ कालहु में, जग होत प्रतीती सबी कौं सही।
प्रगटै मेरो सत्य सरुप सदां, नहि दीसत माया सुजांनि यही।
अनहोते द्वै चन्द्रमा आदि अभासतें, भासत जैसैं किसी कौं कही।
मेघ में ढांक्यो भयौ जैसैं सूरज, तैसें सुभांन में होत नही।।

महा भूतोर भूत मनौन में मैं, जल औ थल आदि प्रवृप्टि मही।
तिनकों तिनके कछु भिन्न न हों, मेने होन नहोहै प्रविप्ट जही।
तिनकों कछु मेरे ते भिन्न न होने ते, होत प्रविप्ट कवी सो नहीं।
सदा तेंमें तिनों महा भूतान में, सत्ता रूप होते हौ प्रवृप्ट मही।

कवित्त

आत्म तत्त्व ज्ञान की अपेक्षा है तिने करि,
अन्वै वितरेक मव जगौ मान्यौ चहियें।
मर्वदा जु मव ठौर सच्चित सरूप घट–
पटादिन व्यापक सु जैसो ठान्यो चहियें।

सोई 'श्रीगुपाल' में ई सर्व अवस्था माझ
जाग्रत औ सुपन सुसुप्त आन्यौ चहियें।
मानयौ रूप हो करि कें व्यापक है जाको सदा
अन्वै वितरेक करि मान्यौ ताहि चहियें॥

कवित्त

नाम रूप घटपटादिकन में सव ठौर सव
भग मान ब्रह्म कौ सरूप लपि लैहै तू।
सोई श्री 'गुपाल' सवही में सदा व्यापक
अवस्था अेक अेक में न व्यापी सदा पैहै तू।

आत्मा ही ब्रह्म अेक अेक मे नही सो झूंठ,
जैसे मेरे मनै जब मन में नूं देहै तू ।
सब परकार करि जगत् की अुत्पत्ति के
विविधि प्रकारन मे मोहित न ह्वैहै तू ॥

सवैया

श्री भगौति सर्व बिदान को सार सुताहू को सार प्रकासक है।
'श्री गुपाल' सोई परकास करयो कलि रूप तिमाम निभासक है।
ज्ञान रूप जो चंद अुदै किय चाहनी, अमृत रूप प्रकासक है।
जग पाप के रूप जे तापनिते औ अग्यान अंधेरे को नासक है ॥

सांतरस

कवित्त

भूलिये न हरि नर देही को सरुप पाय,
यह नर देही भव सागर कौ सेतु है ।
करि लैं सुकृति कृति यामें जो बनति तोपै,
मोपै सुनि करि तू गुपालजू सों हेतु है ।
सांच सुप भापि तजि सांप सीलताइ राषि
हरि जस चापि साषि वेद कहि देतु है ।
भले को भलाई अरु बरे की बुराई जग
जैसे कौ सु तैसोई विधाता फल देतु है ॥

कवित्त

देह धरे 'सुकवि गुपालजू' बड़ाई यही
आप बुरो कीजे सो विचारै बुरो आपु को।
सबही के दण्ड देन–हारे समरथ हरि
जानत भरम वेई चोर और साहु को।

कुवचन सुनिक उदास चित्त होइ न
नौ तकै रहि आसरो सु ओर-निरवाहु को।
जोई ऊचो चढ़िहै, सो आवह गिरैगो याते
आनै तौ जान बुरो करियै न काहू को॥

सवैया

कित्ति वही जो कहै सगरो जग, चित्त वही गिरि कों जो घटावै।
दित्त वही सुपने न कहै, अरु मृत्य वही नहिं नेक हटावै।
चित्त वही जो लगै 'श्रीगुपाल' सों, वित्त वही नहिं धर्म हटावै।
हित्त वही हियते न टरै, अरु मित्त वही जो विपति बटावै॥

कवित्त

आपनों कहावै सांचों हित ही जनावै कहा
मीठो बोल बोलि ऊनो वचन सुनाइयै।
मित्र मन मीती को न पानिप उतारि डारे,
कुपथ निवारि निज सुपथ चलाइयै।

भनत 'गुपाल' निज हित सदा अेक बात
  प्रीति-रीति यही नित सुष सरसाइये।
औगुन दुराइयें, औ गुन प्रगटाइ,सु
  जाको अपनाइयें न ताको छिटकाइये॥

दोहा

जननी करि कछु कीजिये, कुल कुटम के काज।
कीरति कलि मे कवि कहें कबहु न होइ अकाज॥

कवि गुपाल या लोक में हाथ रहें नव निद्धि।
सुष पावै परलोक में होइ जगत परसिद्धि॥

यह सुनि कवि तिय के वचन मगन भअे मन मांहि।
तो सी या ससार मे दूजी तिय कोअू नाहि।

माता पिता भ्राता सुहृद, यद्यपि बहु परिवार।
तिय समान दाता नहीं, कोअू या सन्सार[1]॥

इस्त्रीसुष

कविता

घर कों रषावे, सुष संपति बढावै कांम-
  तपनि बुझावे चित चिंता कों नसावै जे।
भोजन जिमावे नित सुषमें गमावै दिन,
  हित अुपजावे हिय कुसल मनावे जो।

---

१. मु. तियसम दुखदाता नही, कोऊ या संसार।

उद्यम लगावै, जग जस करवावै
सब दूषन नसावै, भली टहल बनावै जो ।
'सुकवि गुपाल' घर ऐसी नारि आवै जो पै
जीवत ही जग में मुकति नर पावै जो ॥

पतीवरता

पतिवरता पन साधि कै पतिनिहु पीयहु सेय ।
सूरज मंडल बधिहै, सती होइ जस लेय ॥

कवित्त

पति देव जाने पति बन्धुन की सेठ ठाने
रहै अनकूल पतिवरन हियान के ।
रति सों अराधिकै टहल निज हाथ करै
छोट बडे पूरै मनोरथ हियान के ।
सुचि सावधान ह्वैकै इन्द्रिन को जीतै लोभ
आलस न करै करी परिखै सयान के ।
'सुकवि गुपाल' जान दूसरो पिया न, कहू
लक्षन समान न पतीव्रत नियान के ॥

कवित्त

उत्तिम तिया के नित हिये मन बस्यो करै
सपने हू आन पुरुष न जग जानहीं ।
मध्यम जु नारी पर-नरनि कों देष ऐसे
नित सुत पति भ्रात बधु के समान हीं ।

---

१ सु ना नर मान गुपालकवि पतिव्रता तिन होइ ।
आयु भर नार पतिहि हू स हुलास स.इ ।

अधम जु धर्म कुल समझि कै रहै औ,
कनिष्ट अवसर निज रहै मरम न हीं।
वेद औ पुरानन सुजान ते सुनी चारि
भांति वो गुपाल पतिवरता बखानहीं॥

दोहा

परमारथ समझे नहीं स्वारथ में लौलीन।
ऐसी या संसार में रहति नारि मति-हीन॥

कवित्त

वृथा ठान ठाने, दया धरम न जाने, सुर
दीन को न माने, साधु संग न पिछाने हैं।
भरी अभिमाने, समझै न लाभ हाने, पाप
पुन्य को न छाने, हिय अधिक अज्ञाने हैं।
गहकि के 'सुकवि गुपाल' गुन गावें नाहिं
टोले निज धन की उमंग ताने ताने हैं॥
हरि को न माने, मोह माया ही मे साने, निज
स्वारथ ही जानें परमारथ न जानें हैं॥

दोहा

या कलजुग में बहुत हैं घर-घर ऐसी नारि।
तिन को कछु बरनन करौं, सुनि प्यारी सुकमारि॥

इतिश्री शंगतिसागर बिरचित नाम कार्णे परमार प्रनीते बर्णन पंचविंशो विलासः

षटविंशोविलास

शान्तरस प्रबंध

पुरुष उवाच

अब कलि माहि गुपाल, बहु ऐसी जग माहि।
परि तोसी तरुनी कोऊ बिरली देखि जाहि॥

सुनि कै तेरी बात कों, उपज्यौ हिय मे ज्ञान।
भजन भावना भगति बिन बृथा गये दिन जानि॥

कवित्त

योंही जन्म खोयौ, मायावाद में बिगोयौ कब
हीं न सुख सोयौ, भयौ रिसें ही के ठाट कौ।
दया-धर्म कीनो नाहि, हरि रंग भीन्यौ नाहि,
साधन कौं चीन्यौ नाहि, करि पुन्य-पाटकौ।
लोक में न जस, परलोक में न बस गुरत
न अरधान्यौ, न पवैया भयौ बाट कौ।
कहत 'गुपाल' नर देही कौ जनम पाइ
धोबी को सो कुत्ता भयौ घर कौ न घाट कौ॥

कवित्त

काल कौ भयौ रे, मनुमान कौ भयौ रे, कंई
ख्याल कौ भयौ रे कै कुटंब प्रतिपाल कौ।
दास को भयौ रे, मायाजाल कौ भयौ रे, याही
हाल कौ भयौ रे, कै भयौ रे भाग भाल कौ।

---

१ है. इस न है प्रति में इसके पहले यह कवित है :
"कहत गुपाल गता मनो रहुआई परि
भूलि न लीजै नाम ऐसी की सुगाई"

कालको   भयो रे, त्रिनचान कौ भयौ रे,
  पारिपाल कौ भयौ रे, कै भयौ रे तानताल कौ।
दान को भयौरे, धनमालको भयौरे, नर
  बाल को भयो रे, न भयौ रे तू 'गुपाल' को ॥

कवित्त

भानिजी, भनज, भैया, भाभी, नना, ननी, माई,
  ममा, मौमी, मौपा न भरो[१]मौ पितु माई कौ[२]।
सारी-परिहज, सारौ[३]-सारान ससुर-सासु
  फूफी अरु फूफा न बहिनि बहनाऊ कौ।

दासी-दास-परोसी परोसिनि, मिलापी, मित्र,
  दादी ददा, चाची, चचा, नाई, कौ न दाऊ[४]कौ।
कहत 'गुपाल' बेटा, बेटी, काकी-कका, यह[५]
  कुटम सर्वा नी झूटौ कोऊ नहिं काई कौ[६] ॥

कवित्त

विषै बीज बोवै, मन भक्ति में न भोवै, मंद
  त्याग तन खोवै, तन ऊपर ते धोवै तू।
कहत 'गुपाल' तू गुपाल छवि जोवै नांहि,
  त्यागि कै जंजाल जान सुखें क्यों न सोवै तू।

---

१. ई. भरोसो २. ई. माऊ ३. ई. माढू
४. ई. ताऊ ५. इह ६. बाऊ

माया काज रोवै नहि रोवै बहु तेरो, मन
मानि करि मद हरि गुन में न पोवै तू।
विर टकटोवै भव भर लोभ डोवै नित
नोवै-नोवै करि नाह नर जोनि पावै तू।

कवित्त

काल को कर न करो काल को न कर्यो
कौरी-कामिनि न काम काजै करी कनिकोरी ते।
भजन गुपार भव भीर को न भान्यो भाव
भगति न जान्यो भूम्यो भवि माग भोगी ते।
नर भर्यो तरुन नरन तेह तामस में,
तन में तरेर लोर तिनुका लो तोरी ते।
मोह मय मदन मरोरनते मार्यो मात,
माया मद माते मन मानी नाहि मोरी तें।

कवित्त

छिन छिन छायो छवि छल छर छदन म
छलिवे को छंडी छिन छार लो न छोरी तें।
निरखे न ननिन निकुञ्ज नद नदन
नर-देहि पाय नीको नीति न निहोरी तें।
जिरह जरायो, जग जालरे जंजाल, जग
जीवन सो लागि प्रीति जीवन सो जोरी तें।
मोह मय मदन मरोरन त मार्यो मात
माया मद-मान मन मानी नाहि मारो नें॥

कवित्त

घरि-घरि धन धन-धामन में धायो धूत,
ध्यायो नहि धरि कै धरम धुर धोरी ते ।
वृन्दावन वीथिन विलोकी न बहार बर
बादिन में वादि-वादि वृथा वैस बोरी तें ।
गरब गरूर में 'गुपाल' गुन गायो नाँहि
ग्यान गुर गह्यो न गरायौ गात गोरी तें ।
मोह मय मदन मरारन ते मार्यो मांन
माया मद माते मरदाना नाहि मारी तें ।।

कवित्त

बाजे बजे बाजे बाजे बूझि है न बात, अभि
मिष्टाछार ह्वैहै इह देह तन ताजे पै ।
'सुकवि गुपाल' साथ कोयी हो चलैगो, तू तो
जायगो अकेलो जमराज दरवाजे पै ।
आइहै हकारो, जब छोड़ि है पसारो, नैक
बारो न लगैगी, कहूं बचि है न भाजे पै ।
रे नर निलाजे, कोऊ आय है न काजे, काहे
राजी-राजी फिरे स्यार कूकर के खाजे पै ।।

कवित्त

पाछै पछितैहे, जमदूत घेरि लैहे, सब हाल
छोड़ि दैहै, मग देखि के बिहाल को ।
काम भये पाछ, कोऊ काम नहि ऐहै रे, यह
झूठो मोह-जाल, तिय सुत धन माल को ।।

अये पाछे काल पुनि ह्वै है न सम्हाल नेक,
छिनको भरोसो नाँहि, पानी भरी खाल कौ ।
रे नर गमार, मति करै नु अबार, सब
छोडि कै जंजाल, भजि मदन गुपाल कौं ॥

करुणाष्टक

सवैया

दुख औ सुख को भुगते यह ही सो कछू न रन मन्सूबा करै ।
जब काल परै, कोऊ काम न आवै, परे बिन कामनों हूहा करै ।
'कविराय गुपाल' विचारि कै याते, भजौ हरिको भला हूआ करै ।
अपनी-अपनी गरजी जग है, यह कौन [illegible] को धूआ करै ॥

जो जलमें गज को गह्यो ग्राह, भयो विनपौरिष व्याकुल भारी ।
ज्यों भरि सूँड़ि दिखाति रही, तब दीन ह्वै कै सुमिरे श्रीमुरारी ।
सो सुनि कै करुनानिधि आय, उबारि लियो बिपदा निरवारी ।
आरनि ह्वै कै प्रवीन कहै, प्रभु ऐसे ही कीजै सहाइ हमारी ॥

द्रौपदी अंग उघारन को, दुरजोधन दुष्ट अनीति विचारी
मध्य सभा पट खैंचि दुसासन दीन ह्वै गावहिं कृष्ण पुकारी ।
चीर बढ्यो जन का ज्यों खैंचत पायो न अन्त परयो तनहारी ।
आरनि कहै के प्रवीन कहै प्रभु ऐसे ही कीजै सहाइ हमारी ॥

जो प्रहलाद पिता अति कष्ट दयो हरि की नहि के [illegible] ।
तब असि मारन कारन उठ नृसिंह की देह नवै प्रभु धारी ।
खंभ कौं फारि उठे ललकारि कै भक्त उबारि दयो वर भारी ।
आरनि कहै कै प्रवीन कहै, प्रभु ऐसे ही कीजै सहाइ हमारी ॥

सवैया

ज्यों तिय भांमा सुदमा तिने, दई दारिद ते दिपदा अ तिभारी।
जे पठजे हठि के हरि पैं, अठि आदर सौं मिले कृष्ण मुरारी।
जो विमुधा वकसी द्रुत दीनहि, इद्र कुवेरहू कों न निहारी।
आरति ह्वै के प्रवीन कहै, प्रभु अैसे ही कीजै सहाइ हमारी[१] ॥

ज्यों अजामेर महा अधमी, अजसी कुकृती निज धर्म प्रहारी।
अतस में सुत नाम नरायन, टेरत ही जम फांस उतारी।
नाम प्रताप ते पाप गये सव मुक्त भयो हरि रुप मँझारी।
आरति ह्वै के प्रवीन कहे प्रभु अैसेही कीजे सहाइ हमारी[२] ॥

सौनिगी गीध गजूतम नारि भरी अघ की गनिका तुम तारी।
दैवा पुजारी पनी वमधूवजुज सुवस की पैज कही वच पारी।
धुवा, कुम्हार, जुलाहा कवीर, धना पुनि जाट की बाट निवारी।
आरति ह्वै के प्रवीन कहे प्रभु अैसे ही कीजे सहाइ हमारी[३] ॥

छीपिया नामा, चिमार रिदास, करो सदन सौं बड़ी हितयारी।
ज्यौं नरसी, महता, चद्रहास सदा सब द मन की रुचि सारी।
जै मुनि मेनां, तिलोक सुनार, कौ रुप धरयो विपदा निरवारी।
आरति ह्वै के प्रवीन कहे प्रभु अैसे ही कोजै सहाइ हमारी[४] ॥

मै अति दीन मलीन अघी अति, कर्म को हीन क्रपी विभचारी।
दान दियौ नहि कीयो कछु व्रत, याते हियें यह बात विचारी।
रावरी मैंने लई सरने, क्यों सदा तुम दासन की रुचिकारी।
आरति ह्वै के प्रवीन कहै प्रभु अैसे ही कीजै सहाइ हमारी[५] ॥

सप्तविंशो विलास

पुरुष उवाच

घर मे जे निज कुटुम सौं, कलह करति [1] नारि।
तिन कौ कछु बरनन करहुँ मुनिप्यारी सुकमारि॥

फूहर कलहा पचीसा स्त्री उवाच

ननद कूं लत्यावै लान सासु कूं चलावै, जाइ
द्यौरानी जिठानिन के फारे लहँगाई कौ।
देवर कौं जाय जाय पटकन मारे, मौंछ
जेठकी उपारै, नेक डरपै न काई कौ।
घर के खसम कौं, पर्पेमनीन मारे, जामौं [2]
डरपि के भाजि जाय ससुर अथाई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
भूलिके न लीजै नाम ऐसी तौ लुगाई कौ॥

कवित्त

उठै [3] ललकारी भीष डारै न भिषारिन के
दया नहिं जाके जैसो हिरदौ कसाई कौ।
मूजी रहै बंब सी, कुटंब सौं कलह करि
आवे औ' गवे ते, रुपी रहति लराई कौं।

---

१. मामकौ २. है जाने ३ है. उठे

जिदिबे कौं त्यार, रापं काहू सौं न प्यार,
कची आदर न करै भूलि माई औ' जभाई कौ ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि,
भूलिकें न लीजें नाम अैसी तौ लुगाई कौ ॥२॥

पानि औ चबानि, परभात होते अुठै सूधी
बात बतरात ही में ठानति लराई कौ ।
वेटा–वेटी कुटम पसम की न लेइ सुधि
आप पाय जाय करि मेरव अढाई कौ ।
डरनि न जरनि–वरनि रहै सदा, अेक
कौडी हू को करनि परयारो नहि काई कौ ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई परि
भूलिकें न लीजें नाम अैसी तौ लुगाई कौ ॥३॥

करै तू–तराक औ' भराक जुवाब देति, साम्ही,
है करि नराक रुपी रहनि लराई कौ ॥
दौरानो–जिठानी सासु–ननंद ते रुपै, जठ–
देवर–ससुर डर मानति न काई कौ ।
स्वामन्द कौ जुवाब, कबी काढन न देइ, मुँह
साम्ही आइ लेइ लूंड मारै हडियाई कौ ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई परि
भूलिकें न लीजें नाम अैसी तौ लुगाई कौ ॥४॥

---

१ [illegible] इसकी जगह पर यह पंक्ति है
दौरानी जिठानी सासुननदनै रुपै [illegible]
देवर ससुर डर मानत न काई क

पाइवे की स्वाद न, पहरिबे को स्वाद, जाड
वाद–बकवाद कि फिसाद भड़िआई को।
नवहीक[1] कोई कछू मिप की यहत, जाके
चढि बैठे अूपर अुतारे पगियाई को।
पोसन करन, काम करत, अरत, मामु
ननंदते लरन झूरत जात जाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई, परि
भूलिक न लीजे नाम अैसी तो लुगाई को ॥५॥

सोवति रहति सदा रोवति कहति बात
धोवन न देख्यो मुष भोजन को नाई को।
हारनि[३] न तन, कडहारति[४] रहति सो
पुकारत मैं बोल दस कोस सुनै जाई को।
बडी अर ठाने करतूति को न मानें, पान
पीवत हू झीकत ही जात दिन प्राणी को।
कहत 'गुपाल' यात भली रँडुआई, परि
भूलिके न लीजे नाम अैसी तो लुगाई को ॥६॥

सब तें चुराइ के मँगायौ करै चीज नित,
पायौ करै आप मूंड़ी ररै लरिकाई को।
दांतन निपोरै, गोड होड़न[५] मु वोरै, सेर
तीनिहू ते, पेट न भरतु है अधाई को।
आहि करि काम कू कराहिकै उठति नित
दाहूयो बोल केई वेर–वेर करै आई को।
कहत 'गुपाल' याते भली रँडुआई परि
भूलिके न लीजै नाम अैसी तो लुगाई को ॥७॥

---

१. है. कवहू‍ंक २. है. जूरत लरत ३. है. हारत
४. है. कडहारत
५. है. औ मारत

बैठी रहै राति दिन हाथ ही पै हाथ धरै
घर–घर झांकै न हि लालो न कमाई को।
न्हाइव को पानी ताहि सदुही सो रापै रै
अधैन सी औंटाय कै समोवनि न ताईं कों।
जोरै रहै नन, नाक भौंहन मरोरे रहै
मारे रहै मूप सिव सोपै न सिपाई कों।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई, परि
भूलिकै न लीजै नाम ऐसी तो लुगाई को ॥८॥

मांगत म पानी आनाकानी करि जाति, अर
भोजन के समै नित टानति लराई कों।
चहुन कुठेहर से थोपि धरै रोट कचो
थोरीई करति सो भरै न पेट काई को।
धमपट पीटै, सबही सों जाय होटै, बैन
कहति न मीठे सिर बांधि बुरवाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
भूलिकै न लीजै नाम ऐसी तो लुगाई को ॥९॥

भानिजि औ भानिज भतीजिन न देभू नद
बेटी औ' जमाई देपि सकत न काई को।
ब्याह–भात–छोछिक–बधाई पक देपि जिय
आवे औ' गवे को टूक–टूक होत जाई को।
पाइ न पवाइ सकै याते विधना नें इक
छोडि कै भलाई दीन सबै गुन ताई कों।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
भूलि कै न लीजै नाम ऐसी तो लुगाई कों ॥१०॥

---

१ है कठहार २ है औ मारग ३ है रोजन
४ है साथ ५ है करै कै

अुटत ही प्रात बात दूत की भिरावे अुत,
घर घर जाय करवति लराई कौं।
नाज नहीं आवै गारो देइ'औ दिवावै, सदा
जाय कुसवारो करै भाई औं जनाई को।

हारति न नैंक ललकारत औं मारन
पुकारत में दीयो करै देस मे दुहाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकै न लीजे नांम अैमो तो लुगाई कौं ॥११॥

चल्योई करति है कतरनी सी जीभ, तो भी
रातिदिन कहू मुप दूपत न काई कौ[३]।
नापि हो कै जाइ अरु नापि ही कें आयो करै
परी रहै चीज पै अुठावनि न वाई कौ[४]।

रूठे कौं मनावनि न, फाटे कौ न सीमें कद्दो
जाघ तोली फौंक चलि जाअु क्यो न काई की।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकै न लीजे नाम अैसी तो लुगाई कौ ॥१२॥

पीसिबौ न कूटिबौ न, ऱ्हठिबौ रहत सदा
हीठिबौ करतु है, कुटब सदा जाई कौ
तीसरे हू पहर जगाअे ते न जागै, जाकौं
दिनहू में सोइबो है पहर [illegible]ई कौ।

आपनो सदाई पायो न्हायो देपि सकै
और घरकें कौं परनि सम्रुक नहि काई कौ।
कहत गुपाल याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकै न लीजै नाम अैसो तो लुगाई कौ ॥१३॥

---

१. है पाइ २. है पावावै ३. है, जाई ४. है काई

मालन न्यावै, गूथ-हथन चलावै, तन
काहू सो छुड़ाइ करि लेति है लराई कौ।
तहँ न लखैरे, भारी रिस करि रूनै, दांत
काटि करि धूरे, डाटें माननि न काई कौ।
करि गिरिहाई देति देस मैं दुहाई, नेक
डारनि न आनन सो कौमन में काई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकै न लीजै नाम ऐसी तो लुगाई कौ॥ १४॥

जैमत के सर्म नहिं ते मन बलाय जने
मेंमन मिलाइ स्वाद पोवति मिठाई कौ।
टढ़ी-मेढ़ी छोटी-मोटी-रोटी करि डारें कि तौ
रापी कचकची कि जेराइ देत जाई कौ।
गाढ़ो करि भात कौ निकासति न माँड, राड
पीरि-पाइ डारें न अुतरत[१]मलाई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई परि
भूलिकै न लीजै नाम ऐसी तो लुगाई कौ ॥१५॥

न्हाइ नही धोवै, कबी अूजरी न रावै घर
कूरो करकट न बुहारै अँगनाई कौ।
करै करति वार पुले यारनु न निवेरियति
न हेरनि न हँसि मुख फेरि कहि[२]काई कौ।
मारि-रहति बेटाबेटो पुचकारति न
कबी[३]ल्लकारति न स्वान औ' जिलाई कौ।
कहत गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकै न लीजै नाम ऐसी सो लुगाई कौ ॥१६॥

---

१ है उतरति २ है कही ३ है नाम ४ है नही
१ है कबु २ है कै
३ है म गाढ़ी मुह दोन्यो करै जाई कौ। ४ है पं ताः

रंड भरि पांनी जामें डारति मठीक दरि
मरदु वद् जो ढ़िह लावें बीज जई कौ।
छौंकि तरकारी, जारि कारी करि देइ सो
अुमजन न देइ लै अुघारि धरै बाई कौं।
पांनी अरु नाज आप आपकू रहत जाके,
दरिया औ' साग में सवाद गुठिनाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई, परि
भूलिकै न लीजे नांम अैसी तो लुगाई को ॥१७॥

सोवत के समै में सरीर की न रहै मुधि
बेसुध है तरी सिरा दीस्यौ करै ताई कौ।[1]
अगिवारे सोवै तो लुड़कि पिछवारै जाइ,
ठोरत है अैसें सुनें कोसत में बाई कौ।[1]
चढ़ि चढ़ि बैठें चिललाय बररायं जब
औदकि परत सब गार मुनि बाई कौ।[2]
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई, परि
भूलिकें न लीजे नाम अैसी तो लुगाई को ॥१८॥

पवत में पाति, अरु पीसति चवाति, झारें
जाति बतराति, रहै दुप कुनबाई कौ।
अुठत ही प्रात जुआं मारति रहति सो,
पुवावति न कहू नहुँगा ओर डांडियाई कौ।
सबरे सरीर पै बहयो हो करें औघ तअू,
परभी परे हू न अन्हैबो होत जाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रंडुआई, परि
भूलिकें न लीजे नांम अैसी तो लुगाई को ॥१९॥

---

१. है बररायं २. है. पाई कौ

म्रद से है जब बड़ी बय से निनग, कुच—
एक एक जावो यह सेरक अढाई को।
कहुनी लौं हाथ पाञु टाग लौं उघारे रहै
ढकत न अुर सिर पुल्यो रहै जाई को।
होठन चबाइ कै, चुरैल के से डारै पांय,
चलत हलन पेट सेति पो सो धाई को[1]।
कहत गुपाल याते भलो रँडुआई, परि
मूलिक न लीजै नाम अैसी तो लुगाई कौं ॥२०॥

छरत में नाज, झारि सेरक बहारे डारि,
पीसत में आधो करे गाड गलुआई को।
छानत में चून कछू भुमी में मिलावै इतअुत
में अुडावै, जब माडति है ताई कौं।
पानी में वहावै औ कठौती में लगावै, वह
सेर में दिपावैं, काम सेरक अढाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई, परि
भूलिकें न लीजे नाम अैसी तो लुगाई कौं२१॥

बच्चा गोद लेकें अब जच्चा बनि बैठे जब,
होत हाल अैसो[2] घर नाहरि ज्यौं ब्याई कौ।
साजी पाय जाय गेनी चारिक गसाई करि
पीवति हरि गारडी, भरिकें कराही को।
मूड से धनाय लाडू, पाय दस बीस तअू
चाहति है अैसे पाय जैहैं मनु नाई'को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
भूलिकें न लीजे नाम अैसी तो लुगाई को ॥२२॥

---

१ है जाई
२ है ऐसे

तेंमन परोसि आपजें मन कों देंठें जब
  न्हम न लागें पात सेइक सदाई कों
धापे पेटहू पें सो सडाके मारि जाय, औ
  सपोटि जाय हड करि चारिक गसाई को।
लेकरि डकार को डहारति है ठाड़ी द्वार
  फूलि करि पेट सो नगारो होन याई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रडुआई परि
  भूलि कें न लीजे नाम ऐसी तो लुगाई को ॥२३॥

होंठनभलों पीकहि बहावति है बीरी पाय,
  गालन के नीचे लों बहावें कजराई कों।
महक सरीर को सिगारति सिंगार ज
  तेल कों बहाइ करि पारें पटियाई को।
पहरि न जाने, नेक भूषन वसन, रहै
  अधपुनी आंगी न सँभारें अचराई[1] कों।
कहत गुपाल याते भलो रडुआई परि
  भूलिकें न लीजें नाम ऐसी तो लुगाई कों ॥२४॥

होंठ ऊंटिनी कैसें क, रिछिनी केसे है वार
  लंगूरिन की सी भौहें, भृति सूपजाई को।
मुसक सो पेट, जाके पाय हाथ धूहरि से,
  चोथरासो चुचों टुंड चपटा सो चाई को।
ऐंचा-तानी आंखि, मुप ठीकरा सो फूट्यो मेडकी
  सी है नांक भाकसी सी भग जाई कों।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
  भूलिकें न लीजें नाम ऐसी तो लुगाई को ॥२५॥

इतिश्री दपतिवाक्य विलास नाम काव्ये फूहर प्रबंध वर्णन सप्तविंशो विलास

1. कजराई

अष्टविंशो विलास

अथ शिक्षा प्रबंध

दोहा

गुनदायक घायक विघन, गण नायक गुरवेस ।
सिवसुत गमिजुत बुद्धि भुज जै जै देव गणेस ॥

कवित्त

ईसुर की भक्ति में सदैव मन राखें भेद
काहू को न दीजे निज मनहि को जाइ के ।
बालक तिया को कहो को न परतीति कीजे,
यन सों न कहे भेद मनहि को चाइ के ।
बिना उपदेस भनो चरचा के बिन मुप-
-तें न कयो कहिये बचन, कहूं धाइ के ।
कहोई चतुर होइ चलें यनि चाल जोई
ऐते बेन मानें जो 'गुपाल कविराय' के ॥१॥

तियन सों हित बहु राखिये न कहूँ, कीजे
राजा के न तिन की प्रतीति हित पाइकें ।
टहल औ' चाकरी में बैठि इन गम रहै,
पहले दिना को गरज ही सों जाइकें ।
बिपति परे पै, और क्रोध के बखत, नफा
टाटे में परखिये गुमियन को भाय कें ।
कहोई चतुर होइ चलें यनि चाल जोई
ऐते बेन माने जो 'गुपाल कविराय' के ॥२॥

मूरिष के संग कबी बैठिये न जाय,
कवि-पंडित-चतुर सतसंग करौ चाय कैं।
भले काम करत में ढील नहिं कीजै. बड़ौ
पदारथ पाइयै, तरुन तन पाइकैं।
यामें दोऊ लोकन के काम कौ सँभारें रापें
मित्रन कौ हित ते सुमन बचकाइ कें।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अैन बैन मानें जो 'गुपाल कविराय' के ॥३॥

माता औ पिता कौं बड़े आदर तें रापें, पुनि
तथा योगि सेवा करें, मन बच-काइ कें।
मानिये अधिक गुरुदेव कों पिता ते सब,
काम में समान रापें, अनुचमी सुभाइ कें।
निज तन काज, कछु दांन देत रहौ, तरुनाई
तन पाइ कछु भलौ करौ जाइ कें।
वड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई,
अैसे बैन मानें जो 'गुपाल' कविराय के ॥४॥

नीति ही में चलें, पन करि नहिं हलें, काहू
देषिकें न जलें, निरछलहि सुभाइ के।
आमदि कौं देषि करि, बरतै परच पर्च,
करनौं अधिक मूर्षताई है अघाइ के।
आमदि परच समैं रापियें मधिम रीति,
चातुराई यह कछु रापनौं बचाइ कें।
बड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई,
अैसे बैन मानें जो गुपाल' कविराय के ॥५॥

यथा योगि पाहुने की टहल बनाइ करै,
कहै नहिं निज दुप तिहु कों सुनाइ के।
देखत ही वाके आगें काहू पर क्रोध मन-
मूम बतरामनि ना करै कहूँ जाइ के।
नैत्र रसनां कों पर-घर रोकि राखै, तन
बसनन राखै नित अुज्जल बनाइ कैं।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अंत वैन मानैं जो 'गुपाल' कविराय के ॥६॥

सदन मों रिति रहियैं सभा न बहु राजनीति
विद्या सास्त्र, नीति सब सुत कों पढाइ कें।
यथा योग बरनिये जैसो जहां देवै सब
काम में समान राखै अुद्यमी सुभाइ के।
तिनहूँ में चारयों आर देवि बात करें नम
राखै अभ्यास नींद भूप वैन चाइ के।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अंत वैन माने जो गुपाल कविराय के ॥७॥

बिना ही विचारें कछू करियें न काम, वस्तु
काहू की में मन न लईयें कहूँ जाइ कें।
दुष्टन तें राखै न भलाई की भरोसो, बिन
काम के परेहू बानि जानिये सुभाय के।
कारज जो कोई आज होइ सकै जारो, ताको
कलि की भरोसो नहिं कीजै अलसाइ के।
बडोई चतुर होइ चलै यांन चाल जोई
अंते वैन माने जो गुपाल' कविराय के ॥८॥

सतपुरसन सौं न कहियै कठोर बैन
मायें न चडैये छोटे मांनुम कों लाइ के ।
काहू कों न कीजै मुपत्यार घर आपने, न
कीजै मुपत्यारी पर घर कहूँ जाइ के ।
झगरे पुराणे कौ अचार नहिं कीजै, पर
वस्तु में न वस्तु निज धरियै मिलाय के ।
बड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अेते बैन माने जो 'गुपाल' कविराय के ॥८॥

निज धन वस्तु कौ जु भेद काहू कों न दीजे,
भाई–चारे सों बिगारियै न रिसियाय के ।
धीरज तें करै काम, काहू को न पोटी कहै,
काहू के बिगार को न माम हूजे जाय के ।
झगरो बिगार काहू ते न कबी कीजे औ' रु
परकौ परपिवै न वल जोम पाइ के ।
बड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अेते बैन माने जो 'गुपाल' कविराय के ॥१०॥

काहू सों न निज पांन–पांन साझें रापै, पुनि
सूर्य तें पहल नींद तजियै मुमाइ के ।
क्रोध के वपत मुप मौन ह्वै के रहै, ताके
परवम ह्वै अनीति होइ न दुपाइ के ।
घोंटुन मैं सीस कवि रापि कै न बैठे, बैठे
दरजा सथान पहचांनि सभा पाइ के ।
बड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अेते बैन माने जो 'गुपाल कविराय' के ॥११॥

मान धरियै न वक्वौ काहू को मुनन में,
रानि कौं नगन अुठियै न कहू जाइ के ।
बड पुरमनते न चलो बटि आगे, बात
काहू की में आप अुठि बोलियै न धाइ के ।
नगन पीठि पसू पै सवार नहि हूजै, पीछे
कीजियै बडाई मुष प न कीजै आइ के ।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई,
अेते वेन माने जो 'गुपाल' कविराय क ॥१२॥

मस्त अरु बावरे ते ग्रान नहीं करे, लोभ
काजे दुरमति नहि षोवै कहूँ जाइ कें ।
आपनों किहू की लेके बेरी न बनाये रहै
झगरा लराई ते अलग मुष नाइ के ।
अँगूठी, रुपैया, छला बिना कहुँ रहियै न
कहियै जो वेन मुष कहियै मुभाइ क ।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अेतें वेन माने जो गुपाल कविराय के ॥१३॥

मिथ्या बोलिये न ओ' सहज सौह षाइयै न
भूलियै न अुपकार काहू को कराइ क ।
निकमा न रहि सबै आदरते रायै, नाते
आपनो भी आदर अधिक होइ जाइ कै ।
गई वस्तु कौ न षोजै सोच मन माहि, बैरी
कौ न निरवल कबौ जानियै दुपाय क ।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अेतै वैन मानै जो गुपाल' कविराय के ॥१४॥

मन में न राखे खोट टोउ सों न रोपे बाद
मन भय राखे नित मृत्यु कों अधाइ के ।
द्वै मनुष जहाँ बतरात तहाँ जाइयै न,
समय विचारि बात कहियै बुलाइ के ।
प्रीति करि सेवा कीजे साध, गऊ, ब्राह्मन की
बात नुकसान वही मुते न सुनाइ के ।
बड़ोई चतुर होइ, चलै यनि चाल जोई
ऐते बैन माने जो 'गुपाल' कविराय के ॥१५॥

कारन रहहु भगवान की भगति तुमें
चाहत है जोई तिसे चाहौ तुम जाइ के ।
काम काम के सों नित काम लेने रहौ औ
फितूर बावरे सों दूरि रहियै सु जाइ के ।
क्रोध के समें में कछु अरज न करो, आसामी
के दुख देने में न राजी होउ आइ के ।
बड़ोई चतुर होइ चलैयन चाल, जोई
ऐते बैन माने जो 'गुपाल' कविराय के ॥१६॥

हित गुरदेव, ग्रंथ कविन सों सुनै, बात
कहिबे की होइ न, न जिसें कहौ जाइ कै ।
नहिं माँगने की होइ, जिमें मति माँगो, हरि—
ऐक काम कों न जल्द कीजे कहुँ चाइ के ।
ऐक बेर लै लई परक्षा कहु जाकी, ताकी
दूसरें परक्षा फेरि कीजियै न आइ के ।
बड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
ऐते बैन मानें जो गुपाल कविराय के ॥१७॥

झूजै न जमान, नहि पेंचियै कमान, कूआ
फांदियै न, पेलियै न जूआ धन पाई कै ।
चलियै न साझ, कहूं रहियै न माझ, औ'
अहार-विवहार मे लाज कीजै जाइ कै ।
मरैं कौं न गारि दीजै, बोल ना परे कौं औ'
अघटियै न कबू कुछु काहू कौं पवाइ कै ।
कहोई चतुर होइ चलैं दनि चाल जोई
मेरे बैन मानें जौ 'गुपाल' कविराय के ॥१८॥

इति श्री दंपति वाक्य विलास नाम काव्ये निति उपदेश वर्नन
अष्टादशो विलास

अथ ज्ञान अुपदेस

याते स्वारथ सहनि करि, परमारथ को कांम ।
हायन रे अुद्यम करो, मुपते सुमिरो राम ॥

यह 'गुपाल' कवि सीष मुनि, कीनो अुद्यम जोइ ।
स्वारथ ही के करन में परमारथ जिमि होइ ॥

याविधि नृप गजन सदा श्रीवृन्दावन धांम ।
दरनि वाक्य विलास में मगन आठहु जाम ॥

कवि 'गुपाल' यह जगत हित, कीनो वाक्य विनोद ।
अब अपने रुजिगार, मुनि सब कोअू पावत मोद ॥

सबमें दोष निकारि तिय, अुपजायो दृढ ग्या ।
तृष्णा कौं निरवर्त्त करि भजवायो भगवान ॥

विधि के या परपच मे, मिश्रत गुण अरु दोस ।
तिनके गुण औगुनन को जानत जिनकौं होस ॥

बिनजानें गुन दोस के, होइ न संगृह त्याग ।
त्याग किये बिन होत नहीं, हरि चरनन अनुराग ॥

बिन अनुराग मिलै नहीं, चारि नरै की मुक्ति ।
त्यागें मुकति मिलै नहीं, प्रभु की पूरन भक्ति ॥

सो सुभगति भगवान की. गावत वेद पुराण ।
ता निय कौ निज पनिहि में, सुलभकरि दई आनि ॥

'कवि गुपाल' कौ, त्यार मन, हरि में दियो लगाय ।
संसारिन रुजिगार कौ, सुप–दुप दियो दिपाय ॥

घटक छुटामन जगत को, अुपजावन ि य भक्ति ।
दंपति वाक्य विलास कवि किंयो गुपाल निरुक्ति ॥
रस सागर दे आदि बहु, किये ग्रंथ अभिराम ।
कठिन अर्थ' रु श्लेषयुत, कीने तिनमें वाम ॥

कवित्त

दंपति विलास रस सगार सुभय पच
धमाई काव्य प्रश्णोत्तर पटरितु भीन है ।
चीर हर्ण लीला, दानलीला मानलील, बन–
भोजन की लीला, बनी वेनु–गीत, चीने है ।
दसम कवित, अ्लिकनामा, नषसिष, गुरकोमदी
जमुनगग अष्टक नवीने है ।
ब्रज जात्रा ग्रंथ औ' वृन्दावन वि ाम, आदि
अष्टादस गृन्थ ये गुपाल कवि कीनेज है ॥१॥

दोहा

सब कोऊ समझें न जिह, समझें ताहि प्रवीन ।
यात लौकिक गृन्थ यह कीनो सुगम नवीन ॥
समअे मूजिम देषि कें, कियो गृन्थ गरगाम ।
आनु कालि के नरन कों, मुनि मन होइ हुलास ॥

सामयिक रुचि

आल्हखड ढोलादि दे, अैसी अैसी यात ।
यन के रिझवैया बहुत, या जग में विख्यात ।

कवित्त

आल्हखड, ढोला, हीर–रांझ या र पूलरो की
गारे बारे बदन में, मनि गहे–गही है ।
इश्क लसे मजनूं का गावत निशान दे
छबीलिया भटियारी मस्त बुद्धि द्र रही है ।

दीन वपत।जी, माधवानल की कथा बहु
किस्सा औं फरोमिन में, मति महि गई है।
कहैन 'गुपाल' अनुरागि के जमाने बीच
ऐसी-ऐसी बातन की चाह रहि गई है ॥२॥

दोहा

जैं तहवि कविता करैं रही न तिन की बूझ।
याते मन को मारि कवि, मन सौ रहे अबूझ' ॥

बद पन्थौं, जोतिष, पुराण, पडिताई, 'न्याय
नीति, धर्म, सास्त्र की न बात कान दई है।
बेदन रचा को नहिं, ज्ञान परचा को नहिं,
हरि अरचा की, चरचा की बात गई है।
बहु पुन्य पाट की न, मुधरम बाट की न,
परच के काट की न, काहू मति लई है।
कहैन 'गुपाल' आजकाल के जमाने बीच
ऐसी ऐसी बातन की चाह उड़ि गई है ॥३॥

गौन सूरताई सील साहस, सहूर, सुध,
मरम, मरुप, सरधा की सरसाति रही।
भनत 'गुपाल' भाऊ भगति भलाई, भर्म
भादर, भरोसो, भीग भाइप की पांति रही।
दान, सनमान, पान-पान, राग-रंग, और
काव्य चरचा की चतुराई रीति भांति रही।
मीत को मिताई मरनागति सहाई, आदि
ऐसी बात अब कलि-काल में ले जाति रही ॥४॥

---

१. है. बनिनाई २. है धल धलो ३. है जाति रही ४. अगूझ

मति भई भिष्ट, पाप छाय गयौ सिष्टि, माझ
  घर तिय छोड़ि, परतिय धरनें लगे ।
धनवारो देखि गुरु, चेला को करन लागे,
  झगरि-झगरि बाप-बेटा लरनें लगे ।
धनरुजिगार को घटाई भई माझ,
  बिना अन्न नर सब भूखे मरनें लगे ।
'कहत गुपाल" बरसें न मेघ माल, याते
  कलि की कुचाल ते अकाल परनें लागे ॥५॥

धरमतें हीन औ' मलीन घर तिय लीन,
  बिन रुजिगार, सब दुख भरने लगे ।
कीरति, प्रताप, धन, धान्य, परसपति को
  आपुस में देखि-देखि नर जरनें लगे ।
ताप सों तपत, बेटा बाप ते कँपत नाहिं,
  पाप के सपत झूठी, पाप करने लगे ।
कहत 'गुपाल' बरसें न मेघमाल याते
  कलि की कुचाल से अकाल परनें लगे ॥६॥

हिंसक, हरामजादे, हिजरा, हरीफन, को
  चाह रही मीठी मुख आगें कहै तिनकी ।
कपटी, कुकर्मी, डिम्मधारी, औ डिफालिन, की
  अनिपुष्ट ख्यालन तो, लीयें रहै मन की ।
कहत 'गुपाल' चतुराई की न बूझ रही
  रह गई चाह भारी चोर चुगलन की ।
खुस मसखरी, औ' खुसामदी बरामदी की,
  अब कलिकाल में कमाई रही इन की ॥७॥
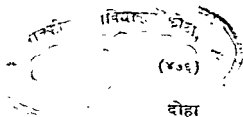
दोहा

याते 'मुकव गुपाल' औ, देगु दोस मति कोइ ।
जामूजिम*देषी हवा, ता सम बरनी सोइ ॥

गृंथ अनुपम यथामति बरन्यौ 'मुकवि गुपाल' ।
याके कंठ करें बड़ो, वुद्धि होइ ततकाल ॥

नरनारीं मूरप मुघर, सब के अुमगे गात ।
राज-सभा इनमान नें परं न पार्वी बात ॥

*औरन को झूठी कहे, सांचो निज ठहराइ ।
तासों कोई बात में कोइ न जीतै प्राइ ॥

बिछुरन दुग्पः दुराय तिय, किय निपेध्र आभास ।
आर्छे यालंकार को कियो गृथ परगास ॥

*कवि गुपाल बरनन कर्‌यो, मन बुधि को मवाद ।
तार्कों मुनि गुनि रसिक जन, लेभु मकन मिलि स्वाद ॥

फल स्तुति

दंपति वाक्य विलास कों पढ़ें मुनें चितलाइ ।
कोअू बातन के करन,[1]हारि न आवें ताइ[2] ॥

सब जग[3]दुप मय जानि कें, हरि-में[4] लागै चित ।
भजन भायना भगति में पड्यो रहै नित नित ॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये फलस्तुति वर्णन नाम
अष्टाविंशो विलास

---

* यह दोहा नहीं है । १. है- चम २. है- रजगारन ३. है में
४. है- जाहि ५. है- उयम मे